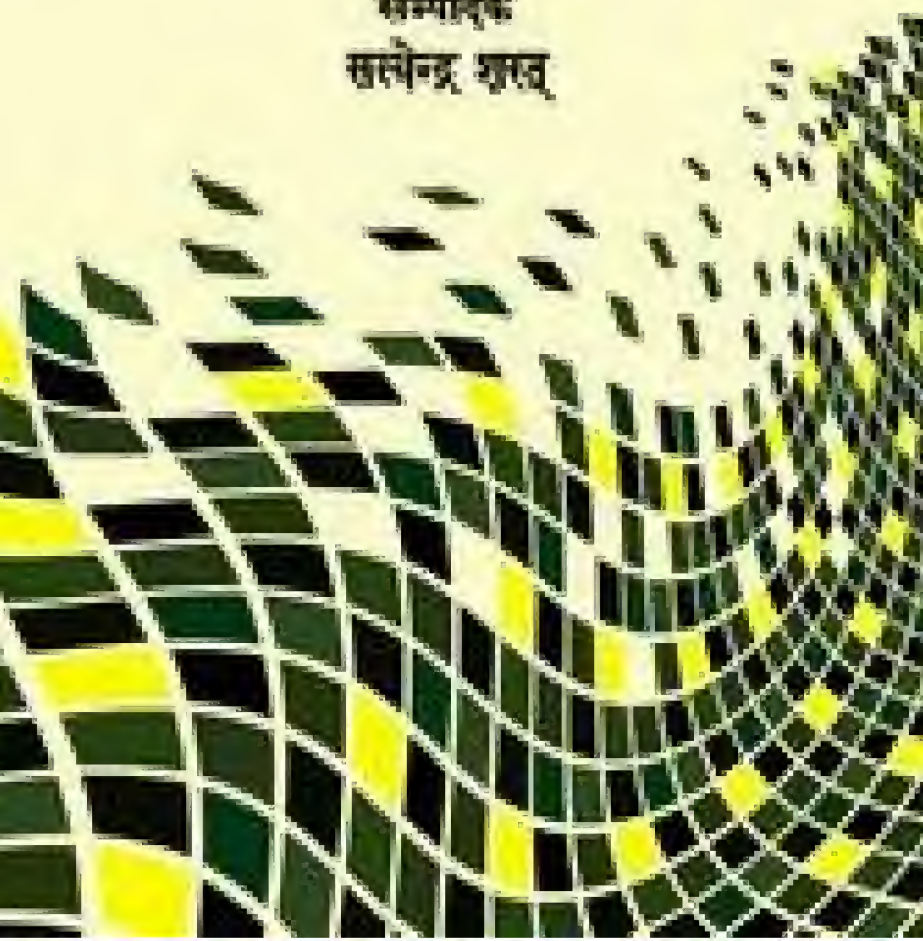


# नये चित्र

[ १९४८ से १९५२ तककी प्रतिनिधि हिन्दी कहानियाँ ]

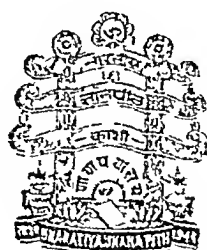
सम्पादक  
सत्येन्द्र शुक्ल



# नये चित्र

[ १९४८ से १९५२ तककी प्रतिनिधि हिन्दी कहानियाँ ]

सम्पादक  
सत्येन्द्र शर्मा



भारतीय ज्ञानपीठ • काशी

ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रन्थमाला-सम्पादक और नियामक  
श्रीलक्ष्मीचन्द्र जैन एम० ए०

---

प्रकाशक  
मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ  
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी



प्रथम संस्करण

१९५७ ई०

मूल्य तीन रुपये



मुद्रक  
वाचूलाल जैन फागुल्ल  
सन्मति मुद्रणालय  
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

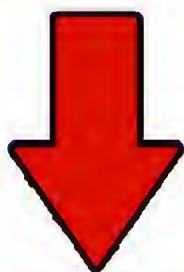
‘नये चित्र’ के कथाकारोंका  
यह  
सम्मिलित प्रयास  
महान् कथाकार स्वर्गीय श्रीप्रेमचन्द  
की  
पुण्य स्मृतिकां  
सादर समर्पित  
है

**Collect more e-books**



A lot collection of Hindi e-books

Please click the link below-



**[www.ebookspdf.in](http://www.ebookspdf.in)**

---

# आमुख

सन् १९४८ से १९५२ तककी बारह प्रतिनिधि कहानियोंका यह संग्रह प्रस्तुत करते हुए, इस संकलनकी योजनाके सम्बन्धमे मैं कुछ कहना चाहता हूँ ।

आधुनिक हिंदी कहानीका प्रारम्भ 'सरस्वती' मासिक-पत्रके प्रकाशन ( १९०० ई० ) से माना गया है । हिंदीके सुप्रासद्ध कथा-संग्रह 'इक्कीस कहानियाँ' के सम्पादक राय कृष्णदास द्वारा किये काल-विभाजनको स्वीकार करें तो आधुनिक हिन्दी कहानीके विकासका सुविधाके साथ अध्ययन करने के लिए, उसे निम्न चरणोंके अन्तर्गत विभाजित किया जा सकता है ।

प्रथम चरण : १९०० से १९१० ई० तक । ये काल आधुनिक हिंदी कहानीका प्रयोग-काल था । इसमे प्रायः अंग्रेजी और बंगला भाषासे प्रभावित या अनुवादित कहानियाँ मिलती हैं । मौलिक कहानियोंमें 'सरस्वती' में प्रकाशित बंग महिलाकी 'दुलाईवाली' और श्री वृन्दावनलाल वर्माकी 'राखीवद् भाई' कहानियाँ उल्लेखनीय हैं ।

द्वितीय चरण : १९११ से १९२० ई० तक । १९११ ई० से 'इंदु' मासिक-पत्रके प्रकाशनके साथ हिंदी कहानीका दूसरा उत्थान प्रारम्भ होता है । इस कालमें हिंदी कहानी आश्चर्यजनक रूपसे आगे बढ़ी । श्रीजयशंकर 'प्रसाद', जी० पी० श्रीवास्तव, गुलेरीजी, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह, चतुरसेन शास्त्री, प्रेमचंद, राय कृष्णदास, चंडीप्रसाद 'हृदयेश', गोविन्दवल्लभ पंत और सुदर्शन इस दशक के महत्वपूर्ण कहानीकार हैं ।

तृतीय चरण : १९२१ से १९३० ई० तकका समय हिंदी कहानीका समृद्धि काल था। प्रेमचंद और 'प्रसाद' की अनेक सुन्दर कहानियाँ इसी दशकमे लिखी गईं। इनके अतिरिक्त पांडेय वेचन शर्मा 'उग्र', सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', भगवतीप्रसाद वाजपेई, विनोदशंकर व्यास, वाचस्पति पाठक, जैनेन्द्रकुमार, चंद्रगुप्त विद्यालकार, इलाचंद्र जोशी, आचार्य जहूरवख्श, पदुमलाल पुन्नालाल वख्शी, जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज', डॉ. धनीराम 'प्रेम' ने भी अपनी सुन्दर रचनाओंसे हिंदी कथा-साहित्यकी कोष-वृद्धि की।

चतुर्थ चरण : १९३१ ई० से हिंदी कहानीको एक नया ही मोड़ मिला। कहानीकारोंने कथा-वस्तुके अतिरिक्त शिल्पकी ओर भी ध्यान देना प्रारम्भ किया। मनोविज्ञानने भी कहानी में प्रवेश किया। हिंदीकी अनेक महत्त्वपूर्ण कहानियाँ इस कालके कथाकारोंकी देन हैं। श्री भगवतीचरण वर्मा, महादेवी वर्मा, सियारामशरण गुप्त, राधाकृष्ण, 'अजेय', उपेन्द्रनाथ अश्क आदि कहानीकार १९३५ ई० तक सुप्रसिद्ध हो चुके थे। 'इक्कीस कहानियाँ' संकलन इन्हीं नामोंके साथ समाप्त होता है। कदाचित् यही कारण है कि 'इक्कीस कहानियाँ' में १९३६ से १९४० ई० के बीच लिखने वाले कहानीकारोंका समावेश न किया जा सका।

'इक्कीस कहानियाँ' संकलनके पूरकके रूप में श्री राय कृष्णदासने १९४२ ई० में अपने सम्पादनमें एक दूसरा महत्त्वपूर्ण कथा-संकलन 'नई कहानियाँ' तैयार किया। 'नई कहानियाँ' संग्रहका अधिक प्रचार न हो सका, यह सत्य है, किंतु इससे उस संकलनका महत्त्व कम नहीं होता। इस संग्रह में १९३६ से १९३९ ई० तककी बारह प्रतिनिधि कहानियाँ समयानुक्रमसे दी गई हैं। कथाकार हैं—श्रीमती माधवी, सत्यवती

मलिक, मुधाकर दीक्षित, यमुनादत्त वैष्णव, हरदयाल 'मौजा', रामकृष्णदत्त गर्ग, बलराज साहनी, कमलाकांत वर्मा, शांतिप्रसाद वर्मा, विष्णु प्रभाकर, वीरेश्वर सिंह और यशपाल । ये सब कहानियाँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं से एकत्र की गई थीं ।

मैं समझता हूँ, इन नामोंको जोड़ देने पर हिंदी कहानीके चौथे दशकके कहानीकारोंकी सूची पूर्ण हो जाती है । यह सूची श्री भगवती-चरण वर्माके नामसे प्रारम्भ होती है और श्री यशपालके नामसे समाप्त होती है ।

पाँचवाँ चरण : १९४१ ई० के बाद कहानियाँ लिखीं तो बहुत गईं; किंतु हिंदी कहानीपर काम लगभग नहीके बराबर ही हुआ । काम करता भी कौन ? इस बीच कई कथा-संग्रह प्रकाशित हुए जो मुख्यतः कोर्स में लगानेके लिए तैयार किये गये थे और जिनमें घुमा-फिराकर एक ही नाम और एक ही कहानियाँ थी । ये संग्रह कोर्समें लगे भी, किंतु किसी भी सम्पादकने कथाकार-सूचीको दोहराने, उसमें सुधार करने और उसे अपटुडेट बनानेकी लेश-मात्र भी कोशिश नहीं की । ठीक भी था । कोर्स में लग जानेके बाद तो पुस्तकको मोक्ष प्राप्त हो जाता है, फिर उसमें सुधार की कोई आवश्यकता कदाचित् रहती भी नहीं । अन्य प्रकाशक बड़े नाम देखकर उपन्यास और कहानी-संग्रह छापते रहे । परिणाम यह हुआ कि जो लेखक प्रबंध कर सके वे ही अपने कहानी-संग्रह छपा पाये । बाक़ी रह गये । हाँ, पत्र-पत्रिकाओंमें धड़ल्लेसे कहानियाँ छपती रहीं । यह स्थिति अभी तक लगभग ऐसी ही चल रही है ।

पाँचवे दशक ( १९४१ से ५० ) में इतने अधिक कहानीकार कथा-क्षेत्र में आये हैं और इतनी अधिक संख्यामें अच्छी व सुन्दर कहानियाँ लिखी गई है कि दस वर्षके लम्बे कालमें केवल बीस कहानी-कारोंकी सूची बनानेसे कदाचित् सब कहानीकारों और उनकी रचनाओंके



प्रति समुचित न्याय नहीं हो सकेगा । मेरे विचारसे यदि दसकी अपेक्षा पाँच वर्षकी अवधि में हिंदी कहानीकी प्रगतिका अध्ययन किया जाय तो कदाचित् अधिक सुविधा होगी ।

पुरानी पत्र-पत्रिकाओंकी फाइले देखनेपर पता चलता है कि १९४० ई० से १९४४ ई० के बीच हिंदी कहानीको कहानीकारोंकी एक विल्कुल नई ही सूची मिली । इन कहानीकारोंने हिंदीको ढेर सारी 'प्यारी' कहानियाँ भेंट की । यह हमारा दुर्भाग्य है कि प्रचारसे दूर रहनेके कारण ये कथाकार और इनकी कहानियाँ हिन्दी साहित्यमें शीर्ष स्थान न पा सकी, जिनकी वह अधिकारिणी थी और श्री चंद्रगुप्त विद्यालकार जैसे प्रतिष्ठित कथाकार एवं कथा-आलोचकको अपने सद्य-प्रकाशित कहानी-संग्रह 'तीन दिन'की भूमिकामें लिखना पड़ा कि "पिछला दशक ( १९४१ से १९५० ) तो नये कहानी-लेखकोंकी दृष्टिसे जैसे एकदम वीराना-सा रहा ।" हो सकता है चंद्रगुप्त जीके सामने स्पष्ट चित्र न रहा हो किन्तु जिन असंख्य पाठकोंने ये कहानियाँ पढ़ी हैं वे आज तक इन कहानियोंकी मधुर स्मृति नहीं भुल पाये हैं । इस कालके कथाकार श्री द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण', अमृतलाल नागर, नलिनविलोचन शर्मा, डॉ. आर्येन्द्र शर्मा ( आर. ए. एस. नामसे 'माया'में प्रकाशित कहानियोंके लेखक ), कमल जोशी, नरेन्द्र शर्मा, पहाडी, वीरेश्वर, चंद्रकिरण सौनरेक्सा, निर्मला मित्र, 'नज्म', रामचंद्र तिवारी, होमवती देवी, कमला चौधरी, सुशीला आगा, कुँवरानी तारा देवी, शोभाचंद्र जोशी, यशपाल जैन, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', रामप्रताप बहादुर, कृष्णानंद गुप्त, कौशल्या अश्वक, धर्मप्रकाश आनंद, 'शिष्यार्थी' और वृजेन्द्रनाथ गौड की अनेक कहानियोंको मैं प्रमाण स्वरूप उपस्थित कर सकता हूँ । इन कहानियोंमें किसी 'वाद'का प्रचार नहीं था । ये सीधी-सादी कहानियाँ थीं—मानव मनकी, मनुष्यके दुःख-सुखकी, उसके सपनों, उसकी आकांक्षाओं, सफलताओं-असफलताओंकी ।

१९४४ से १९४८ ई० के बीच हमे बिल्कुल नये कथाकारों के नाम-देखनेको मिलते है जिन्होंने अपनी कहानियों द्वारा कहना चाहा कि कहानियाँ लिखनेका कुछ न कुछ प्रयोजन अवश्य होना चाहिए—वह प्रयोजन चाहे प्रचार ही क्यों न हो। इन लेखकोंने अपनी कहानियों और रिपोर्टाजो द्वारा प्रचार किया भी—युद्धके विरुद्ध, फासिस्ट शक्तियोंके विरुद्ध, साम्राज्यवाद के विरुद्ध। ये कहानियाँ नारोकी तरह उभरीं और नारोकी ही तरह शात हो गईं। तिसपर भी इन कहानीकारोकी जो कहानियाँ प्रचार और नारोसे मुक्त है वे पढ़नेमे सचमुच आनंद देती है। इस कालके प्रमुख कथाकार है—भैरवप्रसाद गुप्त, अमृत राय, रागेय राघव, हसराज 'रहबर', गंगा-प्रसाद मिश्र, तेजबहादुर चौधरी, प्रभाकर माचवे, देवेन्द्र सत्यार्थी, मन्मथ-नाथ गुप्त, अविनाश चद्र, शमशेरबहादुर सिंह, गिरीश अस्थाना, 'युगल', 'ब्रह्मा' और कृष्णचंद्र शर्मा 'भिक्षू'।

१९४८ से १९५२ ई० के बीच इन पुराने नामोके साथ-साथ हमे फिर कुछ नये नाम दीखते है। ये नाम है धर्मवीर भारती, कृष्णा सोबती, राम कुमार, राय आनंदकृष्ण, ओंकार शरद, जीवन नायक, 'शची', कृष्णकिशोर श्रीवास्तव, मिसला मिश्र, विपुला देवी, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, चद्रकांत, राजेन्द्र यादव, परदेशी, मोहन राकेश, जयसिंह, राधाकृष्ण प्रसाद, केशवगोपाल निगम, जनार्दन मुक्तिदूत, सत्येन्द्र शर्मा, नित्यानंद वात्स्यायन, चद्रा आलक, लीला अवस्थी, कृष्णनंदन सिनहा और श्रीनरेशके। इन कथाकारोमे से कुछकी चुनी हुई कहानियाँ प्रस्तुत संग्रहमे सकलित है। ये कहानियाँ कैसी है, यह निर्णय पाठक स्वयं ही करेगे। सम्भव है कई कहानियोंको वे पहले किसी पत्र या पत्रिकामें पढ़ भी चुके हो।

१९५२ ई० से हिन्दी कहानीने जो उठान ली है वह सन्तोषजनक तो है ही, साथ ही भविष्यके लिए बड़ी आशाएँ भी बँधवाती है। नई पत्र-पत्रिकाओंके प्रकाशनके कारण इधर कहानियाँ ढडल्लेसे छप रही है।

यह प्रसन्नताका विषय है कि कहानीकार डटकर लिख भी रहे हैं और अच्छा लिख रहे हैं। १९५२ या उसके निकटसे लिखना प्रारम्भ करनेवालोंमें प्रमुख है—शिवप्रसाद सिंह, मनोहरश्याम जोशी, अमरकान्त, भीष्म साहनी, निर्मल वर्मा, ओमप्रकाश श्रीवास्तव, ओंकारनाथ श्रीवास्तव, कमलेश्वर, मार्कण्डेय, फणीश्वरनाथ 'रेणु', विद्यासागर नौटियाल, शेखर जोशी, जितेन्द्र, 'दिवाकर', डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल, केशवप्रसाद मिश्र, कुलभूषण, रघुवीर सहाय, हरिशङ्कर परसाई, अनन्तकुमार 'पाषाण', नन्दकुमार पाठक, प्रमोद वर्मा, वीरेन्द्रकृष्ण माथुर, कृष्णवलदेव वैद, रामदरस मिश्र, सतीश सरकार, देवेन्द्र इस्सर, 'सत्य', 'कल्पना', कुमारी उषा, मन्नू भण्डारी, इंदिरा 'नूपुर', अजितकुमार और आनन्दप्रकाश जैन। इन कथाकारोंके साथ ही पुराने खेवके कथाकार भी ( जिन्होंने लिखना बन्द नहीं किया है ) अपनी सुन्दर रचनाओंसे हिन्दी कथा-साहित्यको समृद्ध बना रहे हैं। सद्यःप्रकाशित कथा-संकलन 'कहानियाँ १९५५' या 'कहानी' मासिकके जनवरी, ५५-के विशेषाङ्कको देख सहज ही कहा जा सकता है कि हिन्दी कहानीमें कोई गत्यवरोध नहीं आया है। उसका भविष्य निःसन्देह उज्ज्वल है।

×

×

×

१९४८ से १९५२ ई० तककी बारह चुनी हुई कहानियोंका यह संकलन आपके हाथोंमें है। यही काल इसलिए चुना गया है कि यह कहानी-पाठके निकटतम भी है, और तटस्थतासे देख सकनेके लिए जो दूरी आवश्यक है वह भी इसके और संकलन-कर्त्ताके बीचमें है। संकलनमें बारहसे अधिक कहानियाँ भी हो सकती थी, परन्तु बहुत आग्रहपर भी अनेक कहानीकार बन्धुओंसे उनकी अनुमति और परिचय न प्राप्त हो सके; और मुझे विवश हो उनकी कहानियोंका मोह छोड़ना पडा। उन पाठकोंसे क्षमा चाहूँगा जो अपने प्रिय कथाकारका नाम इसमें न देख निराश होंगे। पाठक-गण और कहानीकार बन्धु जो भी सुझाव देगे, पुस्तकके अगले संस्करणमें यथाशक्ति

उन सुभाओका आदरकर सकलनको सुधारनेकी चेष्टा करूँगा—मैं यह विश्वास भी दिलाना चाहता हूँ ।

सग्रहमे एक कमी रह गई है जो स्वयं मुझे खटक रही है । वह है—हास्य-रसकी कहानीकी अनुपस्थिति । किन्तु बहुत खोजनेपर भी मुझे इस कालमे प्रकाशित हास्य रसकी कोई अच्छी कहानी नहीं मिल सकी । यदि पाठक कोई कहानी सुभा सके तो उनका आभार मानूँगा ।

×

×

×

अन्त मे एक बात और कहना चाहूँगा ।

वह यह कि यह सकलन बहुत देरसे—लगभग चार वर्ष बाद—प्रकाशित हो रहा है । इस वर्ष तो १९५२ से १९५६ ई० की प्रतिनिधि कहानियोका सकलन प्रकाशित हो जाना चाहिए, परन्तु बहुत-सी बाते ऐसी होती हैं जिनमे हमारा आपका कोई वश नहीं होता । समझ लीजिए, इस सकलनका प्रकाशन भी ऐसी ही एक बात थी । सकलन छप रहा है—मुझे सबसे बड़ी प्रसन्नता इसी बात की है । यदि यह संकलन और इसके उद्देश्य मे निहित शुभको पसन्द किया गया तो शीघ्र ही मैं १९५२-५६ और १९४१-४४, १९४४-४८ की प्रतिनिधि कहानियोके संकलन भी आपकी सेवामे उपस्थित करूँगा ।

×

×

×

कहानीकारोका परिचय लिखनेमे मुझे भाई मनोहरश्याम जोशीसे बड़ी सहायता मिली है । उन्हे धन्यवाद दूँगा तो वे बुरा मानेगे ।

आकाशवाणी, देहली }  
अक्टूबर ५७

सत्येन्द्र शर्मा

## विषय-क्रम

कहानी	कहानीकार	पृष्ठ
एक दिन	कृष्णा सोवती	२०
हुस्ना बीबी	रामकुमार	३७
माधवी और कर्णिकार	राय आनंदकृष्ण	६६
आनंद	कृष्णकिशोर श्रीवास्तव	७२
दो हाथ	जीवन नायक	८४
तीन खत	मिसला मिश्र	९५
फुलवरिया	राधाकृष्ण प्रसाद	११८
कमला मर गई	सर्वेश्वरदयाल सक्सेना	१२७
खेल-खिलौने	राजेन्द्र यादव	१४८
अवरोध	परदेशी	१७७
वासनाकी छायामे	मोहन राकेश	१८३
हमपेशा	सत्येन्द्र शर्मा	२०५



नये चित्र  
.



## कृष्णा सोवती

कृष्णा सोवतीका जन्म पञ्चावके एक सम्पन्न परिवारमे हुआ ।  
बचपन चनावके किनारे सुन्दरसे गाँवमे बीता आर शिक्षा दिल्ली,  
शिमला और लाहौरमे हुई ।

कृष्णा सोवतीके व्यक्तित्व और साहित्यके दो प्रधान गुण हैं—  
जिज्ञासा और सवेदना । जिज्ञासाने उन्हे अपने पात्रोके मनमे गहरे  
पैठनेकी प्रेरणा दी है, और सवेदनाने उन पात्रोके अन्तरतमकी  
भावनाओका वास्तविक, मानवीय और मर्म-स्पर्शी निरूपण करनेकी  
क्षमता दी है । आपकी कहानियाँ पाठकों फूलके समान मृदुल  
आर छन्दमय जगत्मे ले जाती हैं, जो एकदम छुईमुई होते हुए  
भी किसी अज्ञात और अद्भुत विधानसे सन्तुलित हैं । कथानक चाहे  
आधुनिक शहरके उच्च मध्यवर्गीय जीवनसे उठाया गया हो, चाहे  
पञ्चावके सुदूर गाँवके, उसके चित्रिकरणमे वही सादगी, वही कृष्णा  
आर वही गीतिमयता प्रकट होती है । सोवतीजी की प्रत्येक रचनामे  
एक मन्थर सङ्गीतकी अनुर्गूँज विद्यमान है, जिसका आविर्भाव  
मानवीय भावनाओके अन्तर्द्वन्द्वसे होता है ।

आप बहुत कम लिखती हैं, लेकिन जो कुछ भी लिखा है  
प्रथम श्रेणीका है । 'सिक्का बदल गया', 'दो बूँद आँसू', 'बदली  
बरस गई', 'नया दिन', 'दादी अम्माँ', 'बादलोके घेरे', 'डारसे  
त्रिछुड़ी' आदि कहानियाँ हमारे कथा-साहित्यकी निधि हैं ।



## • एक दिन

—कृष्णा सोवती

इस घरपरसे होकर सदियों गुजर गईं, गर्मियाँ आईं, फिर सदियों,—  
बहार और फिर गर्मियाँ । सावन शुरू हो गया था । काले-कजरारे मेघांकी  
आपसमे होड़ होती, बल ग्याती बिजली चमकती और छम, छम, छम..  
बरखासे धरती भीग जाती । जाने कहींसे बादल धिरते, कहींपर छाते,  
और कहींपर बरस जाते ।

दो दिनसे धूप नहीं निकली । दिन भर आकाश घिरा रहता, और  
रातको चाँद-तारोंके बिना दुनिया अन्धी हो गई लगती । आज शामको  
धर्मपाल कामसे लौटे तो चिन्तित दीख रहे थे । कुर्सीपर बैठने हुए  
श्यामासे गम्भीर स्वरमे बोले—“श्यामा, जगदीशका तार आया है ।  
बीमार अधिक है. . .”

श्यामाका जी धकसे रह गया । “है भी तो अकेला, तुम्हे भेजनेको  
लिखा है ।” यह सुनकर श्यामा एक हाथसे साडीका छोर पकड़े रही और  
दूसरेमे तार । एक बार पढ़ा, दो बार पढ़ा और फिर कुछ साँचा कि कौन  
उसके पास बैठा है ? भाई नहीं, बहिन नहीं, माँ नहीं—और माँपर  
विचार रुकते ही आँखे भर आईं । इतनी देर हो गई उसे ससुराल आये  
पर भाईके सिवाय और कौन है जिसको उसकी खोज-खबर भी हो । अपने  
घरमे वह दुःखी नहीं पर अपना सुख सुनाये किसे ? आँसू टपटप  
निकल पड़े ।

“इधर आओ श्यामा, घरवाओ मत । कोई ज्यादा फ़िक्रकी बात नहीं  
होगी, अकेला है.. .” श्यामा पतिके पास जाकर और भी जोरसे रो  
दी । जैसे कहना चाहती हो, भाईका प्यार तुम नहीं समझते, मायकेमे  
और कोई नहीं.. . .

रात तो किसी भी तरह कटनेमें नहीं आती । धर्मपाल बोले, “श्यामा, कल नन्दूको साथ लेकर जगदीशको देग्य आओ । सफर लम्बा है, साथ किसीका होना जरूरी ही है ।”

श्यामाको सहारा मिला । लेकिन नारीकी नमस्या क्या इतनी सहल है ? एकदम सोचा—पतिको अकेला छोड़ जायगी ? अकेला. नहीं । शीला. वह इस घरसे बाहर तो नहीं । पर पतिको तो उसने उस ओर मुँह करते भी नहीं देखा । पर. ‘पर’पर वह अटक जाती है । क्या वह पतिको पहचानती नहीं ? ब्याह हुए कितनी देर हो गई है लेकिन कभी उसने अपनेको अलग नहीं पाया । कभी-कभी तो जैसे वह खीझ भी उठती है.. लेकिन उस खीझमें खिंचाव कहाँ हाँता है । यही तो वह विवश है, बेवस है । असहाय-सा समझ अपनेको श्यामाने पतिकी बांहमें डाल दिया ओर एक बार फिर भाईकी बीमारीकी याद करके रो पड़ी ।

दूसरे दिन सुबहसे दुपहर तक वह व्यन्त रही । कपड़े सहेजे, पतिके कपड़ोंको अलग छुँटा, उसके जानेके बाद उन्हें ठिक्कत न हो, नौकर-चाकरोको हिदायते दीं । रक्खोंको बहूके भाईकी फिकर न हो, ऐसी बात नहीं । पर कुछ दिन तो आराम वह भी चाहती है । कृत्रिम स्नेह जताकर बोली—“बहूजी, कुछ देर लेट जाओ । लम्बा सफर तय करना है ।”

श्यामा लेट गई । सोचा, गृहस्थीके लम्बे-चौड़े धन्वे हैं । अभी तो कोई बाल-बच्चा नहीं, फिर भी सुबहसे काममें लगी हूँ । जरा आँख लगी ही थी कि चौककर उठ बैठी । रक्खो अपनी कर्कश आवाजमें कह रही थी : “आइये जी, आइये जी ”

श्यामाको महरीके आनेका सशय-सा हुआ । पर यह क्या ? सामने तो शीला खड़ी थी । उसे देखकर खिल तो नहीं पाई । हैरान-सी रह गई, पर शिष्टाचार । खड़ी होकर बोली—“आइए न, आइए ।” और फिर पास पड़े सोफेकी ओर इशारा करते हुए कह उठी—“बैठिए ।”

शीला बैठी तो जरूर लेकिन उस शिष्टाचारमे रखवाईकी मात्रा जाननेमें देर नहीं लगी। हाथके सकेतसे महरी और रखवाको बाहर बैठे रहनेको कहा। नौकर-चाकरोको ऐसे मौकोमे मजा आता है पर इनसे ज्यादा ढील अच्छी नहीं।

रखवा और महरी बाहर चली गईं लेकिन मर्जोंसे नहीं। महरी तो जरूर अपना हक अधिक समझती है, पर शीला कम सयानी नहीं। क्या वह श्यामाके सामने महरीको अपना सगा जतायगी? श्यामाके चेहरेपर जरा सकोच और छिपी पड़ी खिन्नताका-सा भाव देखकर शीला बोली, “बहिन, नन्दूने बताया है कि वीरकी तबीयत अच्छी नहीं? क्या पहले कोई खत आया था।”

श्यामाने शीलाकी आँखोंको पढ़ सकनेका प्रयत्न करते हुए कहा, “नहीं, कल ही तार आया है। पता नहीं कैसा है? कोई पास भी है या नहीं। ..”

“बहिन, घबराना मत”, कहते-कहते शीलाके बोल भारी-से हो गये, “रास्तेमे जरा एहतियात ही बरतना। नन्दू साथ ठीक रहेगा।” फिर बाहोमे पड़ी देर-सी चूड़ियोंकी ओर दृष्टि डालकर कहा—“सँभाल ही रखना जेवरोंकी बाहे ढकी ही अच्छी है। आजकल लोगोंका कुछ पता नहीं।”

श्यामाको यह सलाह कैसी लगी शीलाने नहीं जाना। उसे जानकर करना भी क्या है? श्यामाकी नजर न जाने क्यों घड़ीकी ओर गई—धर्मपालके आनेका समय हो गया। क्या शीला नहीं जानती? मगर श्यामा कहे किस बहाने? ‘यह तो उसे अपने-आप ही समझना चाहिए। पर यह क्या? उसे क्या पतिसे परदा करना है? फिर भी पता नहीं क्यों, वह नहीं चाहती कि शीलाके बैठे वे यहाँ आये। बाहरसे जूतोंकी आहट आई। श्यामा चौकन्नी हुई। शीलाने सिरका दुपट्टा ठीक किया। और परदा उठाकर धर्मपाल अन्दर आ गये। आये और देखकर ठिठक गये।

श्यामाके तेवर उभर आये और शीलाकी ऊपर उठी हुई नजर जैसे धक्का खाकर नीचे उतर गई हो। धर्मपालके रुके हुए पैर जब वापिस लौटने लगे तो श्यामा सँभली। कुछ खीभसे, कुछ चिढ़कर बोली—  
“आओ न, बैठो न जी।”

धर्मपालने पत्नीकी ओर बिना देखे कुर्सी खींची और बैठ गये। पर सामनेकी ओर नजर नहीं उठ सकी। आज शीला यहाँ कैसे? अपनेपर जैसे गुस्सा-सा आया। वह बाहर महरी और रक्खोको देखकर दूसरे कमरेमें जा सकते थे। पर,

“गाड़ीका सब ठीक-ठाक हो गया है न?” श्यामाने कुछ छिलती हुई आवाज़में पूछा।

“हाँ हाँ, सीट बुक हो गई है।” कहकर धर्मपालको मानो स्वयं अपनी आवाज अच्छी नहीं लगी। लगा, जैसे उन्हें कुछ असुविधा-सी हो रही है।

बाहर रक्खो और महरी एक दूसरेकी ओँखोंमें देख रही हैं, जैसे कुछ होनेवाला है। जमाईको देखकर महरीने विजयकी दृष्टिसे रक्खोकी ओर देखा था। जाने क्यों?

शीलाकी ओँखें नीचे देख रही हैं और हाथ अशक्तसे होकर जैसे गोटीमें गिर पड़े हैं। उठ जाय, पर पाँव जैसे चल नहीं पायेंगे। लेकिन क्या उसका यहाँ बैठना ठीक है?... वही कमरा है. वही परदे हैं.. वही फर्श है और खुली आलमारीमें पड़े तरतीबवार वही पतिके कपड़े.. पर वह और उसके पति? वह नहीं। शीलाका दिल ऐसा हुआ जैसे किसीने छलकते पानीको निर्दयतासे ढॉप दिया हो। किसी तरह शुष्क होते जा रहे गलेसे आवाज निकालकर बोली, “चाची महरी!”

यह स्वर बाहर तो नहीं पहुँच सकता। श्यामाको दिलमें शायद हँसी आ गई थी। शीलापर अहसान-सा करते हुए पुकारा, “रक्खो, महरीको अन्दर भेजो।” और श्यामाके बुलाते ही शीला अपनेको झकझोरकर उठ

पड़ी। दुपट्टा एक तरफसे बहुत नीचा हो गया था, जैसे अपनी मुध न रही हो। पर नहीं, चाल वैसी ही जमी हुई थी।

महरी अन्दर आई। देखा, बच्ची उठकर दरवाजे तक आ गई थी और साथ-साथ श्यामा भी। “अच्छा जी”—श्यामाने जरा-सा मुसकराकर हाथ जोड़े, जैसे किसी पराजिताको देख रही हो।

शीलाने उत्तर दिया और सहज कण्ठसे बोली—“अच्छा, अपना खयाल रखना और वीरकी सेहतका पता देना।” और बाहर निकल गई।

पीछेसे महरीने दुपट्टेका फर्शपर पड़ता छोर पकड़ लिया और पहली सीढ़ी उतरते ही उसने बच्चीको कन्धोसे पकड़कर सहारा दिया। अब तक सब कुछ समझ गई थी। जमाई कुछ बात करते तो क्या दृष्टि इतनी जल्दी फिरा लेते।

और धर्मपाल शीलाकी ओर नहीं देख सके, नहीं देख सके। आँखें जैसे एक बार भूली हुई तस्वीरको देखना चाहती थी, पर जब शीला उठकर श्यामाके साथ-साथ चल दी थी तो उन्होंने सिर ऊँचा किया और एकदम ऐसा लगा जैसे शीला पहलेसे लम्बी हो गई थी—लम्बी? नहीं, उसका भरा-भरा बदन दुबला हो गया था। तिल्लेटार जूतीको रेशमी सलवार नीचे तक छू रही थी—और फर्शपर पड़ते हुए शीलाके पैरोंको देखकर उन्होंने सोचा कि उनमें एक ज़िमीदारा अन्दाज था जो अवज्ञा सहकर भी शानसे आगे बढ़ता जा रहा था।

नीचे—नीचे, दिलके बहुत नीचे किसी परदेसे उठकर वह दिन धर्मपालकी आँखोंमें उतर आया जब इसी तरह शीलाको तैयार खड़े देख उन्होंने अचानक उसे खींचकर अधीरतासे बाहोमें भर लिया था। उसकी आँखें बन्द थी और उनकी खुली, जैसे नारीकी मूर्च्छित-सी पड़ी सुन्दरता कह रही हो—लो देख लो।

श्यामा वापिस आकर पतिके निकट खड़ी हो गई। एक बार परीक्षाकी नज़रोसे पतिकी ओर देखा—तब तक धर्मपाल सिगरेट जला चुके थे।

सिगरेटके फैलते-से धुएँने मानो उनके चेहरेकी अँखियोंको ढक लिया । श्यामाने कटाक्ष किया—“आज तो जमानेके बौढ़-धरकी बड़ी बहू को देखा है जी ! क्या उससे डर गये थे ? एक बात ही कर लेते बेचारीके साथ !”

धर्मपालने धुआँ छोड़ते हुए सोचा—उससे क्या डरता ? डरानेको क्या तुम कम थी ? प्रत्यक्ष जरा हँसकर बोले—“मुझे क्या बात करनी थी ? बात तो वह तुमसे करने आई थी ?”

“जगदीशका हाल पूछ रही थी और कहती थी वहाँ जाकर उसका पता देना ।”

शीलसे यह सुनकर पता नहीं धर्मपालको जीमे कैसा लगा, पर उन्होंने कुछ कहा नहीं । बातको बदलकर बोले—“सामान सब बँध लिया है न ?”

“हाँ, सब तैयार है ।”

श्यामा पतिके विषय-परिवर्तनका अर्थ नहीं समझी । धर्मपालने कलाई पर बँधी बड़ीकी ओर देखा और व्यस्त होकर कहा—“और जो कुछ करना है कर डालो । समय अधिक नहीं ।”

श्यामाने कुछ अनोखेसे ढंगसे जवाब दिया—“सब ठीक कर लिया है । तुम्हारे सब कपड़े इस ओर वाली अलमारीमे रख दिये हैं । किसी गर्म कपड़ेकी जरूरत होगी तो उस बड़े बक्समेसे निकलवा लेना ।”

श्यामा एक क्षण चुप रही और कुछ अन्दर-ही-अन्दर छिपा लेनेके प्रयत्नमे चूड़ियोंको बार-बार हिलाते हुए रो पड़ी । टप-टप-टप । धर्मपालने देखा कि ऐसे आँसू एक बार पहले भी किसीके आँखोंसे बहे थे । क्यों आज उसे किन्हीं और आँखोंकी याद आ रही है ? उठकर कन्धोंसे पकड़ कर कहा—“श्यामा, पागल हो गई हो क्या ? जल्दी लौट आओगी ।” फिर लाडसे थपथपाकर कहा—“इतना छोटा दिल है ?”

श्यामा पतिकी गोदीमे मुँह छिपाकर रो दी । धर्मपाल उन रेशमी-रेशमीसे बालोंको चूमना चाहते हुए भी सूँवकर रह गये । उन्हें लगा कि

उनकी सुगन्धि बहुत तेज थी, और उस तेजीका आभास उन्हें आज कितनी ढेरके बाद हुआ ।

×

×

×

कल बाटल फटे थे आज फिर फिर आये । बाटलोके परदोके-परदे आसमान पर चढ़े आ रहे थे । दुपहरकी कड़कडाती सफेदी न जाने कहाँ खो गई थी । कभी हल्की-फुल्की हवाएँ भूमते-भूमते पेड़ोको चूमकर परदोको हिला जाती । शीला सोफेपर अधलेटी थी । महरीने परदे उठा दिये थे । ओर फर्शपर बैठी-बैठी उलझी हुई उनको सुलभा रही थी । उस दिन ऊपरसे आकर बच्ची निढाल-सी होकर बिस्तरपर लेट गई थी, और घण्टो रोती रही थी । चाचीने चुप करानेका कोई प्रयत्न नहीं किया । सिर्फ पाम बैठी बच्चीके सिरपर हाथ फेरती रही । और उस दिनसे बच्ची अनमनी-सी लग रही है । आज सुबह चाची बोली—“बच्ची, यह ऊन पड़ी हुई है । कुछ शुरू कर लो न । सरदियाँ आ रही हैं । जरा जी भी लगा रहता है ।”

“हूँ”, कर बच्ची चुप रह गई । गद्दियोंके सहारे बैठी थी । सिरपर कपडा नहीं था । गहरे नीले रंगके कपडोमे चेहरेका रंग और भी घुला हुआ लगता था । बैठी-बैठी सोच रही थी—श्यामा कैसे व्यगसे मुसकराई थी । जैसे कह रही हो—तुम्हारा बडापन आज कितना छोटा हो गया है । और वह अन्दर आकर ऐसे ठिठक गये थे, जैसे कोई गलत जगह आ गया हो । आदमी कितने वेदर्द होते हैं । बात नहीं, तो क्या आँख उठाकर देख नहीं सकते थे ? लेकिन क्या वह चाहती है कि पति उसे एक बार देखते तो—एक बार—वह दयाकी भूखी है कि तरस खाकर पति उसपर इतनी-सी मेहरबानी करे ! ..

अपनी बेवसी, पतिकी निर्दयता और सौतकी वह उपहासजनक हँसी आँखोमे उतर आई और अपने हाथोको आँखोपर रखकर शीला सिसकने लगी । महरीका हाथ रुक गया । वह जानती है कि जो दिल पतिको देखे

बिना दो सालसे चुपचाप जन्त पड़ा था, उसे निर्मोही पतिकी एक छाया धकेलकर नीचे बहाये लिये जा रही है। बच्चीके हाथोंको ओंखोंसे अलग करके बोली—“माँ बलिहारी जाय, रोये तुम्हारे दुश्मन।” फिर भट्ट क्रोध-भरे लहजेमे बोली—“हाय, हाय, अक्ल मेरी ही मारी जाती है, कपड़े भी निकाले तो यह ? अच्छी, भली जानती हूँ जब-जब यह पहनती हो, दिन अच्छा नहीं गुजरता फिर भी सुबह यह ले आई। बुढ़िया होनेको आई, पर समझ नहीं।” कहते-कहते उठ खड़ी हुई।

शीलाने सब समझा। जबसे होश सम्भाला है वह महरीके हाथो पली है। लाड-चाव, जिद—सब करती रही है। आज महरीको अपनेको फटकारते सुनकर जाने कैसा लगा। कैसे वह उसे दिलासा देती रही है। किसी-न-किसी बहाने जी लगाती रही है। एक पलको अलग नहीं छोड़ती। महरीकी कृतज्ञतासे जी भर आया। वह साथ न होती तो अब तक वह इस चार-दीवारीमे जीवित रहती ?

महरी वापिस लौटी और शीलको हाथसे उठाते हुए बोली—“उठो, बच्ची, मैं सड़के जाऊँ। कपड़े बदल डालो। बच्ची, मुझपर गुस्सा न किया करो। सिर सफेद हो गया है, अब क्या अक्ल ठिकाने रहेगी ?” फिर महरी बच्चीको कपड़े बदलवाने ले गई। क्या बच्ची नहीं समझती ? आज चाची चाहती है कि शीला उसपर गुस्सा करे, जितना करे वह बुरा न मनायगी पर जिस अधिकारहीन ओंचलमे वह अपने ओंख बहाये जा रही है, वहाँ उन्हे झेल लेनेवाला कौन है ?

बिना विरोध किये शीलाने कपड़े बदल डाले। यह सूट कभी उसे कितना पसन्द था। पर आज उसकी पसन्दमे जान ही कहाँ है ? महरीने हाथमे लिये दुपट्टेको चूमकर बच्चीके हाथोंपर डाल दिया। वह कितनी व्यग्त हो, कितनी अस्वस्थ हो, इन छोटी-छोटी बातोंको नहीं भूलती। बच्चीने आगे दुग्डा डाला और फिर कुछ सोचकर बोली—“चाची, नाऊँगी।”



चाचीने पलंगपर तकिये लगा दिये और बोली—“ठीक है बच्ची । कुछ देर आराम कर लो । कैसा बरसाती दिन है । . ” कुछ कहते-कहते रुक गई ।

बच्ची लेट गई थी । चाची कहने लगी थी बरसातमें बेरियो पर डाले हुए झूलोकी बात, पर झट ख्याल आ गया कि सुनकर बच्ची कहीं और-और ख्याल दौड़ाती रहेगी । चुप ही रहे तो अच्छा ।

बच्ची लेटी हुई थी और चाची पास बैठी धीरे-धीरे बच्चीके हाथ सहला रही थी । बच्चीको ऐसे पडे देखकर चाचीने ममताभरे लाडले स्वरमें पूछा—“बच्ची, क्या क्या बात है ? बोलो मेरी बच्ची !”

शीला क्या बोले ? पर इस स्वरकी अवज्ञा वह नहीं कर पायगी । चाचीका हाथ पकड़कर बोली—“चाची, जी अच्छा नहीं ।”

“यह क्या मैं नहीं जानती, मेरी बच्ची ?” चाचीका मातृत्व जैसे अन्दर-ही-अन्दर चीत्कार कर उठा । जी अच्छा रह ही कैसे सकता है ? यह उमर और यह दुःख ! जी हुआ कि वह भी बच्चीके साथ मिलकर रो दे, पर कितनी पागल है वह ? बच्चीको थपथपाते हुए बोली—“सो जाओ, बच्ची, तबियत हल्की हो जायगी ।”

ऊपर घरकी विस्मृता बहूके पति कुर्सीपर पड़े-पड़े न जाने क्या-क्या सोच रहे थे । आज धर्मपाल कामसे जल्दी आ गये थे । जानते थे कि श्यामा नहीं है । पर अधिक देर दफ्तर नहीं बैठ सके । श्यामाको गये अभी तीन-चार दिन ही तो हुए हैं । कल तार आया था—जगदीशको निमोनिया हो गया है । अकेले छोड़नेवाली हालत नहीं । कमरे कैसे सने लगने हैं ? और आज दोपहरको धर्मपाल ठीकसे खाना नहीं खा सके । पत्नीसे उदास होकर न खाया हो, ऐसी बात तो नहीं । फिर भी नारीकी

सन्दिग्ध छाया जैसे आगे पड़े खाने पर बुद्धिमत्तासे छाई रहती है। अभी-अभी जब सानेके लिए नौकर उन्हें कपड़े दे रहा था तो वह सोच रहे थे, ये जरा-जरासे काम औरतोके हाथोंसे कितने अच्छे लगते हैं।

बाहर पानी तेज हो गया था। बाटलोंकी गर्जना और बिजलीकी कड़कड़ाहट जैसे कानोंको चौंकाये जा रही थी। धर्मपालने हाथका सिगरेट नीचे फेंका और उठकर पलंग पर जा लेटे। सोचा, आदमीकी दिन-चर्यामें भी औरतका कितना बड़ा हिस्सा है, और श्यामा.... उसने तो जैसे उन्हें अपनी बाहोंसे बाँध डाला है। जाती बार कैसी रो रही थी। झट ध्यान आया, उस दिन शीलासे कैसे अचानक मिलना हो गया ? पर—पर धर्मपाल नहीं चाहते कि वे इस बातको सोचें। उन्हें जैसे अपने हाथोंसे किये किसी अन्यायकी याद आ जाती है। और अब तकियेपर सिर रखने ही आज द्वाइ सालके बाद पहली बार खयाल आया कि शीलासे क्यों इतनी दूर हो गये। वह बिचारी तो जानती तक न थी। और फिर श्यामाको ले आनेपर कोई बखेड़ा नहीं उठाया, कोई झगडा नहीं किया और वे ? उन्होंने एक बार उसे देखा तक नहीं ? कैसे रहती है, कहाँ रहती है ? इस अंशमें एक बार रुपया तक नहीं मँगवा भेजा। शायद शाहजीके यहाँसे आता होगा—और अबतक शाहजी अपनी बेटीको ले नहीं गये। खयाल आया, शीलाको बिदा करते शाहजीने उनका माथा चूम-चूमकर कहा था—“बेटा ! इसने तुम्हारा लड पकड़ा है, इसे निभाना।” कैसा निभाया है उन्होंने .. ? धर्मपालने करवट ली। क्या वह श्यामासे कम सुन्दर थी ? पर बम्बईमें न जाने उन्हें क्या हो गया था ? उन्हें लगा जैसे वे बदल रहे हैं। सोचा, क्या श्यामाका अभाव तो नहीं ? नहीं, नहीं शीलाकी वह दुबली देह जैसे चीखकर कह रही थी। दिमागमें जैसे हलचल-सी हो गई। अब वे नहीं लेट सकेगे।

धर्मपाल उठकर खड़े हुए। ढीला कोट पहना और सीढियासे नीचे उतर चले। एक क्षण सकोचने मानो पैर जकड़ दिये। पर वह तूफान !

क्या यह रुक सकेगा ? क्या कहेंगे शीलासे ? नहीं, कुछ नहीं । कहनेकी जरूरत नहीं होगी ।

नीचे ऑगनमे आकर देखा, कोई नौकर-चाकर नहीं था । ऑगन पार किया । परदे नीचे पड़े थे । परदा उठाया तो सामने फर्शपर महरी बैठी कपड़ोंकी तह लगा रही थी । बच्ची सो गई थी । इसलिये दवे पोंवों बाहर आकर वह काम-धन्धेमे लगी थी । जमाईको देखते ही आँखे ऊपर नहीं उठी । मानो कहती हो—रिश्ता ऐसा है, क्या कहूँ ? पर तुम यहाँ कैसे ? . . धर्मपाल भी महरीकी ओर ठीकसे देख नहीं पाये । दबी-सी आवाजमें बोले—“महरी !.. ” शायद कुछ पूछना चाहते थे, पर महरी हाथके कपड़े हाथमे लिये, बिना कुछ कहे-सुने बाहर चली गई ।

धर्मपाल एक क्षण परदेको पकड़े खड़े रहे । सोचा, न जाने शीला क्या कर रही होगी । कोई आहट तक नहीं आ रही । अन्दर पहुँचे । सोफा खाली था । सामने पलंगपर सिमटी-सिकुड़ी-सी शीला सोई पड़ी थी । सिरपर बोंह रखी थी । पास एक ओर महीन दुपट्टा पड़ा था । जैसे भारी लगनेपर उतार दिया गया हो । मुँहपर बिजलीकी रोशनी पड़ रही थी । वही चेहरा है, वही बाहे और गोरे स्वच्छ पोंव । शीला ! मगर नहीं, यह आवाज गलेसे नहीं, उनके दिलसे निकली थी और वहीं फैल गई थी । शीला ! शीला बेखबर पड़ी थी । सोच-सोचकर इतनी थक गई थी कि बन्द पलकोंके अन्दर कोई स्वप्न भी नहीं देख पाई ।

धर्मपाल पास आकर खड़े हो गये । क्या यह उचित है ? जैसे किसीने चेता दिया हो । नहीं, धर्मपाल आगे बढ़े—सिरपर रखी बोंहका स्पर्श किया । हल्केसे उसे पकड़ अपने सशक्त हाथोंकी उँगलियों शीलाके बालोंमे डुबो दी ।

सिरपर पड़ते हुए दबावसे शीला चौंक गई । सोचा, चाची है । आँखें खोलीं—और खुली रह गई । विश्वास नहीं आया, शायद वह स्वप्न देख

रही है। उसका हाथ पतिके हाथमें है और वह किसी निर्जीव पत्थरकी तरह पड़ी है। धर्मपालने झुकझोरते हुए काँपती आवाजमें कहा—  
“शीला !”

आवाज शीलाको हिला गई। पतिके उदास-मलिन मुखकी ओर शिकायत-भरी नजरोसे झुके-झुके देखा और विवश होकर रो पड़ी।

“शीला !. ”

शीला रोये जा रही थी। लेकिन आँगूकी बूँदे सिरहानेपर नहीं पतिके वक्षपर पड़ रही थी। बाहर बादल बरसे जा रहे थे और धरती भीग रही थी, और भीगी धरतीके वक्षमें एक आलौडन उठ रहा था—शायद निमाणीकी प्यास ही

×

×

×

वह रात कितनी गीली थी, कितनी गहरी थी। गर्जते हुए बादलोंका निनाद सुनकर भी बिजली चमकती जा रही थी। एक महीन-सी रेखा किस गतिसे कजरारे बादलोंको उन्मत्त किये जा रही थी। और पतिकी गोदमें पड़ी कलतककी बेबस और दुर्बल नारी आज रोकर भी हँसती जा रही थी। और धर्मपाल पत्नीको हँसेसे पुकार भर लेनेके सिवाय और कुछ नहीं कह सके। शीला ! शीला ! शीला !—और इस नामसे वह सब जुड़ गया जो दो साल पहले किसी अनिश्चित कालके लिए टूट गया था, बिछुड़ गया था। लेकिन क्या सचमुच ही सज्ञाका इतना मूल्य है ? देहसे अलग, देहसे भिन्न कौन-सी सज्ञा होती है जो ऐसी रातमें किसी आँखोंमें नाच जाती है ? क्या दोनों इस बातको नहीं जानते ? इतने अनजान नहीं वे। फिर भी किन्हीं दो भटके हुए पुराने साथियोंकी तरह एक-दूसरेको थामे हुए वे सोच रहे हैं कि हमेशा नहीं तो आज तो कम-से-कम इस तूफानी रातमें वे इकट्ठे हैं। सिरपर भयानक तूफानी रात थी। लेकिन स्वयं उनमें अधीरता नहीं थी, जीवनका उष्ण रक्त था जो स्थिर गतिसे बहत

जा रहा था और बहकर उस चिरन्तन ग्यासको बुझा रहा था जो हाड-मासके साथ उसमे जागी थी ।

रात कैसे आई और कैसे बीत गई ? शायद बहुत लम्बी थी । शायद बहुत छोटी थी । शीला नहीं जानती कि रात कैसे कट गई, धर्मपाल नहीं जानते रात कैसे कट गई । लेकिन नारीके अन्तरके नीचे—सबसे नीचे—पडी ममता जानती थी कि रात कैसे गुजर गई । सच है कि वह रातको पकड नहीं पाई लेकिन वह शून्य नहीं थी । उसमे रस था, उसमे जीवन था, जीवनका अर्थ था । जो आज नहीं तो वर्ष भरके बाद मौकी गोदीमे किलकारियाँ लेगा । और मौका ऑचल उसे ओट किये हुए अन्धेरी रातोसे, कश्रसे और अपशकुनोसे बचाता जायगा ।

सुबह धर्मपाल जत्र जगे तो शीला नहा-धोकर तैयार हो गई थी । महरीने बाहरवाले कमरेसे ही बच्चीको चायकी ट्रे पकड़ा दी । नहलाते-नहलाते चाचीने बच्चीसे कहा था—“जल्दी कर लो बच्ची, फिर चायका इन्तजाम करूँ । जमाई तो सुबह-सुबह चायके आदी है ।” शीला सलज्ज हँस दी थी । “चाची, तुम्हे फिकर है ? किसी नौकरसे कह दो न ?” चाचीने भेद-भरी दृष्टिसे बच्चीको देखकर कहा था—“न, न बच्ची । तुम इन नौकर-चाकरोको नहीं जानती । चाय रखने आयेगे, बीस बाते बनावेगे बाहर जाकर । मैं ही लाऊँगी ।” फिर तनिक रुककर उसने कहा था, “बच्ची तुम्हे पकड़ा दूँगी । तुम्ही अन्दर ले जाना.. ।” “क्यों-क्यों, चाची ? क्या तुम. ...” उसने चाचीसे पूछना चाहा था । बीच हीमें चाची बोली, “तुम भोली हो बच्ची । सुबह-सुबह उठकर क्या जमाईको मेरा ही मुँह देखना है ?” शीला खुलकर हँस दी थी—“ओह चाची, क्या मैं सोते-जागते तुम्हे नहीं देखती ?”... चाचीने कहा था—“वह और बात है बच्ची । तुम नहीं समझती, लओ जरा पैरोको मल्लें कितनी खुशकी हो गई है...।” शीला समझ गई थी कि चाची अन्दर जाकर धर्मपालको सङ्कोचमे नहीं डालना चाहती । मन-ही-मन हँसकर वह चाचीके प्रस्तावसे

सहमत हो गई थी। चाचीने ट्रे पकड़ा दी थी और शीलाने उसे मेजपर ला रखा था और पतिके सिरहाने जरा झुक कर धीरेसे पतिके बालोको छूती हुई मृदु कण्ठसे बोली—“उठना नहीं जी ? दिन चढ़ आया।”

धर्मपालने आँखें खोली, शीला बिल्कुल पास खड़ी थी। भरकर देखा, कैसी निखरी-सी लगती है ! जैसे बीती हुई रात उसे रुलाकर हल्का कर गई थी। खींचकर पास बिठा लिया। आँखोंमें सकोच नहीं, दूरी नहीं। शीला !...शीला लजा गई। बैठे-बैठे चाय बनाकर प्याला हाथमें लिये बोली—“लीजिये न।”

“नहीं, रख दो।” धर्मपाल कह उठे। शीलाने पतिकी ओर देखा। उसमें आहत-सा अभिमान था। प्याला मेजपर रखकर बोली—“क्यों, क्या अभी उठोगे नहीं ?” और पतिकी बाँहपर हाथ रख दिया। धर्मपाल कुछ क्षण देखते रहे और फिर आँखोंकी कोरोसे दो बूँदे डुलक गईं। शीलाने अपने हाथसे आँखें ठक दी और दूसरेसे पतिके बाल सहलाते हुए बोली—“सुबह-सुबह यह क्यों ? अपनेसे नाराज हो रहे हो ?”

“नहीं”, धर्मपाल रूंधी-सी आवाजमें बोले—“तुमसे क्या कहूँ शीला ? मैं नहीं जानता।”

बीती हुई रातके बाद भी कुछ रहा-सहा मलाल पतिके इन दो आँसुओं से धुल गया। स्वयं ही सोचा, नारी इन बातोंमें कितनी कच्ची होती है ? लेकिन इतना पश्चात्ताप काफी नहीं। पतिके वक्षपर सिर रखकर बोली, “कैसी बातें करते हो ? तुमसे आज तक क्या मैंने शिकायत की ?”

इसका जवाब धर्मपालने कुछ नहीं दिया। वैसे सोचते थे कि एक उपालम्भ ही दिया होता। पर उसने तो जवाब नहीं माँगा और आज भी तो उस बातको कैसे बचाती जा रही है। जैसे आजके दिनमें वह उन सब बातोंको नहीं मिलाना चाहती।

शीलाने पलभर उत्तर की, नहीं तो कुछ सुननेकी, प्रतीक्षाके बाद

कहा—“उठो, जी ! छोड़ो इस सोचको, आज क्या काम पर नहीं जाओगे ?”

“नहीं !”

“अच्छा !” शीला हँस पड़ी । पुरानी बात याद आ गई । जब वह नई-नई ब्याही आई तो पति अक्सर सुबह देर तक सोते रहते । उठनेके लिए कहती तो कहते—शीला, आज काम पर जानेको जी नहीं चाहता । वह शरमाकर मुसकरा देती । शरारतसे कहती—लाला जी तो कुछ नहीं पूछेंगे । और धर्मपाल कुछ खीजकर उठ बैठते । और वह मन ही मन मुसकराया करती । जैसे कहती हो—दिनमें तो छोड़ा करो ।

“तो आज भी कामपर नहीं जाओगे ?”

धर्मपालने सिर हिलाया—“नहीं ।”

“अच्छा तो नहा-धोकर फिर लेट जाना । कपड़े ऊपरसे मँगवा देती हूँ । रखवे होंगे ही ऊपर ।” यह कहकर शीला महरीको बुलाने ही लगी थी कि धर्मपाल बोले—“नहीं उसे मत भेजो, अपने आप जाकर निकाल लाओ ।”

धर्मपालके स्वरमें अनुरोध था । जैसे पत्नीको उसके अधिकारकी याद दिला रहे थे । ऊपर जानेकी अनिच्छा, वह भी श्यामाकी अनुपस्थिति में—पर ‘न’ करनेमें भी शीलाको संकोच-सा हुआ । अनमनी-सी होकर उठी । महरीको बुलाकर कहा—“महरी, उनके कपड़े लाने हैं ऊपरसे । चलो तुम्हारे साथ चलती हूँ ।”

चाचीने एक बार बच्चीको खुली दृष्टिसे देखा और जरा-सा हँसकर बोली—“चलो, बच्ची !” दिलमें कह रही थी—इस कामके लिए नहीं जाऊँगी ।

शीलाने कमरेमें प्रवेश किया । उस दिन भी तो यही सब कुछ था । कितना पराया लगा था । शायद श्यामा इसकी मालकिन लग रही थी ।

और आज ? कपडोंकी अलमारी खोलते-खोलते लगा कि दो वर्षके बाद उसे फिर अपना अधिकार मिल गया है । वे दो वर्ष, जो कटनेमे नहीं आते थे, आज कितने छोटे हो गये हैं ! कपडोंको तरतीबवार रखनेवाले हाथोंसे आज पहली बार शीलाको ईर्ष्या-सी हुई । और कपड़े निकालकर जब शीला नीचे उतरी तो पोवोमें गति थी, और चालमे घरकी स्वामिनी होनेका रोव था । बौह पर रखे कपडोंको देखकर महरीने मन ही मन कहा—भगवान् करे, बड़ी-बड़ी उम्र हो बच्ची की और जमाईकी भी । आज क्या वह जमाईको बच्चीसे अलग देख सकती है ?

शीला कपड़े लिये आकर खड़ी हुई तो धर्मपालको लगा कि वे पुराने दिन लौट आये हैं और इस बीचके दो साल इस भूली-सी कड़ीसे निकल कर कहीं अलग होकर अदृश्य हो गये हैं । और वह और शीला, टूटा हुआ तार जैसे फिर जुड़ गया है.....





## रामकुमार

अर्थशास्त्रमें एम० ए० कर, आठ महीने शिमलाके एक बैकमें काउण्टरके पीछे बैठ चुकनेके बाद साहित्य, संगीत और चित्रकलाके अनुरागी पच्चीसवर्षीय रामकुमारने अनुभव किया कि कलासे बचना सम्भव नहीं। अतएव चित्रकलाका अध्ययन करने सन् ५१ में कलाकारोकी राजधानी पेरिस पहुँचे और फिर आधुनिकताकी खोज कर दो वर्ष बाद स्वदेश लौटे। तबसे चित्रकारी, साहित्य-सेवा, शान्ति-आन्दोलन और देश-विदेश-यात्रा में समय व्यतीत करते रहे हैं। संगीतका चक्कर तो कभीका छूट चुका है; इधर लिखने-लिखानेके प्रति भी वह पहले-सा उत्साह नहीं है। अब तो बस चित्रकारीका ही जोश है। चित्रोमे जितनी जटिलता है, कहानियोंमें उतनी ही सादगी; अलवृत्ता प्रभाव की दृष्टिसे दोनो समान रूपसे सशक्त है। दोनो ही मनमे एक गहरी उदासी और एक कुहरीला स्मृत्याभास छोड़ जाते हैं।

आपके 'घर बने, घर टूटे' और 'देर-सवेर' दो मौलिक उपन्यास; तथा 'एक अपमानित स्त्री के पत्र', 'वार्ड नम्बर ६', और 'डोरियन ग्रे का चित्र' तीन अनूदित उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं।

## • हुस्ना वीवी

—रामकुमार

हुस्नाने करवट बदलकर सामने दीवारपर लगी घड़ीपर नजर डाली, तो दस बजनेमें कुछ ही मिनट बाकी थे, परन्तु घड़ीकी सुइयों का महत्त्व उसकी ज़िन्दगीसे अब अलग हट गया था। दिनमें कई बार देखनेपर भी वह चुपचाप उन्हें घूमते हुए देखा करती थी। क्योंकि उन बेजान सुइयोंमें गति थी। थोड़ी देर बाद वहाँसे नजर उठाकर उसने अपने दोनों गोरे-गोरे पतले हाथ ऊपर उठाते हुए एक अँगड़ाई ली जिससे उसके हाथमें पड़ी लाल और काली चूड़ियाँ एक बार झनझना कर चुप हो गयीं। हुस्नाने एक हाथसे घुटनोपर पड़ा काली और सफेद धारियों वाला कम्बल अपने गले तक घसीट लिया। पलंगकी दाईं ओर दीवारपर उमरखैयामका एक चित्र टंगा हुआ था, जिसके फ्रेम में लगे शीशेपर दरार आ गयी थी। उस चित्रको दीवारपर लगे कितने साल बीत चुके थे ! महीनोकी धूल चित्रके फ्रेम और शीशेपर चिपटी हुई थी। चित्र ही क्या, कमरेमें जो चीज एक बार जिस स्थान पर रख दी जाती थी, फिर उसे वहाँसे उठानेकी कभी नौबत नहीं आती थी। तीन-चार साल बाद जब कभी मकान-मालिक घरमें सफेदी करवाता, तो सब सामान जबरदस्ती उठाया जाता था और उसके बाद शहीदन अपनी मर्जोसे जहाँ सामान रख देती, फिर उसे बदलने वाला कोई व्यक्ति घरमें नहीं था। कोनेमें पड़ा ड्रेसिंग टेबल, जिसके शीशे और पीछेकी दीवारके खाली स्थानमें मकडियोने अनगिनत जाले बुन लिये थे, खिड़की और रोशनदानके बीचमें किसी हिरणके काले-काले दो सींग, दरवाजेके पास एक कीलपर टंगा बरसों पुराना एक कैलेंडर, कोनेमें रखी शहतूतकी लकड़ीकी बनी तीन पैरों वाली कुर्सी, जिसके

दोनो ओर शेरोंके मुँह बने थे—सब मानो अपने-अपने स्थानों पर बैठे एक-दूसरेकी ओर खुली आँखोंसे ताका करते थे। अभी पलंगसे उठ कर क्या होगा ? गुदगुदे गद्दों और मुलायम कम्बलोंकी गरमाईमें पाँव पसारकर पलंगपर लेटे रहनेमें कितना सुख मिलता है या करवट बदल कर एक हाथ सिरके नीचे दबाये और दूसरेको अपने धड़कते सीने पर रखकर कितना सुकून मिलता है ! जब आँखें कमरेके एक कोने या एक वस्तुसे ऊँच जाएँ, तो दूसरी देखने लगे और फिर तीसरी.. और फिर सबसे ऊँच जाने पर आँखें बन्द कर लो तब एक नई दूसरी दुनिया दिखाई देने लगती है.. यह सोच कर हुस्नाके होठ मुसकरा उठे, मानो उस नई दुनियाकी एक लहर उसके बदनमें दौड़ गयी हो। और आखिर उठकर भी क्या होगा ? उसे कहीं बाहिर नहीं जाना है, शामको किसी का इन्तजार उसे नहीं करना है। उस्तादजीका तबला नहीं बजेगा, जमाल खाँ सारंगीके तारोंको नहीं छेड़ेगे और उसे.. उसे गाना नहीं पड़ेगा. कोई उससे फलों गजल गानेकी जिद नहीं करेगा। वे दिन बीत गये जब तीन बजेसे ही घंटों वह ड्रेसिंग टेबलके सामने बैठी हीरे और पन्नेकी अँगूठियाँ, नौरत्नोंके चमकते हार, जड़ाऊ कंगन, सफेद मोतियोंके लटकते भूँवर और खुदे हुए फूलोंसे सजा कमरबन्द पहनकर बार-बार शीशेमें अपना मुँह और शरीर देखा करती थी। वह कौन-से 'शेड' की लिपस्टिक लगाये ? गफूर मियाँको हल्की गुलाबी रंगकी लिपस्टिक पसन्द थी और टण्डन साहब गहरा सुर्ख रंग पसन्द करते थे—चाहे वह होठोंपर लगी लिपस्टिकका हो, चाहे नाखूनोंकी लालीका; चाहे गालोंके रूजका हो; चाहे गुलदस्तेमें सजे गुलाबके फूलोंका। बालोंमें वह कौन-सा तेल डाले ? 'यू डी कोलोन' या 'ईवनिंग इन पेरिस' या फिर सादा चमेलीका तेल जो मिस्टर दरको बहुत पसन्द था। और फिर उसका गाना शुरू होनेसे पहले उसकी महफिलके लोग आपसमें गरमागरम ब्रहसे किया करते थे कि वो जिगर की 'काम आद्विर जजबये

वेइस्तियार आ ही गया ' गजल गाये या कोई दादरा या गालिबके शेर गुनगुनाये । वह मुसकराती हुई उन सबकी ओर कनखियोंसे देखा करती और उसका दिल बाँसो उछला करता । थोड़ी देर बाद उस्तादजी तबलेको घुमा-घुमाकर उसे ठोकते, जमाल खाँ सारंगीके तारोको सुरमे लाते और उसके गलेसे धीमी आवाज दिल्ली गहराई में दूबी हुई निकलती । मानो वे शराबके पहले घूँट हो जिनका नशा धीरे-धीरे चढ़ने लगता है । महफिल जम जाती, लोग झूमने लगते । कोई आँखे बन्द करके और कोई कमरेकी दीवारोकी ओर ताकते हुए । उस्ताद जीकी उँगलियाँ तबलेपर तेजीसे थिरकने लगतीं और उसकी गजलके शेर धीरे-धीरे लोगोके दिमागो और दिलोमे उतरने लगते ।

बाहिर अँधेरे की चादर धीरे-धीरे गाढ़ी होती जाती और लोगोकी दिनकी जिंदगीका शोरगुल सोई रातके सन्नाटेमे दूब जाता । आसमानमे तारोका मेला लगने लगता और कमरेमे जिंदगीकी गति प्रतिक्षण तेज होती जाती, मानो रातको चुनौती दे रही हो । दीवार पर लगी घडीकी दौडती सुइयोकी ओर किसीका ध्यान न जाता । दो गानोंके बीच थोड़ी तफरीह होती, हिस्की और रमकी बोलले खुलती, पासकी हसन मियाँकी दूकानसे बर्फमे दूबी सोडेकी बोलले मँगायी जाती और महफिलके लोग गजलपर बहस करते, हुस्नाके सोज-भरे गलेकी तारीफे करते । चाँदीके बरकोमे लिपटे पान एक-दूसरेकी ओर बढ़ते और सिगरेटके धुँएँसे कमरा भर उठता । हुस्ना अपने कमरेमें जाकर ड्रेसिंग टेबलके शीशेके सामने अपने चेहरेपर पाउडर और गालोंपर रुज लगाती, होठोंकी लालीको और गहरा करती और जूड़ेमेंसे खिसकी हुई बालोंकी लटोंको फिर कंधेसे पीछे धकेलती । फिर एक और नई गजल । सारंगीके तार दिलके उठते तूफानोसे टकराकर और भी जोर से बज उठते. .।

“हुस्ना बेटी, अब उठ । क्या अभी तक सो रही है ? देख, सूरज

रेलकी लाइनोके पीछे छिप गया है।” शहीदन हुस्नाकी बन्द आँखों की ओर क्षण-भर तक देखती रही और फिर उसने पासकी तिपाईपर चायकी ट्रे रख दी। चीनीके बरतनोंकी खटाखट सुनकर हुस्नाने धीरे-धीरे आँखें खोलीं। शहीदनकी ओर देख कर उसके सूखे होठ एक बार थोड़ा-सा मुसकरा उठे। तकियेको पीठके पीछे टिकाकर वह बैठ गयी, “चाची, यह तुम कैसे जान लेती हो कि कौन-से वक्त मुझे किस चीजकी जरूरत पड़ती है। मैं अभी-अभी चायके बारेमें ही सोच रही थी। शराब मुझे कभी पसन्द नहीं आयी। गफ़ूर मियाँ जबरदस्ती करके एक-आध पेग पिला देते थे। लेकिन मैंने अपनी तथीयतसे कभी नहीं पी। मुझे तो गरम-गरम चायका एक प्याला...”

शहीदन चुपचाप प्यालेमें चाय बना रही थी। उसके पके सफेद बाल उसकी ओढ़नीमेंसे झोंक रहे थे। हुस्नाकी बातें वह चुपचाप सुनती रहती थी, जिसका सिर-पैर उसकी समझमें नहीं आता था। वह केवल इतना जानती थी कि पाँच साल पहले हुस्ना जो बातें करती थी अब वे बदल चुकी हैं। हुस्ना मानो उससे बातें नहीं करती थी। उसको कमरेमें देखकर वह जोर-जोरसे अपनेसे बातें करने लगती थी जो अकेलेमें खुद सोचती रहती थी।

“चाची, इस शामके सन्नाटेमें कमरेका सूनापन मेरे दिलके सूनेपनसे मिल जाता है और मैं सोचने लगती हूँ कि अब शायद इसकी वीरानगी कभी खत्म नहीं होगी।” थोड़ी देर चुप रहकर वह हँसने लगी और चायका घूँट पीकर उसने फिर कहा, “अभी लेटे-लेटे मैं देख रही थी—शायद वह मेरा ख्वाब था—कि शामके झुटपुटेमें नीले आसमानमें लौटते हुए परिंदोंकी टोलियाँ अपने बसेरोंकी ओर उड़ी जा रही है। उन्हें अपने घर पहुँचनेकी जल्दी थी। शायद उनके नन्हे-नन्हे बिना परोके बच्चे उनका इन्तजार कर रहे थे...लेकिन मेरा

बसेरा कहाँ है ?.. मुझे कभी उडकर कहीं पहुँचनेकी जल्दी नहीं होती । बस, यह पलग और मैं, और मेरे कमरेकी दीवारे ।”

शहीदनने पलगसे नीचे लटकते हुए कब्रलको ऊपर उठाते हुए कहा, “हुस्ना, मेरी रायमे हम कहीं बाहिर चले...इस शहरसे बाहिर... इस मकानसे बाहिर । यहाँ सारा दिन लेटे-लेटे तू अजीब बातें सोचा करती है; ऐसे कब्र तक जिन्दगी चलेगी ? हुस्ना, तू नहीं जानती कि तू कितनी बदल गयी है !”

शहीदनकी बात सुनकर हुस्नाने उसकी ओर बड़े ध्यानसे देखा और फिर प्यालेको ट्रेपर रखकर बोली, “चाची, ऐसी बात तुम्हारे दिमागमे कैसे आती है ? इतने सालोंसे तुम मेरे पास रहती हो, लेकिन अभी तक तुमने मुझे नहीं समझा ।” और भी एक लम्बी साँस लेकर बोली, “कोई भी मुझे नहीं समझ सका, न गफूर मियाँ, न टंडन साहब, न मिस्टर दर । हर साल गर्मियोंमें सब मुझसे पहाड चलनेको कहते थे—कोई मंसूरी, कोई शिमला, कोई नैनीताल आनेकी दावत देता था; लेकिन मैं कभी इस शहरसे बाहर नहीं गयी और भला जा भी कैसे सकती थी !”

शहीदन चुपचाप हुस्नाके चेहरेकी ओर देख रही थी । उसकी बड़ी-बड़ी काली आँखोंमें वह कौन-सी गहराई है जिसके भीतर वह कभी भौंक नहीं सकी । इन सूखे होठोपर यह कौन-सी उदासी या अतृप्त सुख है, जिसे वह कभी समझ नहीं पायी । आखिर हुस्ना सारे दिन पलगपर लेटी क्या सोचा करती है ? वह कभी कोई किताब नहीं पढ़ती । कभी उसने बाजारसे अखबार नहीं मँगवाया । रेडियोके गानोंसे उसे नफरत है । तो वह कौन-से जाल बुना करती है !

हुस्नाने एक सिगरेट सुलगा ली । सिगरेटका धुआँ उसे पसन्द था और कभी-कभी एकके बाद एक सिगरेट सुलगाकर वह नाक और मुँहसे

धुआँ ऊपर छतकी ओर छोड़ा करती थी। एकाएक उसने शहीदनकी आँखोंकी तरफ़ देखा, जिनके नीचे झुर्रियाँ अपने रास्ते स्पष्ट और गहरे बनाती जा रही थी। “चाची, हम बाहर कहाँ जा सकते हैं ? बर्बाद, कल-कत्ता, दिल्ली.. लेकिन हमारी जिन्दगी तो सब जगह हमारे साथ ही जायगी। उससे भला पीछा कैसे छुड़ा सकते हैं। यहाँ हम। अपने पुराने शहरमें हैं। यह मेरा कमरा है। यह मेरा पलंग है, जहाँ मैं सारा दिन लेटी सपने देख सकती हूँ। शहरमें हमारी इज्जत है। हमारे मकानके सामनेसे गुजरने पर लोग उँगली ऊपर उठाकर कहते हैं कि यहाँ हुस्ना बीबी रहती है, जिसकी गजलोंकी धूम दूर-दूर तक फैली हुई है.. और हमारे मरनेके बाद भी लोग हमारा नाम बड़ी इज्जतसे लिया करेंगे।” थोड़ी देर तक वह सिगरेटके कश खींचती रही और धुआँ छोड़ती हुई सामने दीवारपर लगे चित्रकी ओर देखती रही—“अगर लोग मुझे गफ़ूर मियाँ की मोटरमें या टण्डन साहबके साथ शहरमें घूमते हुए या पहाड़ोंपर जाते देखते, अगर हमारी महफ़िलोंमें भी ऐसे-गैरे आने लगते, तो भला लोग क्या हमारी ऐसी इज्जत करते ! आज भी हसन मियाँके रेस्तराँमें कभी लोगोको बातें करते सुनो तो वे चाय पीते हुए हमारी गजलोंकी ही चर्चा किया करते हैं। उन पुराने दिनोंकी याद करते हैं जब लोग हमारी खिडकीके नीचे हमारी गजलोंको सुननेके लिए आधी-आधी रात तक इन्तज़ार किया करते थे...”

कमरे में अँधेरा बढ़ता जा रहा था। अपने ही विचारोंमें डूबी हुस्ना शहीदनकी आँखोंसे टपकते आँसुओंकी बूंदोंको नहीं देख सकी। हुस्ना ने सिगरेट, प्यालीकी बची हुई चायमें डाल दी और अपने पाँव कम्बल के अन्दर पसार लिये। वह महसूस करने लगी मानो मीलोंका सफ़र पैदल पार करने के बाद इस तरह पाँव फैलाने से उसकी थकान धीरे-धीरे समाप्त हो रही हो। थोड़ी देर बाद दुपट्टेसे अपनी आँखें पोंछकर चाय की ट्रे उठा शहीदन बावर्चीखानेकी तरफ़ चली गयी। हुस्नाने शहीदनके जाने

के बाद हिम्मत करके कम्रलको अपने पैरोंसे दूर फेंक दिया और स्लीपर पहने। दुपट्टेको जैसे-तैसे सीने पर धकेलकर वह कमरेकी खुली खिडकी के सामने जाकर खड़ी हो गयी। नीचे सड़कपर त्रिजलीके खम्भोंकी धुंधली रोशनी थी। दूकानोंके सामने कुछ लोगोंके झुंड धीमी चालसे राह चलती किसी औरतको घूरते हुए आगे बढ़ जाते थे। नुकड़पर हसन मियोंके रेस्तराँमें लालटेन जल रही थी। शायद कोई इक्का-दुक्का चाय पी रहा होगा और हसन मियों उसे गालिब, जिंगर, फैजके शेर सुना रहे होंगे। उन्हें कभी याद नहीं रहता कि कौन शेर या गजल किस शायर की लिखी हुई है। एक जमानेमें वह भी शायरी किया करते थे। तब शायद जवान रहे होंगे लेकिन अब उन्हें अपना एक भी शेर याद नहीं है। फिल्मी गानोंसे उन्हें भी चिढ़ थी लेकिन अब वे उन्हें सुननेके आदी हो गये हैं क्योंकि सामने वाले 'गुलजार रेस्तराँ' ने रेडियो-सेट लगा रक्खा है जिसमें दिनभर फिल्मी रेकार्ड बजा करते हैं। सड़क के पार ऊबड़-खाबड़ बस्ती थी, कहीं कोई छोटा-सा लाल पत्थरोंका टीला, तो कहीं कुछ पेड़ोंका छोटा-सा जंगल। उस बस्तीके पीछे छोटी लाइन थी, जहाँसे रेलगाड़ी सवेरे आठ बजे, शामके पाँच बजे और रातके साढ़े दस बजे गुजरा करती थी। कभी-कभी ऐसे अकेले क्षणोंमें छुक-छुक करती रेलगाड़ीको वहाँसे गुजरते देखकर हुस्नाके मनमें आता था कि एक दिन वह यहाँसे गाड़ीमें बैठकर दूर, कहीं बहुत दूर चली जाये, जहाँ उसके पिछले इतिहासको कोई न जानता हो, जहाँ उसके संगीतका स्वर लोगोंके कानों तक न पहुँचा हो, जहाँ लोग उसके मकानको देखकर उसके अकेलेपनपर उससे सहानुभूति न दिखलाने लगे, क्योंकि खिडकीके पास खड़े होकर सड़कपर चलते लोगोंको देखकर वह पड़ी सोचा करती थी कि लोग उसकी उजाड़ जिन्दगीके विषयमें परस्पर बातें करके उस पर दया दिखलाते हैं। लेकिन क्या किसी नये शहरमें जाकर उसका मन भी नयी जिन्दगी बसर कर सकेगा? क्या वह अतीतके सब



बन्धनों को तोड़कर एक नया अध्याय शुरू कर सकेगी ? हुस्ना सहम-सी जाती, उसका दिल जोर-जोरसे धड़कने लगता । क्या बीते दिनोंको आखिरी सौंसो तक वह कभी भुला सकेगी ? अतीत, वर्तमान और भविष्य के बीचमे भला खाइयों कैसे खोदी जा सकती है । वह आज भी अतीत में जिन्दा है और उसीके सहारे भविष्यका निर्माण करती है, उससे रिश्ते तोड़ लेना तो अलग रहा । ज़िन्दगीमें उसने नये रास्तोकी तलाश नहीं की । एक रास्तेपर आगे बढ़कर पीछे लौटना और एक नये रास्ते पर चल पड़ना उसे असम्भव प्रतीत होता था । लेकिन यह रेलगाड़ी दिनमे तीन बार यहाँसे गुजर जाती है, कितने ही अपरिचित शहरो, नदियो, बियाबान जंगलोको पार करती हुई न जाने कहाँ पहुँच जाती है । काश, जिन्दगी भी रेलगाड़ी-जैसी रफ्तार के साथ आगे बढ़ती !

दूर दायीं ओर रेलकी लाइन पार करनेका पुल था, जिसके बीचो-बीच एक बत्ती जगमगा रही थी । मानो अँधेरे आसमानमे कोई सितारा टिमटिमा रहा हो । हुस्नाने ऊपर आसमानकी ओर देखा, तारे धुंधले थे; परन्तु दिखाई दे रहे थे । हुस्ना खिड़कीके सामनेसे हट गयी । उसने दीवारपर लगा स्विच दबा दिया । रोशनीमें कमरेकी प्रत्येक वस्तु अपने पुराने इतिहासके साथ उभर पड़ी । वह इस कमरेके नक्शेको बदल देगी । आखिर इन सब सामानोको यहाँ सजाये रखनेसे क्या फायदा ? यह हाथियो वाली कुर्सी गफूर मियों शायद सात-आठ साल पहले ईदके दिन दे गये थे और उस वक्त वह इसे अपने कमरेमें देखकर खुशीसे पागल-सी हो गयी थी; अब इसकी एक टँग टूट गयी है और चमड़ेके घिस जानेसे गद्दीका कपड़ा दिखाई देने लगा है । उसकी यहाँ भला क्या जरूरत है ! वह इसे हसन मियोंको दे देगी, वह इसे अपनी दूकानपर रख लेगे...चाची कहती थी कि पड़ोस की 'कोहेनूर फरनीचर वर्क्स' का मालिक उसके पचास-साठ रुपये दे देगा, लेकिन वह उसे बेचेगी नहीं, इस कमरेकी कोई भी चीज़ वह नहीं बेच सकती । और यह उमरखय्याम

का चित्र दस साल पहले मुनीरने बनाकर मेरे जन्मदिनपर मुझे दिया था...इस पर महफिलके लोगोंने कितने ही दिनों तक बहस की थी। चाची कभी कमरेकी धूल नहीं झाड़ती...और ये हिरणके बलखाते हुए सींग, सोफा-सेट, ड्रेसिंग टेबल, चाँदीका पीकदान और फर्शपर बिछा तार-तार होता यह कालीन, मानो ये सब अजायबघरकी चीजे हो ! लेकिन वह कब तक इस अजायबघर के अन्दर बन्द रह सकती है ? क्या वह भी इन्हीं बेजान चीजोंकी तरह इस अजायबघरकी एक चीज नहीं बन गयी है !...

हुस्ना ड्रेसिंग टेबलके सामने रक्खी कुर्सीपर धपसे बैठ गयी। उसका सिर घूमने लगा था। उसे कमरेकी प्रत्येक वस्तु घूमती हुई नजर आ रही थी। थोड़ी देर तक शीशेमें अपना चेहरा देखती हुई वह स्तब्ध, मूर्तिवत् बैठी रही। उसने झुककर पाससे अपना चेहरा देखनेकी कोशिश की, लेकिन शीशा धुंधला दिखाई देने लगा। उसकी काली आँखें चुप थीं। वह मुसकराती लेकिन उसकी आँखें खामोश रहीं और उसके होठ घायल पक्षीकी भाँति फड़फड़ाते ही रह गये। उसने क्रीमकी डिब्बी खोली, लेकिन क्रीम सूख गयी थी। खुरचने पर थोड़ा-सा चूरा हथेलीपर उँगलियों से रगड़कर उसने अपने चेहरेपर मला और फिर पाउडर लगाने लगी। लिपस्टिककी डिब्बी खोलकर सूखे होठोंको लाल किया और एक बार फिर झुककर उसने अपना चेहरा शीशेमें देखना चाहा। फिर उसने कंधी उठाकर अपने बालोंपर फेरी, लेकिन दिन भरके बिखरे अस्त-व्यस्त बालोंमें वह उलझकर रह गयी। उसने अपनी चोटी खोल दी और मुलायम बालोंपर कंधी करती हुई वह उन्हें सहलाती रही, रेशमी-भूरे बाल कंधी करनेसे चमकने लगे। उसने अपने बालोंको बड़े ध्यानसे देखा, परन्तु उनमें एक भी सफेद बाल उसे दिखाई नहीं दिया। नहीं-नहीं, वह अभी जवान है, खूबसूरत है, उसके चेहरेपर अभी तक एक भी झुर्री, एक भी शिकन नहीं पड़ी है। उसकी आँखोंके नीचे

गड्ढोका कालापन अभी नहीं उतरा है, उसका एक भी बाल सफेद नहीं हुआ है। वह गा सकती है। उसकी आवाज, अब भी पहले-जैसी ही सुरीली है। हुस्ना गुनगुनाने लगी—

तुम्हारी याद के जब ज़ख्म भरने लगते हैं

किसी बहाने तुम्हें याद करने लगते हैं।

वह खुशीसे चिल्ला पड़ी, उसे अपने शरीरमें एक तेज-सी लहर दौड़ती जान पड़ी और उसने अपनी नसोंमें ताजा खून दौड़ लगाते हुए महसूस किया।

“चाची...चाची...” हुस्ना जोरसे चिल्लायी।

शहीदन बावर्चीखानेसे दौड़ी। हुस्नाकी चीख सुनकर डरसे वह कॉप उठी थी। “चाची!” कहकर हुस्नाने दरवाज़ेके पास खड़ी शहीदनके गलेमें अपनी दोनों बांहें डाल दीं और उसकी आँखोंमें बड़े पाससे भोंकते हुए कहा, “चाची, मैंने अभी-अभी महसूस किया कि इन पाँच सालोंमें मैंने जिन्दगीसे प्यार करना सीखा है। हाँ चाची, मैं सब कह रही हूँ, मुझे यहाँकी हर एक चीज़से मुहब्बत है। तभी तो मैंने ग़फ़ूर मियाँकी कुर्सी, उमरखय्याम की तसवीर, यह ड्रेसिंग टेबल, सारा सामान जो अपने कमरेमें रक्खा हुआ है...मैं अभी मरना नहीं चाहती...” शहीदनका मुँह हैरानीसे खुलाका खुला रह गया था। हुस्नाके चेहरे पर क्रीमके टुकड़े, होठोंकी लाली और उसके खुले बालोंको देखकर शहीदनके मुँहसे भयके कारण आवाज तक नहीं निकली। वह जोरसे हुस्नाको अपने सीनेसे चिपटा लेना चाहती थी। जिससे वह उसके सीने की धड़कनको सुन सके परन्तु उसके बूढ़े हाथोंकी सारी शक्ति मानो आज समाप्त हो गयी थी।

“मैं अभी-अभी एक गजल गा रही थी चाची, मेरी आवाज़में अभी तक पहले-जैसा ही सोंज है। मैं उस गजलका दर्द खुद भी नहीं सह

सकती। इसीलिए मैं कभी अकेलेमें नहीं गाती क्योंकि तब मेरा दर्द बँटाने वाला कोई नहीं होता.. ” हुस्ना मानो अपने-आप से ही बातें कर रही थी।

“हुस्ना, यह सब तू क्या कह रही है...” आखिर शहीदनके मुँह से आवाज निकली, “यह तूने अपना क्या भेष बना रक्खा है, तभी मैं कहती थी कि कुछ समयके लिए हमें शहरसे बाहर चले जाना चाहिए। नहीं तो तू पागल हो जायेगी।” शहीदनने हुस्नाके चेहरेको अपने हाथोंमें पकड़ कर कहा।

परन्तु हुस्नाने मानो शहीदनकी बात सुनी ही नहीं। वह सामने खुली खिडकीकी तरफ देखती हुई कहने लगी, “आज मेरे गानोंका दर्द बँटाने वाला कोई शहरमें नहीं रहा। वे सबके सब चले गये। मैं अकेली ही उनकी यादोंके साथ इस अजायबघरमें रह गयी और रोज ही उन बीती बातोंको दुहराना मेरा काम रह गया है।” फिर शहीदनके अपने पास खड़े रहनेका अहसास पाकर वह चिल्ला पड़ी—“चाची, यह सब क्यों हुआ?” और वह शहीदनके गलेसे लिपट गयी और फूट-फूटकर रोने लगी। शहीदनकी आँखोंसे भी आँसू टपक रहे थे। वह चुपचाप हुस्नाके रेशमी बालोंको अपने हाथोंसे सहला रही थी। ढाढसका एक शब्द उसके मुँहसे कोशिश करनेपर भी नहीं निकल सका। कमरेमें सन्नाटा था, शामका बीभत्स सन्नाटा। केवल हुस्नाकी सिसकियोंकी आवाज घरके सूनेपनमें एक भयानकता और उदासी भर रही थी।

उस रात काफी सर्दी थी। दिसम्बर का आरम्भ था। दिन भर वर्षा हुई थी और नीला आसमान बादलोंसे ढँका रहा था। हुस्नाने दिन का खाना खाने के बाद अपने कमरेकी चिमनीमें शहीदनसे लकड़ियों सुलगवा ली थीं और उनकी गरमाईमें वह दिन-भर लेटी रही थी।

कभी उसे नींद आ जाती थी और कभी नींदमें देखे हुए सपनोंके विषयमें जागकर उस क्षण तक सोचा करती थी जब तक उसकी आँखें फिर बन्द नहीं हो जाती थी। सोते और जागते वक्त वह सपने ही देखा करती थी। शहीदन उसकी दिनचर्यापर हैरान रहती थी और कभी-कभी उसकी चर्चा हसन मियाँसे भी किया करती थी; परन्तु वे चुपचाप शहीदनकी बातें सुनने के अलावा और कुछ भी नहीं कहते थे। वह बावर्चीखाने में अकेली बैठी-बैठी हुस्नाके विषयमें सोचकर आँसू बहाती रहती थी। जब कभी वह आटा, दाल, सब्जी वगैरह बाहरसे खरीदने जाती तो मुहल्लेके लोग और पुराने दूकानदार बड़ी गम्भीरतासे हुस्नाके विषयमें पूछा करते थे। उनकी गिरती हुई आर्थिक दशा भी इन लोगों से छिपी नहीं थी। जहाँ पहले मौसमके नये-नये फल और सब्जियाँ, भोलारामकी दूकानसे हिस्की और रमकी बोलते, हसन मियाँकी दूकानसे सोडेकी दर्जनों बोलते और बर्फ़की सिले आती थी वहाँ अब शहीदन चुपकेसे लोगोंकी आँख बचा कर दूकानोंके पाससे गुज़र जाती थी। उसने कभी हुस्नासे इस विषयमें चर्चा नहीं की। हुस्नासे भी घरकी स्थिति छिपी नहीं थी, दो-तीन महीनेसे वह शहीदनके कहनेपर अपनी गहनोकी सडूकड़ीमेंसे कोई गहना निकालकर उसे दे देती थी।

हुस्ना एक आराम-कुर्सीपर चिमनीके पास बैठी लकड़ियोंसे निकलती लपटोंकी ओर देख रही थी। उसके घुटनोंपर एक कम्बल पड़ा हुआ था। हुस्नाने कमरेकी बत्ती नहीं जलायी थी। आगकी लपटोंमें चिमनी के आसपासकी जगह जगमगा रही थी। सामने दीवार पर लगी उस्ताद जीकी फोटोकी ओर हुस्ना कुछ देर से निहार रही थी, जिसका आभास उसे कुछ देर पहले ही हुआ था। उनकी छोटी-छोटी सफेद दाढ़ी, घनी-घनी मूँछें, सफेद कपड़ेका कुरता और गम्भीर आँखें उसके सामने थी। दुनियामें शायद सबसे ज्यादा इज्जत वह उस्तादजीकी करती थी।

पता नहीं, वे शहरमे है या कहीं दूसरी जगह चले गये। उनसे आखिरी मुलाकात कुछ महीने पहले हुई थी। समय उसे कभी याद नहीं रहता था, कब दिन महीनो, और महीने सालो मे बदल जाते, उसका लेखा-जोखा वह नहीं रखती थी।

उस दिन तड़के ही शहीदन उस्तादजी को सीधे उसके कमरे मे ले आयी थी। वह चारपाई पर लेटी हुई थी। उन्हे देख कर वह उठ कर बैठ गयी। उस्तादजी का कुर्ता जेबके पाससे फटा हुआ था। उनकी जूतीपर धूल जमी हुई थी मानो कितने ही दिनोंसे पालिश न हुई हो, परन्तु चाहकर भी वह उन सबके विषयमे पूछ नहीं सकी थी। वह चुपचाप उनकी आँखो और हिलती हुई छोटी-सी सफेद दाढ़ीकी ओर देखती रही थी।

“मैने सोचा कि बहुत दिनोंसे तुझसे मिला नहीं हूँ बेटी, सो आज यहाँ तेरे हाल-चाल पूछने चला आया, लेकिन तू बड़ी दुबली नजर आ रही है हुस्ना, बीमार तो नहीं है ?”

यही सवाल तो वह भी उस्तादजीसे करना चाहती थी। हुस्नाने हँसकर कहा था, “जिन्दगी कभी नहीं रुकती उस्ताद जी। कभी-कभी हम जिन्दा नहीं रहते। मेरा मतलब है कि सॉसे लेते हुए भी असली मायनोमे जिन्दा नहीं रहते। लेकिन जिन्दगी तब भी पुरानी रफ्तार के साथ आगे बढ़ती जाती है। मरनेसे पहले एक बार मै हिसाब लगाकर देखूँगी कि मै कितने साल जिन्दा रही हूँ।”

शहीदन चाय बनाकर ले आयी थी। हुस्नाने एक प्याला बनाकर उस्तादजी के हाथ में थमाते हुए पूछा था, “और आप अपनी कहिए।”

उस्तादजीने एक लम्बी सॉस खींचते हुए कहा था—“अपनी क्या कहूँ ? कट रही है, लेकिन उस ‘कटने’ मे मजा नहीं आता। सफेदी मे यह हालत होगी, यह कभी सपनेमें भी नहीं सोचा था। पहले लोग घरो

पर आकर गाना सिखानेकी खुशामदें किया करते थे, तब लोगोको असली और नकली सगीत की पहचान थी। लेकिन अब जमाना बदल गया है। आजकल लोग गीत पसन्द करने लगे हैं, फिल्मी ढंगके बाजारू गीत, जिन्हें तॉगे वाला उनसे अच्छा गा सकता है। बस, जी चाहता है कि कमरा बन्द करके अन्दर बैठा रहूँ; लेकिन वह भी नामुमकिन है. .”

उस्तादजी हुस्नाकी नजर बचाकर कमरेमे चारो ओर छिपी निगाहोसे देख रहे थे। यही पलंगके पास कोनेमे बैठकर वे तबला बजाया करते थे। लेकिन अब खिडकियोपर लगे पर्दोंके रंग धुंधले पड गये थे। एक कोनेमे तानपूरा, तबलोंकी जोड़ी और सारंगी रक्खे हुए थे जिनपर कितनी ही धूल जमी हुई थी। उन्होने अनुमान लगाया कि महीनोसे उन्हें बजाया नहीं गया है। दीवारोके ऊपर मकडियोंके जाले थे। जाते वक्त धीमे स्वरमें उस्तादजीने अपनी आँखे भुकाये कहा था, “हुस्ना बेटी, एक बात कहनी है।” हुस्ना उनके चेहरेकी ओर बड़े ध्यानसे देख रही थी। “तू मेरे पोते सलीमको जानती है न? उसको दो महीनोसे मियादी बुखार है, और मेरे पास इलाज करनेके लिए पैसे नहीं हैं...” और फिर वे एकाएक चुप हो गये थे। आँखे ऊपर उठाने की हिम्मत उनमें नहीं थी।

हुस्ना चुपचाप उस्तादजीके चेहरेकी ओर देखती रह गयी थी। वह उन्हें बचपनसे जानती थी। जब वे उसे हारमोनियम पर ‘सा रे ग म’ सिखाया करते थे और कहा करते थे कि एक दिन वह हिन्दुस्तानकी सबसे मशहूर गायिका बनेगी। आज भी जब कभी वह उस्तादजीकी उन बातोको याद करती है तो उसे हँसी आने लगती है। आज उनके पास सलीमके इलाजके लिए पैसे नहीं हैं। वह सलीमको दुनियामे सबसे अधिक प्यार करते हैं। उसे पाल-पोसकर इतना बड़ा उन्होने ही किया है और उसके अलावा उनका दुनियामे और कौन है?

उसने अपने कमरेकी दीवारपर लगी 'आल्मारी खोली। नीचेके खानेकी काम वाली एक संदूकड़ीमे से उसने सोनेके दो कगन निकाले और लौटकर उस्तादजीके हाथोमे थमा दिये थे।

उस्तादजी गहनोको देखकर चौक उठे थे। “नहीं-नहीं हुस्ना, ये मै नही लूँगा। मैने तो सोचा था कि पचास-साठ रुपये तुम उधार दे देती.. मै तुम्हारे गहने..।”

हुस्नाके चेहरेको देखकर कुछ अधिक कहने का साहस उन्हे नही हुआ। थोड़ी देर बाद वह स्वयं ही धीमे स्वरमे बोली—“रुपये मेरे पास नहीं हैं। अगर आपने ये कगन न लिये तो मै कभी आपको अपना मुँह नही दिखलाऊँगी...”

कभी-कभी कोई लकड़ी जलते समय चटाख-पटाख करने लगती थी। उस्तादजीकी फोटो देखते-देखते कब हुस्नाकी आँख लग गयी, उसका पता उसे नहीं चला। वह स्वप्न देखने लगी—वह एक गजल गा रही थी :

काम आखिर जड़ये बे-इख्तियार आ ही गया।

दिल कुछ इस सूरत पै तडपा, उनको प्यार आ ही गया ॥

यह शेर उसे बहुत ही पसन्द था और वह अक्सर इसे गाया करती थी। पास ही उस्ताद जी बैठे तबला बजा रहे थे और जमालखॉकी उँगलियों सारंगीके तारोपर मीढ़ दे रही थीं। उसकी गजल सुननेके लिए सामने लोगोकी बेतहाशा भीड़ थी, हजारो, लाखोकी तादादमें एक दूसरे से सटे बैठे थे। वे चुपचाप उसका गाना सुन रहे थे, कोई 'वाह वाह' नहीं कह रहा था। कमरा वही था, दीवारपर वही मुनीरका उमर-खय्यामका चित्र था। हिरनके सींग थे, शेरोंके मुँहवाली कुर्सी थी। तभी भीड़मे उसे परिचित चेहरे दिखाई देने लगे। वे गफूर मियाँ थे और उनके पास ही टण्डन साहब थे—वे ध्यानसे आँखे फाड़-फाड़कर



हुस्नाकी ओर देख रहे थे। उनके चेहरे गमग्रीन थे। गुस्सेसे तमतमा रहे थे। लेकिन आखिर यह भीड़ कहाँसे आयी? वह भीड़को देखकर घबड़ाने लगी और उसके माथेपर पसीनेकी बूंदें चमकने लगीं, उसकी आवाज़ काँप रही थी, लेकिन फिर भी वह गाती जा रही थी। एकाएक तबला और सारंगी एक धमाकेके साथ बन्द हो गये। उसने अपनी नजर फेरी तो उस्तादजी और जमालखॉ अपने स्थान पर नहीं थे। उसने भी गाना बन्द कर दिया। वह अकेली रह गयी थी। भीड़में से कुछ लोग जोर-जोर चिल्लाने लगे, कुछने एक आध पत्थर भी हुस्ना पर फेका। उसने चीखना चाहा, लेकिन उसके मुँहसे कोई आवाज़ नहीं निकली। उसने महसूस किया, मानो कोई उसका गला दबा रहा हो।

“हुस्ना...हुस्ना..” शहीदन उसका कंधा पकड़ कर उसे हिला रही थी।

थोड़ी देर तक आँखें खोले हुस्ना अपने चारों ओर देखती रही, वह कहाँ है? उस भीड़का क्या हुआ?

“हुस्ना, तुम्हें क्या हो गया है? सोते-सोते तू गाने लगती है। मैं कल ही हकीमजी को बुला लाऊँगी। देख लेना, वे भी तुम्हें बाहर जाने की राय देगे। हवा-पलटी तेरे लिए सबसे ज्यादा जरूरी है। खुदा जाने क्या मंजूर है...” यह कह कर वह हुस्नाके घुटनेके पास बैठ गयी और उसने उसके कंवलमे अपने पाँव ढँक लिये। हुस्नाने कुछ नहीं कहा। वह चिमनीमे सुलगती लकड़ियोंकी ओर देखती रही। धीरे-धीरे स्वप्नकी दुनियासे उतर कर वह वास्तविकतामे आ रही थी। उसने अपने सिरमें दर्द महसूस किया, लेकिन शहीदनसे इस विषयमे उसने कुछ नहीं कहा, नहीं तो फिर वह कहती कि वह बीमार है। वह बहुत दिनोंसे सोच रही थी कि कोनेमे पड़े उस तानपूरे, तबलेकी जोड़ी और

सारंगीको इस कमरेसे उठाकर कहीं और रखवा देगी या किमीको दे देगी । यहाँ तो रोज इन पर धूल जमती जाती है और शहीदनने कभी इनके महत्त्वको नहीं जाना, लेकिन उस कोनेको खाली देखकर उसका दिल फट जायेगा । उसने कभी सिर्फ अपने ही लिए नहीं गाया और शायद भविष्यमें भी कभी गा नहीं सकेगी । बचपनमें उस्तादजीको खुश करनेके लिए मेहनत किया करती थी, रागोकी सरगमे तैयार किया करती थी और फिर शफ़ूर मिया, टण्डन साहब, मिस्टर दर और महफिलके दूसरे लोगोंके लिए गाया । अगर वे उसके गानोकी दाद न देते, उसके एक-एक शेरपर दर्दसे उमड़ते सीनेको थाम न लेते, तो शायद कभी-कभी उसके गानोमें इतना सोंज नहीं आ सकता था । वह शामसे ही सोचा करती थी कि आज कौन-सी गजल सुनायेगी, लेकिन हमेशा उसकी आँखोके सामने महफिलके लोगोकी मूर्तियाँ घूमा करती थीं । कौन किस शेरपर 'वाह वाह' करता है और कौन-सा शायर किसे सबसे ज्यादा पसन्द है । एक-एक शेर पर उसका दिल भी गहरे दर्द और कसकसे तडपने लगता था, लेकिन उसके दिलकी सारी तडपन उस संगीतके प्रेमियोके धडकते दिलोंके साथ सुरमें सुर मिलाकर ही उछला करती थी, अगर वे सब उसके सामने न बैठते या फिर उसके गानोका उनपर कोई असर नहीं होता तब वह कभी गा नहीं सकती थी ।

“चाची, क्या अब भी पानी बरस रहा है ?” हुस्नाने पूछा । शहीदन खिड़कीकी ओर देखती हुई बोली, “शायद अब बूँदा-बूँदी हो रही है । आज दिन भर पानी बरसता रहा है । सरदी भी बाहर बहुत बढ गयी है ।”

कभी-कभी आसमानमें बिजली चमकनेसे कमरेकी दीवारें भी चमक उठती थी । बादलोका गरजना जारी था । तभी बाहर रेलकी लाइनोंपर गाडी छक-छक करती हुई भागी जा रही थी । उसका स्वर तेज होकर फिर

धीमा होता गया और अन्तमें बारिशकी बूंदोंके 'टपाटप' में विलीन हो गया। "सर्दियाँ मुझे गर्मियोंकी बनिस्वत ज्यादा पसन्द है। गरम बिस्तरेमें लेटते ही मैं अपने खयालोंमें खो जाती हूँ, और आज तो कमरेमें आग भी जल रही है। सोनेसे पहले चिमनीमें और लकड़ियाँ डाल जाना चाची। जब तक मुझे नींद नहीं आती तब तक कमरेमें मैं आगकी लपटोंको देखना चाहती हूँ...और यह खिड़की भी खोल दो।" फिर थोड़ी देर तक वह छतकी ओर ताकती हुई कहने लगी—"टण्डन साहबको मसूरी बहुत पसन्द था। गर्मियाँ वहाँ बिताकर वे मुझे पहाड़ोंके हाल बताया करते थे। वे वर्षसे ढँकी पहाड़ोंकी सफ़ेद चोटियाँ! वहाँ शहरो-जैसे पीपल और जामुनके पेड़ नहीं होते। वहाँ चीड़के पेड़ोंकी घनी डालियाँ होती है। और.. "

तभी किसीने नीचे ज़ीनेका दरवाजा खटखटाया। हुस्ना बाते करते-करते चुप हो गयी। शहीदन भी अपने पैरोसे कम्बल हटाकर चौककर खड़ी हो गयी—"इस रातमें कौन दरवाजा खटखटा रहा है? मैं नीचे जाकर देखती हूँ.. " शहीदनने अपने डुपट्टेसे सिर अच्छी तरह ढँक लिया और बालोंको हाथोंसे सिरपर जमाती हुई नीचे उतर गयी।

हुस्ना चुपचाप उठ खड़ी हुई और धीरे-धीरे कदम बढ़ाती हुई खिड़कीके पास जाकर खड़ी हो गई। उसने खिड़की खोल दी और हवाके साथ-साथ बारिशकी कुछ बूँदें भी उसके चेहरेपर आ टपकीं। हवासे उसके बाल उड़ने लगे। बाहर घुप अँधेरा था। सड़कपर लगे बिजलीके खम्भोंकी रोशनीमें गीली सड़कपर बने हुए बारिशके छोटे-छोटे तालाब चमक रहे थे। दूकानें बन्द हो गई थीं। हसन मियोंकी दूकानमें भी अँधेरा था। दूर अँधेरेमें पुलके ऊपर बिजलीकी धुँधली रोशनी टिमटिमा रही थी।

शहीदन हॉफती हुई दौड़ी आयी और कमरेका दरवाजा जोरके झटकेके साथ खोलकर अन्दर घुसते ही चिल्लाकर बोली, "हुस्ना गजब, हो गया! ग़फ़ूर मियों अपने एक दोस्तके साथ तशरीफ लाये हैं। कहते

थे कि आज ही बम्बईसे यहाँ थोड़े दिनोंके लिए किसी कामसे आये है।” यह कहकर उसने कमरेकी बत्ती जला दी। हुस्ना खिडकीकी तरफ पीठ किये शहीदनकी ओर देख रही थी। गफूरमियाँके आनेकी खबरसे उसकी उदासीनतामे कोई अन्तर नहीं आया था। शहीदन उसके पास आकर कहने लगी, “मैने उन्हे नीचेकी बैठकमे बिठा दिया है; लेकिन बैठकमे मनो धूल जमा हो गई है। मुझे पहले पता होता तो मै उसकी सफाई कर देती। वे अपने मनमे क्या सोच रहे होंगे?” फिर हुस्नाका कन्धा पकड़कर बोली—“तू तैयार हो जा, हुस्ना। वे तुझे बुला रहे हैं। तू अपने कपड़े बदल ले। तुझे ऐसी हालतमे देखकर न जाने गफूर मियाँ क्या सोचने लगे। थोड़ी देरमे मै उन्हे यही ले आऊँगी..”

हुस्ना धीमे स्वरमे मानो अपने-आपसे ही कह रही थी, “गफूर मियाँ तशरीफ लाये हैं। इस अँधेरी बरसातमे.. क्यों? पाँच साल बाद वे क्यों मेरे दरवाजेपर आजके दिन आये हैं? नहीं, मै किसीसे नहीं मिलूँगी। मै उन पुराने दोस्तोमे से किसीसे भी मिलना नहीं चाहती। गफूर मियाँ से कह दो चाची, कि हुस्ना मर गयी.. उनसे कह दो कि उनकी हुस्नाको मरे पाँच साल बीत चुके हैं...”

शहीदनका मुँह आश्चर्यसे खुलाका खुला रह गया। बड़ी कठिनाईसे वह कुछ देर बाद बोल सकी, “तू क्या कह रही है हुस्ना? तू पागल हो गयी है। इन पाँच सालोमे मै जानती हूँ तूने कितनी बार गफूर मियाँको याद किया, उनकी बातें मुझसे करते कभी तेरी जुवान नहीं थीकी।” और फिर हुस्नाके कन्धेको हिलते हुए उसने तीव्र स्वरमे कहा.. “नहीं बेटी, यह नहीं हो सकता, चल, थोड़ा-सा क्रीम-पाउडर लगा ले, मै नये कपड़े निकाले देती हूँ।”

तभी कमरेका दरवाजा खुला और गफूर मियाँ दरवाजेके बीचमे दिखाई दिये। वे सफेद चूड़ीदार पैजामा और काली गरम शेरवानी पहने थे।

उनकी टोपीमें से उनके अधपके बाल दिखाई दे रहे थे। ठुड्ठीके नीचे उनकी हल्की दाढी नजर आ रही थी; क्षण भर तक वे दरवाजेपर खड़े-खड़े हुस्नाकी ओर देखते रहे और फिर तेजीसे आगे बढ़कर उन्होंने हुस्नाका हाथ पकड़ लिया...“तुम्हे क्या हुआ है हुस्ना ? क्या तुम बीमार थी ? तुमने मुझे खत क्यों नहीं लिखा ? मेरे खतका कोई जवाब भी नहीं दिया ?”

हुस्ना चुपचाप कालीनकी ओर देखती रही। उसकी साँस जोर-जोर-से चलने लगी थी। वह महसूस कर रही थी कि अब शायद जोरसे बिजलीके कंडकनेकी आवाज होगी और वह फर्शपर गिर पड़ेगी।

“जवाब दो हुस्ना, यह तुमने अपनी क्या हालत बना रखी है ?” हुस्नासे अधिक नहीं सहा गया। वह जोरसे रो पड़ी और गफूर मियाँसे लिपट गयी। उसकी सिसकियोमे बाहरकी टपाटप गुम हो गयी। गफूर मियाँ चुपचाप उसे अपने सीनेसे चिपटाये उसके बालोपर हाथ फेरते रहे। उनकी आँखें भी भर आयी थीं और गलेसे आवाज नहीं निकल रही थी। वे कमरेकी दीवारोकी ओर ताकते रहे, बिजलीकी रोशनीमे खिड़की-पर लगे धुँधले परदे, फटा कालीन, मैले कम्रल, खाली ड्रेसिंग टेबल, मेजपर रखे फूलदानमे कागजके फूल और धूलसे भरा तानपूरा, तबले, सारंगी देखकर उन्होंने वास्तविकताका अनुमान लगानेकी कोशिश की।

थोड़ी देर बाद दोनो आगके पास बैठे थे। एक ही कम्रलमे दोनो के पैर घुटनो तक छिपे हुए थे। गफूर मियाँ सूनी आँखोसे ध्यानसे हुस्नाकी ओर देख रहे थे। वही चेहरा था, वही बड़ी-बड़ी काली आँखें और पतले होंठ, लम्बी-लम्बी उँगलियाँ और उनके लाल नाखून थे, लेकिन फिर भी वे किसी और चीजकी तलाश कर रहे थे, जो पहले हुस्ना मे थी और शायद अब नहीं है ..“मैं तुम्हे इस तरह बरबाद नहीं होने दूँगा हुस्ना, मुझे कभी सपनेमे भी यह खयाल नहीं था कि तुम्हारी ऐसी

हालत हो गयी है। अगर मुझे पहले पता चल जाता तो कभीका तुम्हें बर्बाद ले गया होता। तुमने मुझे भी गैर समझा हुस्ना, मुझे एक चिट्ठी तक नहीं लिखी। अगर मैं अभी न आता तो मुझे तुम्हारे बारे में कुछ भी पता नहीं चलता और तुम इसी तरह धुलती जाती.. मैंने तुम्हें समझनेमें भूल की हुस्ना..." और फिर दृढ़ताके साथ कहा, "अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। मैं अभी चार-पाँच दिन तक यही हूँ। मैं तुम्हें जबरदस्ती बर्बाद ले जाऊँगा। वहाँ तुम्हारा सारा इन्तजाम हो जायेगा.. "

बाहर जोर की बारिश पड़ने लगी थी। खिड़कीमेंसे सरसराते, हवा के झोंके अन्दर आ रहे थे। लेकिन दोनोंमेंसे किसीका ध्यान उस ओर नहीं था। शहीदन रसोईमें जल्दी-जल्दी चाय बनानेकी तैयारीमें लगी हुई थी।

"आज यह कमरा पहचाना भी नहीं जाता। कोई देखे तो यही समझेगा कि इसमें बरसोंसे कोई नहीं रहता। मैंने सोचा था कि वहाँ तुम्हारे गानों से जिंदगी और जिंदगीका प्यार बिखर रहा होगा। लेकिन देखता हूँ कि यहाँ मरघट-जैसा सन्नाटा है, जैसे यहाँ इन्सान नहीं, इन्सानोंके भूत बसते हों। तुम तो ऐसी नहीं थी हुस्ना। तुमने कभी कागज के नकली फूलोंको पसन्द नहीं किया। तुम्हारे फूलदानमें हमेशा ताजे फूल सजे रहते थे। यह सब क्या हुआ?" गफूर मियाँने एक लम्बी साँस ली और चिमनीमें जलती लकड़ियोंकी लपटोंकी तरफ देखने लगे। शहीदन चायकी ट्रे ले आयी। उसने दूरसे ही गफूर मियाँ और हुस्नाको इस तरह चुपचाप बैठे देखा मानो वे अभी तक एक दूसरेसे परिचित ही न हुए हों। हुस्ना और दिनोंसे भी ज्यादा गम्भीर दिखाई दे रही थी, उसकी ये ही अस्वाभाविक चौका देने वाली बातें शहीदनकी समझमें नहीं आती थी। गफूर मियाँके साथ वह हुस्नाके हँसते

हुए होठोका इन्तजार कर रही थी। “गफूर मियाँ, क्या आपके दोस्त को चाय नीचे ही ”

“अरे, मैं तो शहरारको भूल ही गया था। वह अकेला नीचे बैठा मुझे कोस रहा होगा।” और फिर हुस्नाकी ओर देखते हुए गफूर मियाँ ने कहा, “मेरे साथ बंबईसे एक दोस्त आये हैं हुस्ना ! बंबईमें फिल्में बनाते हैं। बंबईमें मैं हमेशा शहरारसे तुम्हारे गानोकी तारीफ किया करता था। शायद इस चर्चासे ही तुम्हारी याद मेरे दिलमें हमेशा ताजी बनी रहती थी। इस बार शहरारको भी मैं अपने साथ ले आया। तुम्हारे गानेकी तारीफें सुनते-सुनते इस बार उन्होंने तुम्हारा गाना सुननेका फैसला कर लिया और वे मेरे साथ यहाँ तक चले आये...”। हुस्ना को कुछ न बोलते देखकर गफूर मियाँने धीमी आवाजमें कहा... “लेकिन मैं तुमसे गानेके लिए नहीं कहूँगा हुस्ना ! तुमसे कुछ भी कहनेका मेरा मुँह नहीं है ...” हुस्नाने बहुत देर बाद अपनी झुकी नजरे ऊपर उठाई। गफूर मियाँ चाहते हैं कि वह गाना गाये और वह. .उसने तो हमेशा यही चाहा है कि कोई उसके सामने बैठ कर उससे कुछ गानेके लिए कहे और आज-जैसा मौका फिर नहीं आयेगा।

“मैं गाऊँगी गफूर मियाँ...” उसने स्वयं ही महसूस किया कि उसकी आवाजमें स्वाभाविकता आ गयी है और गफूर मियाँको अचानक अपने सामने पाकर धीरे-धीरे जो ज्वार-भाटा बढ़ने लगा था, वह अब कम होता जा रहा है।

“ओह हुस्ना !.. ” गफूर मियाँ चिल्ला उठे, “मैं इन आँखोको पहचानता हूँ। मैंने इन्हे जबसे देखा है तबसे इनमें ज्यादासे-ज्यादा डूबने की कोशिश करता रहा हूँ। लेकिन जितना ही मैं इनमें डूबा, इनकी

गहराई और भी गहरी होती रही और आज...आज तो उसकी कोई थाह नहीं है, कहीं किनारा दिखाई नहीं देता..."

हुस्ना थोड़ा-सा पहली बार मुसकरायी। उसने शहीदनकी ओर देखते हुए कहा, "इनके दोस्तको ऊपर बुला लो चाची."

शहीदनके चले जानेपर गफूर मियाँ खड़े हो गये और हाथोंको बगलमें दबाकर कमरेका चक्कर लगाने लगे। कुछ देरके लिए वे खिड़कीके सामने भी जाकर खड़े हुए, परन्तु बाहर उन्हें कुछ भी दिखाई नहीं दिया। फिर वे हुस्नाकी पीठकी ओर देखने लगे। हुस्नाके सिरपर दुपट्टा नहीं था। उसके बाल चोटीमें बँधे हुए थे और दोनों तरफ कानोंमें दो छोटी-छोटी सोनेकी बालियाँ दिखाई दे रही थी। वह घुटनोंपर अपनी ठुड़ी टिकाये बैठी थी। दीवारपर लगा बड़ा-सा गोल घटा टँगा था, जिसकी आवाज कमरेके सन्नाटेमें गूँज रही थी।

हुस्ना गा रही थी :

कई बार इसका दामन भर दिया हुस्ने दो आलम से।

मगर दिल है कि इसका खाना वीराना नहीं जाती ॥

उसके पास न उस्तादजी बैठे तबलेपर ठेके मार रहे थे और न ही जमाल खॉ सारंगी बजा रहे थे। लेकिन हुस्नाकी आवाज थी, धीमी लेकिन स्पष्ट आवाज, जो कमरेके खूनेपनको चीरती हुई मुनसान सोई गतमें उथल-पुथल मचा रही थी। हुस्ना धीरे-धीरे महसूस करने लगी कि वह अपने आपमें नहीं है। किसी अँधेरी वीरान घाटीमें गुम होती जा रही है। गाते समय वह अपने हृदयकी आन्तरिक शक्तको तीव्रतम महगुम कर रही थी, जैसी उसने पहले कभी नहीं की थी। उसे जान पड़ता था मानो उसके गलेसे निकलते एक-एक शेरमें उसकी जिंदगीकी सारी अनुभूतियाँ, सारी कशमकश, उसका सारा प्यार और दर्द बाहर निकलकर आ रहा हो। जिन अस्पष्ट और धुँधले विचारों और भावनाओंको वह



कभी शहीदनके सामने व्यक्त नहीं कर पायी थी, वे सबकी सब आज उसकी आवाजमें बड़ी आसानीके साथ बरसाती नालेकी भाँति बाहर निकल रही थी। उसकी सारी जिंदगी और जिंदगीकी मान्यताएँ नंगी होकर उसके सामने खड़ी थी। उसे खयाल नहीं रहा कि सामने गफ़ूर मियाँ और उनके दोस्त बैठे उसका गाना सुन रहे हैं। उसके गानेके साथ तबला या सारंगी नहीं बज रही है। यह उसका पुराना कमरा और चारों ओर उसकी दीवारें हैं। जिसकी हरएक चीजपर धूल जमी हुई है। उसकी आवाज कमरेमें से बाहर निकलकर हवाके भोको और बारिशकी बूंदोंके साथ मिलकर एक होती जा रही थी।

गजल समाप्त हो गई और सबने महसूस किया, मानो कोई लम्बी, आसानीसे न बीतनेवाली रात खत्म हो गयी हो। गफ़ूर मियाँने गानेके बाद कुछ नहीं कहा। उन्होंने पीठ मोड़कर चुपचाप रूमालसे आँखें पोछ ली, हुस्नाके पिछले पाँच सालोंकी कहानी स्पष्ट रूपमें उनके सामने उभरकर आ गई थी। किसीको पता नहीं चला कि कमरेके बन्द दरवाजेके पीछे बैठी शहीदन गजल सुनते-सुनते इतना रोई कि उसके दुपट्टेका सारा छोर भीग गया। उसे हैरानी हो रही थी कि उसकी बूढ़ी आँखोंमें क्या अब भी इतना पानी है ?

परन्तु शहरारको वास्तविक स्थितिका ज्ञान नहीं था। गफ़ूर मियाँने यहाँ आनेसे पूर्व उसे हुस्नाके विषयमें बहुत-कुछ बतला दिया था, परन्तु यह कहानी पिछले कुछ क्षणोंमें जिस नये मोड़पर मुड़ गयी थी, उसके विषयमें वह कुछ भी नहीं जानता था। उसने हुस्नाकी ओर देखकर कहा, “ओह, खुदाने क्या गला दिया है आपको..। मैं सच कहता हूँ कि ऐसा गाना जिंदगीमें मैंने पहले कभी नहीं सुना। कितना ओज, कितना दर्द है आपकी आवाजमें। इसे म्यूजिक कहते हैं, जो तीरोकी तरह सीधा दिलको चीरता अन्दर पहुँचता जाये...”

हुस्नाने कुछ नहीं कहा। उसके चेहरेपर परेशानीके चिह्न नहीं थे। वह शहरारकी तारीफ सुनकर उसकी ओर देखकर थोड़ा-सा मुसकराई।

शहरार फिर बोला, “शायद गफूर मियाँने आपको बतला दिया होगा कि मैं बंबईमें फिल्में बनाता हूँ। लेकिन इतनी बड़ी फिल्मी दुनियामें एक भी ऐसा गानेवाला नहीं है, जो गानेके साथ अपना दिल बाहर निकाल सके, वे सबके-सब मशीनोकी तरह म्यूजिक डायरेक्टरके इशारेपर गाते हैं और म्यूजिक हिन्दुस्तानी फिल्मोकी जान होता है। अगर वह फेल हो गया तो समझो कि पिकचर फ़ेल हो गई। इसीलिए मैं हमेशा अच्छे गानेवालोकी तलाश किया करता हूँ...” और थोड़ी देर तक ध्यानसे हुस्नाकी ओर देखते हुए वे धीमे स्वरमें कहने लगे—“अगर आप फिल्मोमें ‘प्लेबैक’ गाने लगे तो फिल्मी दुनियामें तहलका मच जायेगा। आपका नाम चन्द ही महीनोमें सारे हिन्दुस्तानमें फैल जायेगा, लोग आपके गाने सुनकर दीवाने हो जायेंगे। बाजारो और गलियोमें लोग आपके गानोको गाया करेंगे। एक-एक गानेके हजारो रुपये आपको मिलेंगे।” और गफूर मियाँकी ओर देखकर उसने महसूस किया कि शायद वह जरूरतसे ज्यादा बातें कह गया है जो उसे एकदम नहीं कहनी चाहिए थी। लेकिन वह अपने उद्गारोको अधिक देर तक मनमें नहीं रख सकता था—वह वहाँ बैठे-बैठे उस दिनकी कल्पना करने लगा जब हुस्ना उसकी फिल्मोमें गायेगी और उसकी फिल्में ‘बाक्स आफिस हिट’ बनने लगेगी। लोग उससे पूछेंगे कि यह हुस्ना बेगम कौन है? हुस्ना शहरारकी बातें सुनकर चौक-सी गई, उसकी समझमें कुछ आया और कुछ खो गया। उसने गफूर मियाँकी ओर देखा, परन्तु वे चुप थे मानो शहरारकी बातें उन्होने नहीं सुनी थी। उनका बस चलता तो वे वहाँसे भाग जाते, इस कमरेकी दीवारो और वातावरणमें उन्हें अपना दम घुटता-सा जान पड़ रहा था। “आपकी क्या राय है गफूर मियाँ? क्या हुस्ना बीबीके फिल्मोमें ‘प्लेबैक’

गानेसे उनका नाम रोशन नहीं हो जायगा ? हुस्ना बीबीका म्यूजिक इस चहारदिवारीके अन्दर बन्द नहीं रहना चाहिए । वह दुनियाके लिए है, लोगोंके लिए है और आजकी दुनियामे फिल्मे ही आपकी आवाजको लाखों लोगों तक पहुँचा सकती है ।”

थोड़ी देर बाद कल फिर मिलनेका वायदा करके शहरार पहले सीढियों उतर गया । उसका दिल और जोर-जोरसे उछल रहा था । उसे स्वप्नमे भी यह खयाल न था कि हुस्नाकी आवाज इतनी आकर्षक हो सकती है । गफूर मियाँ कुछ मिनटोंके लिए अकेलेमे हुस्नासे बातें करनेके लिए रुक गये । “हुस्ना, आज मैं तुमसे न मिलता और तुम गजल न गातीं तो तुम्हारी जिदगीके जिस पहलूको मैंने आज देखा है वह कभी नहीं देख सकता था । लेकिन नहीं...” एकाएक उन्होंने हुस्नाका हाथ पकड़ लिया और उसकी आँखोंमे भाँकते हुए कहने लगे, “तुमने अपनी मनमानी इन पाँच सालोंमें बहुत की । अब मुझे अपना हाथ पकड़ने दो हुस्ना । मैं तुम्हें अपने साथ बँवाई ले जाऊँगा । यहाँ तुम्हें आखिरी सोंसे गिननेके लिए नहीं छोड़ सकता । अभी तक दुनियाने तुम्हें तुम्हारी असली जगह नहीं दी । तुम्हारे गाने इस कमरेकी दीवारोंसे टकराकर खो गये । लेकिन अब यह नहीं हो सकता ।” उनकी आवाजमे एक दृढ़ता थी, सकल्प था । हुस्ना मुसकराती हुई उनकी ओर देख रही थी—“जमानेके साथ तुमने आगे बढ़ना नहीं सीखा हुस्ना, तुम बरसोंसे वहींकी वहीं खड़ी हो । लेकिन आज तुम्हारे पैरोंके नीचेसे जमीन खिसक रही है और अगर तुम आगे नहीं बढ़ो तो एक दिन...”

“आप घबड़ा क्यों रहे हैं गफूर मियाँ ? मैं आपके साथ बँवाई चलेँगी । अभी तो आप चार-पाँच दिन यही है ..” हुस्नाने अपने हाथोंसे उनका हाथ सहलाते हुए कहा ।

“शहरारकी बात भी बुरी नहीं है । तुम्हारा हुनर दुनियाके लिए

है, चन्द लोगोके लिए नहीं। मैं जानता हूँ, तुम्हे फिल्मे पसन्द नहीं है, लेकिन तुम्हे तो सिर्फ 'प्लेवैक' गाने ही गाने होंगे। जैसे यहाँ गाती हो, जैसे पहले हम लोगोके सामने गाया करती थी.. ”

थोड़ी देर बाद गफूर मियाँ चले गये। वे हुस्नासे बचई चलनेकी योजना इस प्रकार बना रहे थे मानो शादीसे पहले कोई अपनी मगेतरसे शादीके बाद रगीन प्रोग्राम बनाता है और उसमे जितना सुख उसे मिलता है उतना शायद उन प्रोग्रामोको क्रियात्मक रूप देते समय उसे नहीं मिलता। हुस्ना चिमनीके पास ही बैठ गयी। लकडियोमे से आगकी लपटे निकलनी बन्द हो गई थी। कुछ देर तक हुस्नाकी विचार-शक्ति और चेतना लुप्त-सी हो गयी। वह गफूर मियाँ, शहरार, बचई, सबको भूल गयी। मानो उन सबका उसकी जिदगीसे कभी कोई सम्बन्ध न रहा हो। धीरे-धीरे उसका यह उन्माद खत्म हुआ और पिछले दो-ढाई घटोकी घटनाएँ स्वप्नकी भाँति उसकी आँखोके सामने घूमने लगी। शहरार कहते थे कि उसे फिल्मोमे 'प्लेवैक' गाना चाहिए। वह परदेके पीछेसे गाये और फिल्ममे एक्ट्रेस अपने होठ हिलाये। हुस्नाको हँसी आ गई। उसकी शोहरत होगी। उसे एक-एक गानेके हजारो रुपये मिलेंगे, लोग हुस्नाके 'प्लेवैक' गानोकी चर्चा किया करेंगे। सड़कोपर चलते हुए ताँगेवाले, बैलगाडियोवाले अपना लम्बा रास्ता काटनेके लिए उसके गानोको गुनगुनाया करेंगे। सामने 'गुलजार रेस्तराँ'में लगे रेडियो से जिस तरह दूसरी फिल्मोके रेकार्ड बजते हैं उसी तरह मेरी आवाज भी लोग सुना करेंगे। तो क्या मेरी पिछली जिंदगी झूठ थी? जिस पौधे को मैंने इतने प्यारसे पाल-पोसकर इतना बड़ा किया, वह सब बेकार था? नहीं, झूठ नहीं था। मेरा एक रास्ता है और शहरारका दूसरा। मैं अपना रास्ता छोड़कर दूसरेके रास्तेपर नहीं चल सकती। और... गफूर मियाँ भी यही कहते थे। वे मुझे अपने साथ बचई ले जाना

चाहते हैं और अगर मैंने मना किया तो वे जबरदस्ती ले जायेंगे। उनके सामने मुझसे उनकी बात टाली नहीं जायगी। उनके सामने मैं अपने-आपको एक कमजोर बच्चा समझ लेती हूँ, जो उँगली पकड़कर चलता है। गफ़ूर मियाँको मेरी हालतपर तरस आ गया। मनमें शायद वह मेरी किस्मतपर रो भी रहे हों और वे भी मुझे 'प्लेबैक' सिंगर बनाकर मेरी किस्मत बदलना चाहते हैं। वह मुझे दुनियासे वह जगह दिलवाना चाहते हैं जो अभी तक मुझे नहीं मिल सकी है। वह हँसने लगी...कोई मुझे नहीं समझ सका...लोगोंको मेरा गाना पसंद आता है क्योंकि उसमें दर्द होता है, सोज होता है। लेकिन आखिर यह दर्द और सोज कहाँसे आया? इसका भी तो मेरी जिंदगी और मुझसे गहरा ताल्लुक है। लेकिन मेरी जिन्दगीसे किसीने प्यार नहीं किया। उसे समझनेकी किसीने कोशिश नहीं की। क्या 'प्लेबैक सिंगर' बननेमें मेरी आवाजमें वह दर्द रह सकेगा? क्या परदेके पीछेसे मैं किसीको भी अपने गानोंसे अपनी जिंदगी और उसकी तडपनको समझा सकूँगी? गाने वाले और सुनने वालोंके बीचमें बिना कोई रिश्ता जोड़े क्या कोई गायक लोगोंके मनके तारोंको छू सकता है? वे समझते हैं कि मुझे शोहरत प्यारी है। रुपयेका लालच वे मुझे देते हैं लेकिन क्या उनकी जरूरत कभी मैंने महसूस की है?...नहीं, मैं बम्बई नहीं जाऊँगी, मुझे 'प्लेबैक' गाने नहीं गाने हैं।

अगले दिन सुबह तड़के ही शहीदनको जगाकर हुस्नाने उससे जल्दी-जल्दी सामान बाँधनेके लिए कहा—“तुम कहीं बाहर चलनेको कहती थी न चाची। तो चलो। मैं जल्दीसे जल्दी इस शहरसे बाहर चली जाना चाहती हूँ जहाँ मुझे कोई न जानता हो, किसीको मेरे मकानका पता न मालूम हो। जल्दी करो चाची। हमें पहली गाड़ी ही पकड़नी है। किसी भी शहरके लिए....”

# राय आनन्दकृष्ण

सुप्रसिद्ध कला-आलोचक और कला-मर्मज्ञ राय कृष्णदासके सुपुत्र राय आनन्दकृष्णको कहानियों लिखनेकी प्रेरणा कदाचित् अपने कथा-अनुरागी पितासे ही मिली। आपका जन्म बनारसमें हुआ और वहीं आपने शिक्षा पाई। एम०ए० में प्रथम स्थान प्राप्त कर आजकल आप शोध-कार्यमें संलग्न हैं।

राय आनन्दकृष्णकी कहानियाँ यही निर्देश करती हैं कि कथाकारको सूत्र-रूपमें कथा कहना अच्छा लगता है। सक्षेपमें अपनी बात कहनेकी प्रवृत्ति सभी कहानियोंमें पायी जाती है, किंतु उनकी विशिष्टता यही है कि सक्षिप्त होनेपर भी वे अपनेमें पूर्ण होती हैं। आपके कथानक जीवनकी बहुत छोटी-छोटी-सी घटनाओंसे उठाये हुए होते हैं।

अनेक कहानियाँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंमें छप चुकी हैं।

# ० माधवी और कर्णिकार

—राय आनन्दकृष्ण

मै उन दिनों शाकुन्तल पढ़ रहा था—“कः सहकारमन्तरेण ज्योत्स्ना-मल्लिकां सहेत, समुद्रमन्तरेण महानदी कुत्र वा अवतरति।” सामने खिड़की के नीचे दूर तक एक पुराने मकानका खंडहर फैला था जिसके ईंट-पत्थर हटा दिये गये थे, केवल एक दूह बच रहा था। प्रकृतिको केवल ईंट-चूनेका साम्राज्य नहीं भाता। उसे मिट्टीसे प्रेम है और वह ईंटकी दीवालमें भी मिट्टी खोजती है। उस मिट्टीके ढेरमें एक ओर पीपल, इमली और नीम, दूसरी ओर पारिजात, बेल इन सबने बीसो बरससे अपना साम्राज्य जमा रखा था।

बीचमें एक दिन मैंने देखा—उस दिनका मुझे भलीभाँति स्मरण है, एक कर्णिकार निकला है। उसके शैशव-कालमें ही लोगोंने उसका रूप सराहा और भविष्यमें सुन्दर फूल पानेकी आशा की।

“कः सहकारमन्तरेण.....”

आषाढ़में अनजान बूटियोंके बीच माधवीने जन्म लिया। वर्षाकी फुहार और ठंडी बयार पाकर वह विकसित होती गई।

कर्णिकारने उसे पता नहीं देखा या नहीं, पर मै, राजीवलोचन बी० ए०, अपनी खिड़कीपर बैठा एम० ए० के नोट तैयार करता और दोनों को देखता। परन्तु मै भूलता हूँ—कर्णिकारने उसे पहले ही देख लिया था क्योंकि जब ठंडी हवा चलती तब अपनी लम्बी डाले हिलाकर आमोद मनाता।

उन्हीं दिनों कहीं बाहर जाना पडा। महीने भरसे ऊपर बाहर रहनेके बाद लौटकर देखा—माधवी विस्तृत हो गयी, कर्णिकार नये पत्तोंसे ढँक गया है। कर्णिकार बड़ी आकुलताके साथ ही अपनी डाले हिला-हिला-

कर माधवीको बुलाता और माधवी जैसे अपना सिर हिला-हिलाकर कर्णिकारको हताश करती हुई कहती—‘नहीं, नहीं।’ तब कर्णिकार शिथिल होकर अपने सारे शरीरको झुका देता, उसकी सूखी पनियाँ गिर-गिरकर ऑसूके समान बिखर जाती—ठीक उसी प्रकार जैसे शकुन्तलाके वियोगमें आश्रम-लताएँ अपने सूखे पत्ते-रूपी ऑसू गिराती—और उसे विकल देखकर माधवी भी अपना मुँह फिरा लेती। कर्णिकार अपनेमें सोचता—‘कः सहकारमन्तरेण .’ माधवी सहकारको ही खोजती है। वह निश्चय ठान लेता कि अब माधवीकी ओर आँख उठाकर देखूँगा भी नहीं—जाने दो उसे, मैं अपनेमें ही क्या कम हूँ किसीसे ?

शरट बीत चुकी थी, मुझे कालेज जानेके लिए अब छतरीकी आवश्यकता न पड़ती। मैं खिड़की खोलते ही देखता, सब कुछ सूना-सूना-सा है। जान पड़ता है माधवी और कर्णिकारमें कुछ कहा-सुनी हो गयी है। पर माधवीको तो कभी कुछ कहते सुना ही नहीं। “चलो कुछ होगा”, मैं निश्चय करता और विगत कलके लिये हुए नोट दूसरी कापी पर उतारने लगता।

पीछे बरामदेमें भाई साहब अपने मित्रोंमें बैठकर बातें करते, “इंट इकट्ठी कर ली है, सीमेट और लोहा मिल जाय तो सामनेके खंडहर पर एक छोटा फ्लैट बना लें, आजकल अच्छे किरायेपर उठ जायगा।”

मेरी लेखनी वही अटक जाती जैसे तेजीसे सीढ़ी उतरते समय रेलिंगमें कपड़ा फँस जाने पर कोई रुक जाय। और, तब मैं अपने मनमें उठती हुई अनेक उलझनोंको फँसे हुए कपड़ेकी भाँति सुलझाने बैठ जाता। कालेजकी नोटबुक सामने खुली पड़ी रह जाती। मैं एक बार कर्णिकारकी ओर देखता और फिर भाई साहबके स्वभावपर विचार करता ... फिर यह सोचकर सतोष कर लेता कि आजकल किसे सिमेट मिला है ?



उधर दिन छोटे होने लगे थे। उठते-उठते ही कालेज जानेका समय हो जाता। कालेजसे लौटकर मैं अपने अध्ययनमें प्रवृत्त होता और रात दो-दो, तीन-तीन तक बैठा लिखा करता अथवा पहले लिखे हुए निबन्धोंको दुहराया करता। परीक्षाकी तैयारीमें मैं कर्णिकार, माधवी, भाई साहब, सिमेट, लोहा, मकान सबको भूल चुका था। ठड़ी हवासे बचनेके लिए भाई साहब पहलेसे ही व्यवस्था कर रखते—मेरे टेबुलके बराबरकी खिड़की शामको अपने सामने बंद करा देते, नहीं तो मैं अल्हड आदमी, अपने स्वास्थ्यका खयाल न कर कही खिड़की खुली छोड़ पड़ता रहूँ और बादमें न्यूमोनियाँ, ब्रॉकाइटिस जैसी किसी बीमारीका शिकार बूँ !

एक रविवारको दोपहरके समय खा-पीकर मैं अपना साप्ताहिक पारायण पूरा करनेके निमित्त पाठ्य-पुस्तकें लेकर बैठा। शकुन्तलाके पृष्ठ उलटते-उलटते दृष्टि जाकर जम गयी—“कः सहकार.....”

“ओह कर्णिकार”, मैंने सोचा, “तेरी कितने दिनो तक सुध भी न ली भाई मैंने।”

तुरन्त खिड़की खोली। खिलखिलाती धूप आकर मेरे पैरोपर पड़ गयी। सामने सुंदर कर्णिकार हवामें लहरा रहा था। माधवी उससे लिपटी हुई।

“बधाई भैया”, मेरे मुँहसे उसी प्रकार निकल पड़ा जैसे मैं अपने किसी सहपाठीसे कह रहा होऊँ, “मिठाई कब खिलाओगे?”

और अपने प्रश्नपर मैं स्वयं चौक उठा। कर्णिकार और मिठाई ! देखा, कर्णिकार फूलोंसे लदा था, वह माधवीको पाकर भ्रूम रहा था।

मैंने अपनेको मनमें धिक्कारते हुए कहा—इतने दिनो तक ऐसे प्रियको भूल रहा। उसकी ओर नजर उठाकर भी न देखा। पर उसी समय अपना बचाव भी भीतरसे ओठों पर आ गया—तो मुझे उससे क्या ? मेरे न देखते भी वह तो बढ़ता ही जायगा, माधवीके साथ मिलकर नाचना क्या मेरे न देखनेसे उसने एक क्षण भी बंद किया ?

वादीने व्यगके टोनमें उत्तर दिया, अच्छा ! सारा संसार तेरे लिए रुका रहे । यदि तुझे उसकी ओर देखना हो तो प्रकृतिके इस वरद पुत्रकी ओर देख ले । नहीं तो जैसे तुझे एम० ए० के नोट्स बनानेसे छुट्टी नहीं है वैसे उसे भी फूलने, फूलने, नित पल्लवित होने से नहीं ।

हाँ, कर्णिकार इस साल फूला था । सचमुच उसके लिए यह उक्ति सर्वथा समुचित है कि फूलके बोझसे वह दब जाता है ।

पर मुझे इस सबके लिए छुट्टी कहों । एक पक्षके बाद एम० ए० की परीक्षा देनी है, मैं परीक्षा शुरू होनेके पहले ही भलीभाँति कल्पना करने लगा कि परीक्षा समाप्त हो जानेके बाद अपनी पढाई, लिखाई, नोट्स, व्यस्तता, जिसमे खाना-पीना सब भूल जाता है, इन सबको कितनी तुच्छ दृष्टिसे देखूँगा । एकाएक न जाने किस अनजान शक्तिने इन विचारोंकी ओरसे बलात् मेरा ध्यान हटाकर उन्हीं अक्षरोंकी लंबी-लंबी पोंतो पर जमा दिया । बकरीके बच्चे दूध पीकर इधर-उधर क्रीडा करते हैं, पर जरा-सा खुटका होते ही माँके थनसे लिपट जाते हैं ।

अकालवृष्टिके ओलोंसे मार्चकी गर्मीं और कर्णिकारके फूल गायब हो गये । बड़े भाई साहबने मुझसे कहा “चलो जी, ठढक हो गयी । परीक्षा देकर दोपहरीमे लौटते समय तुम्हे धूप न लगेगी ।”

मैं विनयसे नत हो जाता, कुछ उत्तर न देता । केवल कर्णिकारकी ओर देखता तो मुझे अपनी छोटी बहनके झुलसे मुखका स्मरण आ जाता जिसके कपड़ोंने दीवाली पर दीपक रखते समय आग पकड़ ली थी । कर्णिकारका रूप विलकुल उसी जैसा हो गया था ।

उस दिन तीसरा पर्चा बहुत अच्छा हुआ । भाई साहबने आते ही अभ्यासवश पूछा—“कैसा परचा रहा ?”

“आपके आशीर्वादसे यदि दो-एक ऐसे ही अच्छे बन गये तो”... हर्षके मारे मेरा गला रुँध रहा था, “तो प्रथम आना निश्चित है।”

“आज अच्छा ही अच्छा सुननेको मिल रहा है, आज बड़े सौभाग्यका दिन है।” मेरी ओर उन्होंने इस दृष्टिसे देखा जैसे मैं अन्य शुभ बातोंके लिए पूछूँ और तब वे उन्हें सुनाये। पर अधिक रुकना उनके लिए संभव न था। उन्होंने कहा, “आज इतनी प्रतीक्षाके बाद सिमेंट और लोहेका परमिट आ गया और मैंने काम लगवा दिया है।”

मैंने उत्साहसे खिड़की खोलकर नीचे देखा तो पाया, मजदूरोंका एक झुंड पेड़ोंको काटनेमें लगा है। इमली कट चुकी है, नीमकी बारी है। और कर्णिकार, वह माधवीसे लिपटा हुआ भूलूठित पडा है।

मेरे मुँहसे अचानक निकल पडा, “कर्णिकार.....माधवी”—

पीछे भाई साहबके ही मुँहसे सुना कि मजदूरोंने बेल और पीपल काटनेसे इनकार कर दिया। फलस्वरूप उन्हें नये फलैटकी लम्बाई-चौड़ाईमें बड़ी कमी कर देनी पड़ी। किंतु कर्णिकार—माधवी—?



# कृष्णकिशोर श्रीवास्तव

बत्तीस वर्षीय कृष्णकिशोर श्रीवास्तवकी मान्यता है कि जीवनमें 'कुछ न कुछ' 'उछालना' अवश्य चाहिए, और वह भी इतनी गम्भीरतासे कि सब लोग उस ओर सजीदगीसे आकर्षित हो जाये। कदाचित् यही कारण था कि कृष्णकिशोर श्रीवास्तवने अपना उपनाम 'शेष' रखकर गणितके सिद्धान्तोपर कहानियाँ लिखी। कदाचित् यही कारण है कि भौतिक-शास्त्रमें एम० एस-सी०की डिग्री लेकर उन्होंने 'साहित्यरत्न' की परीक्षा पास की और अब 'हिन्दी-साहित्यपर भौतिक विज्ञानका प्रभाव' विषयपर अनुसंधान कर रहे हैं। सम्प्रति नागपुर विश्वविद्यालयके प्रकाशन-अधिकारी हैं और डटकर हास्य व व्यंग्यके नाटक लिख रहे हैं, जो रेडियो और रगमच, दोनों जगह, समानरूपसे लोकप्रिय हुए हैं।

अपनी कहानियोंमें कृष्णकिशोर श्रीवास्तवने यही चेष्टा की है कि उन्हें पढ़ते समय पाठकको घुँघरुओके बजनेका आभास हो। और उन कहानियोंके विषयमें सोचते समय पाठकको यही लगे कि—गणित हमारे जीवनका अविभाज्य अंग है, हमारे जीवनके समस्त सत्य गणितके सिद्धान्तोके अन्तर्गत आ जाते हैं। प्रस्तुत कहानीमें आपने सिद्ध करनेकी चेष्टा की है कि आनन्द = जीवन/इच्छाएँ, अपनी एक दूसरी कहानीमें आपने सिद्ध किया है कि प्रेम = वियोग + सुख। पाठक यदि साहित्य और गणितके इस लॉजिकल सम्मिश्रणसे प्रमुदित होंगे तो कृष्णकिशोरजीको प्रसन्नता ही होगी। उन्हें वास्तवमें पाठकोकी प्रसन्नता ही अभीष्ट है।

आपके एकाकी नाटकोका एक सग्रह 'रेखाएँ' और तीन अङ्कोका एक नाटक 'नाटकका नाटक' प्रकाशित हो चुका है। रेडियो रूपकोका सग्रह 'मछलीके आँसू' और रगमच-नाटकोका सकलन 'आस्तीनके साँप' यत्रस्थ है।

## • आनन्द

—कृष्णाकिशोर श्रीवास्तव

‘जीवन मृत्युकी शय्या है, अथवा मृत्यु जीवनकी पूर्णता?’ नीलेश कुछ निर्णय न कर पाया। वह मौनमे खोया था। उपेक्षित हृदय अपनी चिर साधना तथा अनुभूतियोंके मथनका फल उसके समक्ष प्रस्तुत कर रहा था—‘जीवन तो आनन्द और इच्छाओका संतुलित सामंजस्य है।’

विचारमग्न नीलेश आसन छोड़ उठ खड़ा हुआ। मस्तिष्कमें विचारों का अंधड़ उमड़ रहा था। कमरेके फर्शको वह रौदने लगा। कुछ क्षणोंके बाद उसने वातायनसे भाँका—प्रहरीसे वृद्ध, फिर भूरे केशोंमे माँग-सी पगडंडी, श्वेत सिकतामें उसका अवसान, सिकतासे लिपटा सरिताका कूल—नीरव और निर्जन! सरितामे द्रवता-उतराता राकेश!...सौंदर्य समेट दृष्टि लौटी! नेत्र ऊपर उठे। राकेशमे ज्योत्स्ना, ज्योत्स्नामे राकेश! उनके मिलन-गीत गाती नीलिमामयी नीहारिकाएँ—हाँ, नीहारिकाएँ पीडित आकाशकी अनन्त आशाएँ।

नीलेशके नेत्र ज्योत्स्नाका ऑंचल पकड़ राकेश तक कई बार पहुँचे और लौटे। नीलेशको लगा—ज्योत्स्ना जीवन, राकेश मृत्यु! जीवनमें मृत्यु, मृत्युमें जीवन? वह जीवनमे होकर मृत्युमें पहुँचा। मृत्युसे जीवनमें होकर लौट आया। तभी उस साधकका ज्ञान चिल्ला पड़ा—‘जीवन पथ है, मृत्यु लक्ष्य।’ विजय गर्वमें राकेशको चुनौती देते वह मुसकराया। हृदयने दवे स्वरमें फिर कहा—“आनन्द एवं इच्छाओका एकीकरण ही जीवन है।”

वह अपने आसनपर आ बैठा। स्मरण हो आया कि उसे प्रधान अमात्यके गणित-सम्बन्धी कुछ प्रश्नोंपर विचार करना है। दार्शनिक तर्कके पश्चात् वह गणितकी तल्लीनतामे डूब गया। विपरीत रीतियोंके सघर्ष तथा

विभिन्न संख्याओंके समीकरण सुलभाते-सुलभाते हृदयकी वाणीकी प्रति-  
ध्वनियोंकी प्रेरणासे उसने विचारा—‘क्या जीवन, उसके आनन्द तथा  
उसकी इच्छाओमें कोई निश्चित सम्बन्ध नहीं ?’

अमात्यके प्रश्न अधूरे रह गये । विचारधाराने दिशा बदल दी ।  
गणित की संख्याओमें दर्शनके तर्क बँधने वह उद्यत हो उठा ।

×

×

×

नीलेश तत्त्वशिलाका छात्र था । एक अनाथ बालककी भाँति उसने  
विद्यापीठमें प्रवेश किया था । सबकी सहानुभूतिका आधार था वह ।  
रुचिके अनुसार उसने दर्शन एवं गणित शास्त्रोंका मनन एवं अध्ययन  
किया था । उसकी सफलता आयु एवं अनुभवके साथ बढ़ती ही गयी और  
अध्यापकोंकी सहानुभूति स्नेहमें परिणत होती गयी । सेवा उसका व्रत था  
और स्नेह उपहार । अध्ययन जीवनकी गति दे रहा था—अध्ययन अनुभव  
और मनन बुद्धिके ससर्गमें विकसित हो रहा था ।

इच्छाएँ उसकी सीमित थीं और सीमित था आनन्द । पिताका प्यार  
उसके लिए कल्पनाकी वस्तु था । जब कपोती कोटरमें अपने नन्हेको दाना  
चुगाती अथवा जब मृत शिशुको पेटसे कई दिनो तक चिपटाये वानरी  
अपने असम्य स्वरमें चीखती-पुकारती-रोती, तब माताके स्नेहका भी वह  
अनुमान कर लेता ।

उसे बताया गया था कि उसकी माता उसके जन्मके दूसरे ही क्षण  
सदैवके लिए अपना स्नेह धोरे, अपनी ममता समेटे उससे दूर हो गयी  
थी । उस स्मृतिमें अपने जन्म-दिवसपर वह हँसता और आँसू बहाता ।  
हास्य-रुदन-पूर्ण वास्तविक जीवन उसका वर्षमें केवल एक बार हो पाता ।

इस जीवनकी वास्तविकताका तेइसवॉ अवसर समीप था कि उसे  
एक दिन सदेश मिला—‘उसका पुस्तकीय अध्ययन समाप्त हुआ ।’ उसने  
सोचा, अब जीवनका अध्ययन वह प्रारम्भ करेगा । दूसरा सदेश मिला—

‘वह स्वतंत्र हुआ । अब उसकी जीविकाका भार उसीपर होगा ।’ वह सहमा । जीवनमें जीविकाका प्रश्न समस्याका रूप लेकर प्रथम बार उसके सामने आया । कुछ क्षणोंकी तल्लीनता तथा तर्क-जनित चिन्ताके पश्चात् उसके मुखसे निकला —“चिन्ताओंका समूह ही तो जीवन है ।” वह हँस पड़ा, जैसे उसने सब कुछ पा लिया हो ।

कुछ समय पश्चात् ही गुरुजनोके आशीर्ष एवं साधनोंके फल स्वरूप कोशल राज्य की वेधशालामें गणितसम्बन्धी प्रश्नोंके लिए वह नियुक्त किया गया । अपनी विलक्षण प्रतिभाके कारण कुछ ही दिनोंमें वह प्रजापतिके निकट सम्पर्कमें पहुँच गया । बूढ़े प्रधान अमात्य उसे पुत्रतुल्य समझते । युवक नरेश कभी बन्धु, कभी मित्र कहकर सम्बोधित करते । वह गद्गद हो जाता । गणितसे राज्यमें आया था, दर्शनसे राज्यके हृदयों पर राज्य करने लगा । गणित उसकी जीविका बना था, दर्शन उसके जीवनका लक्ष्य था—आनन्द था ।

×

×

×

उत्सवोंके लिए कोशल सदासे प्रसिद्ध है । भिन्न-भिन्न ऋतुओंमें वहाँ भिन्न प्रकारके उत्सव होते और अनेक आमोद-प्रमोदके साधन एकत्र किये जाते । उनके मध्य कोशलाधीश प्रजा-हित की कुछ बातें कहते ! प्रजाजन अपने कलाविद् प्रतिनिधियोंका आधार ले अपनी कामनाएँ अपने पालक की पलकोंमें सुला देते । ऐसे उत्सवोंमें वसन्तका उत्सव सर्वश्रेष्ठ था । बाल-रवि की प्रथम रश्मि जब तुहिन-बिन्दुओंको समेटती, पुष्पोंका चुम्बन करती, तभी कार्यक्रम प्रारम्भ होता । इसमें खेल-कूद, अश्वारोहण, वेधवाण मुख्य थे । मव्याह्रमें उत्सव विश्राम करता, सध्याको रंगमंच ऐश्वर्य पाता । नृत्य, रूपक आदि देख प्रजा ‘धन्य धन्य’ पुकार उठती । जब स्वर्णिम परिमल अपने अकमें अधिक शीत बोध लाता तब उत्सव सिहरकर समाप्त हो जाता । कितने ही लोग पुरस्कार पाते । कितने अपनी कामना-पूर्तिका आश्वासन पाते ।

इस वसन्त उत्सवमें नीलेशको अमात्योंके समकक्ष आसन मिला था । उत्सवकी समाप्तिपर अन्य उच्च राज-कर्मचारियोंके साथ वह भी राज-भवनमें भोजनार्थ आमन्त्रित था । अपने-आपमें सकुचाता-सा नीलेश भाग्य सराह रहा था ।

भोजके उपरान्त प्रबन्धकने क्षमा-वाचना की—“नर्तकी नीहारिका अचानक अस्वस्थ हो जानेके कारण आज उपस्थित न हो सकी । वह लज्जित है ।”

कोशलाधीशने कहा, “मित्र नीलेश, दुर्भाग्य ! अनृत रह गये तुम्हारे नेत्र । नूपुरोंके स्वरमें बंधकर तुम रसमय न हो पाये । मुझे खेद है ।”

“देवके अनुग्रह एवं स्नेहने मुझे रस-सागरमें डोर दिया । दयामय, यह कामना तो होलिकोत्सवमें भी पूर्ण हो सकेगी ।”

प्रजापतिने मुसकानमें हर्ष प्रकट किया । तत्पश्चात् कवि ‘निर्भर’ ने ‘जीवन’ पर कुछ छंद पढ़े । सत्रने उसकी भाव-प्रौढता एवं कल्पनाकी नवीनताको सराहा । नीलेशने प्रश्न किया, “जीवनको कविने पूर्ण माना है । फिर मृत्युके हिमानी अकका प्रयोजन ?”

“तर्क रसका विश्लेषण कर उसके उन्मादका विनाश कर देगा नीलेश । इसे स्थगित कर दो ।” प्रधान अमात्यने कहा ।

नीलेशका सिर नत हो गया । प्रजापतिने विसर्जनकी आज्ञा दी ।

उस रात नीलेश सो न सका । वह जागता रहा । जीवनपर वह विचार करता रहा । वसन्तोत्सवका शृंगार उसके तर्कसे पीला पड़ रहा था ।

×

×

×

कृष्ण पक्ष प्रारम्भ हो चुका था । इस तिमिरमें नीलेशके मस्तिष्कमें गणितका प्रकाश अधिक आ बुसा था । जिज्ञासाके कारण वह ग्रहोंकी गति पर विचार करना चाहता था । वेधशालामें एक प्रहर रात्रि गये नीलेश दूरदर्शक यंत्र लगाये आकाशमें घूम रहा था । ग्रहोंके बाह्य रूप-रंगमें



उसे स्पष्ट भेद दीख रहा था। वह आनन्दमग्न था। नीलेश यह भेद अपने सहायकको भी दिखाना चाहता था। प्रसन्नताका भार अकेले कैसे वहन करता ? कुछ सोच यंत्रको स्थानान्तरित कर उसने पुकारा—“पुष्कर ! बन्धु पुष्कर !”

“आज्ञा ।”

“मैने यंत्र स्थानान्तरित कर दिया है। कल बतलाये हुए ग्रहको उसके नाभिस्थानमे लाओ तो कुछ नवीनता दिखाऊँ ।”

पुष्कर कुछ देर यंत्रको हिला-डुलाकर बोला, “स्वामी, अवलोकन कीजिए ।”

नीलेश यंत्रमें देखकर बोला, “पुष्कर, अभी तक तुम्हें ग्रह तथा नीहारिकाओमे भेद नही ज्ञात हुआ। खेद ।”

“स्वामी, नीहारिका तो कोशल राज्यमे है। गगन-मंडलमें कहाँ ?” नीलेशकी सहृदयताका लाभ उठाकर पुष्कर बोला ।

“नीहारिका ।”

“हाँ स्वामी। वह नर्त्तकी नीहारिका। इन अनन्त नीहारिकाओके सम्मिलित सौंदर्यसे बढकर सौंदर्य समेटे। इनके नर्त्तनसे अधिक उन्माद अपने नुपूरोमे बाँधे और इनसे हमारे अधिक समीप रहनेवाली नर्त्तकी नीहारिका ।” और पुष्कर अपने स्वामीकी मुद्राका निरीक्षण करने लगा ।

नीलेश चित्रलिखित-सा खडा रह गया। भोज-दिवसके प्रजापतिके शब्द उसे स्मरण आये। फिर सँभलकर बोला, “पुष्कर, मुझे गगनपर रहने दो। धरापर सम्भवतः मुझे सुख नहीं मिल सकेगा ।”

कार्य स्थगित हो गया। नीलेश वेधशालासे लगे अपने गृहकी ओर चला। उसने विचारा—क्या नीहारिका वास्तवमे ऐसी है ? अवलोकन करूँ उसका भी ? दूरदर्शक यंत्रसे अथवा सूक्ष्मदर्शक यंत्रसे ? फिर वह स्वयं ही हँस पडा ।

दिन अपनी कालिमा लिये हँसने को उतावले भाग रहे थे। नीलेश उनकी दौड़में प्रायः नीहारिकाके विषयमें कुछ न कुछ सुन लेता। उसका मानव-मस्तिष्क, उसका सजल हृदय अब इच्छाएँ पालने लगा। दूरसे नहीं, समीपसे—जहाँसे नूपुरोंकी ध्वनि सुन सके और उसकी भाव-भंगिमा देख सके, वहाँसे—वह नीहारिकाको देखना चाहता था। नीलेश अनुभव कर रहा था कि उसके स्थायी जीवनका आनन्द घट रहा है। इच्छाएँ बढ़ रही हैं। पर वह विवश था, क्योंकि मानव था।

×

×

×

अग्निज्वाल चद्रके चुम्बनार्थ ऊपर उठ रही थी। ज्वालकी उसासे अपनी असमर्थतामें विलीन हो रही थीं। चद्र उसके हृदयकी इच्छाओंका अनुमान कर अपने इन्दु-करोसे शीतलता प्रदान कर रहा था। ससार कह रहा था—“यह होलिकाकी ज्वाल, वह पूर्णिमाका चद्र।”

समीप ही उद्यानमें कोशलाधीश राज्यके प्रमुख कर्मचारियों सहित नीहारिकाके नृत्यमें खो जानेको उतावले हो रहे थे। वातावरण शान्त था। एकत्र व्यक्ति अशान्त। पक्षियोंके शब्द कभी-कभी शान्ति भग करते। नीलेश कहता, “दयामय। पक्षियोंके भी हृदय होता है।” अधिपति मुसकानमें नीलेशकी बात मान लेते।

प्रबन्धकने सूचना दी और नूपुरोंके जीवनमें क्रान्ति मचाती नीहारिका रगमचपर थिरक पड़ी। मचल पड़े दर्शकोंके हृदय। वाद्योंकी ध्वनिमें पग-पायलोकी रुनझुन-रुनझुनमें जिज्ञासा, कौतूहल, आनन्द, प्रशंसा—टकरा-टकराकर बिखरने लगे। रगमच पुष्पोंसे ढक गया और नीलेश एक अनोखी अनुभूतिसे, जो उसके लिए सर्वथा नवीन थी। लयके आरोह-अवरोहमें वह झूबता और उतराता, रुनझुनमें वह मुसकराता और नर्तकीकी मुद्राओंमें वह खो जाता। इच्छा थी, नृत्य ही जीवन बन जाय।

यौवनकी अन्तिम उसोस-सा नृत्य समाप्त हुआ । करतल ध्वनिके तुमुल कोलाहलमे प्रशसाके शब्द भटकने लगे, जिनमेसे कुछ ही नीहारिका तक पहुँच पाये ।

“मेरा कथन असत्य तो नहीं था नीलेश ?”

नीलेश तन्मयतासे जागा, “सर्वथा सत्य था दयामय ! मैं विचार रहा था, हमारा जीवन भी तो ऐसी ही तन्मयतासे ओत-प्रोत इच्छाओका नृत्य देखता है—आनन्दके लिए ।”

“तो आओ, इस जीवनको इच्छाओसे मिला दूँ—आनन्दके लिए ।” अधिपतिका विनोद अधरोसे भाँक उठा ।

प्रजापतिके आगमनकी सूचना पा नीहारिका यवनिका हटा सामने आ गयी । सौंदर्य और कलाने सम्मिलित भावसे नत होकर वैभवको प्रणाम किया ।

“ये नीलेश है । हमारे कर्मचारी । दर्शनके पंडित, गणितके विद्वान् और कोशलकी वेधशालाके अध्यक्ष । तुम्हारी प्रशसा किया चाहते हैं ।” प्रजापतिने परिचय दिया ।

“एक प्रशसनीयसे अपनी प्रशसा सुन मैं कही बावली न हो जाऊँ महाराज ।”

“कदापि नहीं देवी । प्रशसा तो इच्छा-विशेषका व्यक्तीकरण है । इच्छाएँ दबकर विकार करती हैं ।” नीलेश बोला । उसके विचार डगमगा गये थे ।

नर्तकी उसे देखती रही । नेत्रोंसे श्रद्धाञ्जलि उँडेल बोली, “कल मेरा आतिथ्य स्वीकार कीजिये । कृतार्थ होऊँगी । पावन चरणोंके स्पर्शसे मेरा निवास धन्य हो उठेगा ।”

नीलेश विचारमग्न हो गया । उत्तर देना चाहता था, पर न दे पाया ।

“नीहारिके ! नीलेश कल तेरा अतिथि होगा ।” प्रजापतिने कहा । नीलेशने एक-एककर उन दोनोकी ओर देखा । वैभवका प्रभाव, सौन्दर्यका आकर्षण ।

×

×

×

गोधूलिके पश्चात् नीलेश नीहारिकाके निवास-स्थान पर पहुँचा । वह स्वागतार्थ प्रतीक्षामे खड़ी थी । सम्मान, सहृदयता एव निकटताने उसे उस सौन्दर्यका और भक्त बना दिया । नीहारिका आज नीलेशके ज्ञानको अपनी कलसे तौलना चाहती थी । इसी कारण भोजनके उपरान्त नृत्यकी व्यवस्था हुई । नीलेशकी इच्छाने हृदय गुदगुदाया । अपना स्वर्णिल सौंदर्य लिये, रत्न-आभूषणोंसे सुसज्जित पायलोंके शब्द करती, उस एकाकी कक्षमें मदिराकी मादकता-सी वह छा गयी । नीलेश देखता रहा—उसी प्रकार जैसे शैशव अपना स्थान ले लेने वाले यौवनकी क्रीडा निहारता है ।

नृत्य-समाप्तिपर नीलेशने कहा, “देवी, नूपुर तुम्हारे चरणोंसे लिपटकर अमर हुए । मुद्राएँ तुममें बँध असीम बन गयी ।”

नीहारिकाने नेत्रोंकी मूक भाषामे आभार माना । वह समीप आ बैठी । नीलेश सकुचाया, ज्ञान सहमा भाल भूमिकी ओर झुक गया ।

नीहारिकाने प्रश्न किया, ज्ञान और कलामे क्या भेद है ?

“ज्ञान मस्तिष्क का उन्माद है और कला हृदयकी पीर ।”

“इनका लक्ष्य क्या है ?”

“दोनोका लक्ष्य आनन्द है ।”

“आनन्द क्या है ?”

नीलेश रुक गया । एक क्षण वाद उसने कहा, “देवी, इसका उत्तर कुछ दिनों वाद दे सकूँगा ।”

नीलेश आज्ञा ले चल दिया । परिवाका चन्द्र कुछ खोकर नीलेशको अपनानेका प्रयत्न कर रहा था ।

×

×

×

नीलेश अनुभव कर रहा था कि उसकी इच्छाएँ बढ़ रही हैं। वह प्रतिदिन चाहता कि नीहारिकाका नृत्य देखे। बहुधा समय खोज, बहाना ढूँढ़ पहुँच जाता। नीहारिका समझ जाती। ज्ञान और कला मिल बैठते। हृदय और मस्तिष्कमे समझौता होने लगता। वृद्धकी कटी डाल-सी नीलेशकी इच्छाएँ अनेक मार्ग खोज पनपने लगी। इच्छा-पूर्ति न होनेपर उसे दुःख होता। आनन्द उसे दूर भागता दिखायी देता। वह सोचता—“मैं वही नीलेश। वही मेरा जीवन। फिर केवल इच्छाओके आधिक्यपर आनन्दकी यह न्यूनता क्यों ?”

जब हृदय इन सघर्षोंमे लय हो जाता, तब दर्शन गणितकी आड़ ले कहता—जीवनमे इच्छाओ और आनन्दका निश्चित सम्बन्ध है। इच्छाएँ बढ़कर आनन्द घटा देती हैं। नीलेश वास्तविकतासे उठ कल्पनामे खो जाता।

नीहारिका नीलेशके ज्ञानपर मुग्ध थी। नीलेश उसकी कलाका भक्त था। दोनों आराधक थे, आराध्य थे। साधक थे, साध्य थे। आराधना और साधना इच्छाओका परिणाम था।

समय समझौतेमे बीत रहा था। अचानक नीहारिकाको कुछ समयके लिए कोशल छोड़ना पड़ा। अश्रुओमें वह विदा हुई। आहोमे नीलेशने यह देखा। नीहारिकाकी उपस्थितिमे उसकी इच्छाएँ बढ़ती रही। आनन्द घटता रहा। वह एक अज्ञात वेदनाका अनुभव करने लगा। अनुसन्धान-कार्यमे उसने मन लगानेकी चेष्टा की, किन्तु असफल रहा।

उस दिन दूरदर्शक यन्त्र ग्रहकी ओर नहीं निहार रहा था। उसकी दृष्टि कहीं और थी। पुष्करको आश्चर्य हो रहा था, “स्वामी, आपसे यह भूल !”

“नहीं पुष्कर, ग्रहोका यह क्या भौंको ? मैं तो नीहारिकाओंकी तुलनामें लीन हूँ।” नीलेश वेधशालाके ऊपरी खडसे शून्यमें ताक रहा था। फिर न जाने किस मानसिक भारसे दबकर उसने नेत्र मूँद लिये।

## आनन्द

पुष्कर देख रहा था अपने प्रधान को, उसकी दशाको। ~~अचानक~~ पुष्कर चिल्ला उठा। नीलेश उस खण्डसे लुढ़ककर दूसरे खण्डपर जा गिरा था। पुष्कर घबराकर उस खण्डपर पहुँचा। अचेत नीलेशका रक्त-रजित शीश देख वह चिल्लाया। नगर-निवासी दौड़े। प्रजाको, प्रजापतिको दुःख हुआ।

राज्यवैद्यके निरीक्षणमें नीलेशका उपचार आरम्भ हुआ। दूसरे दिन सन्ध्याको नीलेशने नेत्र खोले। स्नेही सामने खड़े थे। उसने सूखे अधरो की मुसकानसे उनका आभार माना। राज्यवैद्यने कहा, “शीघ्र ही आप स्वस्थ हो जायेंगे।” स्नेहियोने उनका साथ दिया। नीलेश मुसकराकर शान्त हो गया।

प्रातः सेवकसे नीलेशने प्रश्न किया, “नीहारिका नहीं आई?”

“नहीं स्वामी। समाचार मिला है कि शीघ्र ही आयेंगी। आपकी इस दुर्घटनाका समाचार उन तक पहुँच चुका है।”

नीलेश चुप हो गया। सन्ध्याको प्रजापति भी आये। नीलेशने फिर वही प्रश्न किया। सन्तापजनक उत्तर पाकर भी उसे शान्ति न हुई। कहा, “दयामय, कामना थी कि जीवनकी समाप्तिके पूर्व उसके प्रश्नका उत्तर दे दूँ।”

नीलेश प्रतीक्षामें सासे गिन रहा था। उसकी दशा बिगड़ रही थी।

लगभग एक सप्ताह पश्चात् नीहारिका निर्भर-सी उपचारगृहमें गिरकर कराह पड़ी। नीलेशके अधरोपर मुसकानकी रेखा खिंच गई, “आ गई देवी। कामना थी तुम्हारे दर्शनोकी। चाहता था तुम्हारे प्रश्नका उत्तर देता जाऊँ।”

“ऐसा न कहो देव ! मेरी इच्छाओका क्या होगा ?” वह बिलख पड़ी।

नीलेश कुछ क्षण मौन रहा, फिर शक्ति समेट बोला, “देवी, उत्तर देने दो। विलम्ब हो रहा है। तुमने आनन्दका परिचय चाहा था न ! आनन्द एव इच्छाओका गुणनफल ही जीवन है। अथवा यो कहो कि जीवन भाज्य, इच्छाएँ भाजक और आनन्द भजनफल है। स्थायी जीवन में इच्छाओका आधिक्य आनन्दकी न्यूनताका द्योतक है। बस अब विदा दो.....”

“नहीं देव, मुझे आना दो। आज मैं उस देवालयकी पाषाण-प्रतिमा की सहृदयताकी परीक्षा लूँगी। मृत्युपर्यन्त उसके समक्ष नृत्य करूँगी। सम्भव है वह मेरी सुन ले।”

नीलेश मुसकराया। नीहारिका बावली हो देव-मन्दिरकी ओर भागी। राज्यवैद्यने औषधका पात्र उठाया और कहा, “ग्रहण करो नीलेश !”

“पूज्य, जीवनकी पूर्णतामें अवरोध उपस्थित न करो। इच्छाएँ शून्य हो चुकी हैं। उन्हे आनन्दसे मिलाकर जीवन शून्य कर लेने दो अथवा इच्छाओंसे जीवनमें भाग देकर आनन्दको अन्तर कर लेने.. .” और नीलेशके प्राण अलौकिक आनन्दकी ओर उड़ गये।

उधर देव-मन्दिरमें नीहारिकाके नूपुर देव-प्रतिमाकी सहृदयताको पुकार रहे थे। कदाचित् उनकी ध्वनि नीलेशकी चेतनाका स्पर्श करने भागी आ रही थी। मार्गमें ध्वनिने प्राणोंको पाया और उसीसे लिपटकर अनन्तकी ओर चल पड़ी।

कहते हैं, आज भी नीहारिका नृत्य कर रही है, पर उसके नूपुरोंमें ध्वनि नहीं।



## जीवन नायक

‘वीनसके पैर’ कहानी ( ‘प्रतीक’-१२ में प्रकाशित ) लिखते समय तरुण कथाकार जीवन नायकने कदाचित् यह नहीं सोचा था कि शीघ्र ही वह वीनसके हाथोंपर भी कहानी लिखेगे । इन दोनों हृदय-स्पर्शी कहानियोंको पढ उस समय यही सोचा गया था कि जीवन नायक अब कदाचित् वीनसके नेत्र, वीनसकी नासिका और वीनसके केशपर कहानियाँ लिखेगे, किन्तु पाठ्य-पुस्तकोने इस प्रतिभावान् कथाकारको कहानी-क्षेत्रसे परे खींच लिया तथा हिन्दी-कथा-साहित्य जीवन नायकसे कुछ और अच्छी कहानियाँ पानेसे वंचित रह गया ।

जवलपुरमें जन्मे और नागपुर, लखनऊमें शिक्षित जीवन नायक सम्प्रति भोपालमें अधीक्षक, पाठ्यपुस्तक और प्रकाशन है । नियमित रूपसे नहीं लिखते—कदाचित् इसलिए भी, कि पत्र-सम्पादक मॉग नहीं करते । अब तो पाठ्य-पुस्तकोकी ओर ही ध्यान अधिक है ।



## • दो हाथ

—जीवन नायक

सोने-जैसे पीले दो सँपोले फन फैलाये निश्चेष्ट पड़े हो, या धरतीपर गिरे, मुर्झाये, चमकीले पत्ते घुणाक्षर न्यायके अनुसार हाथोंके अग्रभागके आकारमे आ जमा हुए हो, या फिर किसी संगतराशकी कृतिके, कोहनीसे नीचेके दो हाथ किसी आधारके सहारे रखे हुए हो और एक-ब-एक किसीकी निगाह उनपर पड़ जाय..... !

तो एक दिन ऐसा ही हुआ । ललवानी संस एड कंपनीका मालिक बीस-बाईस वर्षका मनोहर किशोर ऐसे ही दो हाथोंको अपनी दूकानके काउंटरपर रखा देख स्तम्भित रह गया ! उसने देखा, मोमकी तरह चिकने, तीव्र जॉडिससे त्रस्त किसी बहुत ही गौराग मरीजकी त्वचाके सदृश पीले, छेनीके कलाकारकी मति-गतिके सूचक, प्रतिभावान्के उत्कृष्ट प्रयोग-जैसे दो हाथ, केवल दो हाथ-अपनी मद्धिम रोशनीमे आप ही चमक रहे थे.....

ललवानीकी दूकान इधर सिविल लाइसमे शायद सबसे बड़ी दूकान है । टॉफी और खिलौनोंसे लेकर बढ़िया विलायती तम्बाकू और वाकिग-स्टिक तक तमाम चीजे वहाँ बिका करती हैं; और जिसकी बात कह चुका हूँ वही किशोर आजकल दूकानपर बैठता है । सुबह आठ बजे घरसे चलता है तो दूकान तक रास्ते भर केले खाता आता है । कीमती कपड़ेकी गरम पतलून, उसपर जगह-जगह सिकुड़ी हुई रेशमकी कमीज, जो हमेशा पैटके बाहर लटका करती है और उसपर नेवी-ब्लू पुलोवर । सिरके बाल हमेशा बेतरतीब, बिखरे हुए, कवियोंकी तरह बढ़े हुए, पर छल्लेदार, जैसे यूनानी वीरोकी मूर्तियोंके होते हैं । किशोर लापरवाह नहीं, बेपरवाह है, खूब ही मनमौजी, मस्त । आस-पासकी चीजोंको छूकर वह उनमे

मस्तीका सचार करता जान पड़ता है। दिन-भर दूकानपर रहता है, सामान बेचकर पैसे जमा करता है, ग्राहक न होनेपर कौंचकी बड़ी-बड़ी शीशियोसे चॉकलेट निकालकर चबाया करता है और अक्सर 'महल' फिल्मका गाना बिलकुल कलाकारकी तरह गाता रहता है—'आयगा. आयगा'। पूरा गाना गाते हुए मैंने उसे नहीं सुना, पर हाँ, आप कभी उसे गाते हुए सुने तो जरूर मान लेंगे कि इन्सानके इस गलेसे 'इलीजियम' की रूमानी दुनियाके किसी अनजाने किन्नरका विरह-गान प्रस्फुटित हुआ करता है, जिसकी ध्वनि झूब जानेपर भी आपको बेचैन करती रहती है। वह एक अजब 'हॉन्टिंग ट्यून्' है जो गूँजती रहती है...। ललवानीकी दूकान कानूनी तौरपर सप्ताहमें एक दिन बन्द रहती है। सुबह आठ बजे खुलती और आठ बजे बंद जाती है। ठीक दूकानदारकी तरह वह छोकरा हिसाब-किताब मिलाता है। सिर हिला-हिलाकर तिर-तिर-तिर नोटोंका ढेर गिनता चला जाता है। फिर वस्तियाँ गुल होती है, दरवाजे बन्द होते हैं, भारी तालोमें चाबियाँ घूमती हैं और तब सुन पड़ता है... 'आयगा... आयगा'। इसके बाद लगभग ८-३० बजे इसी रास्तेपर प्रायः रोज ही तेज रफ्तारसे एक मोटर-साइकिल निकला करती है जो रातमें कोई ११, ११-३० बजे फिट्, फिट्, फिट्, करती लौट पड़ती है। इस बस्तीमें आम तौरसे लोग इस मोटर-साइकिलकी रफ्तार और आवाजको खूब पहचानते हैं। वह छोकरा कुछ है ही ऐसा। बहुत लोग उसे अकारण भी जानते हैं। लड़का शायद इस वक्त भी गुनगुनाया करता हो और मोटर-साइकिलके शोरगुलमें उसका कलनाद समा जाता हो।

चैत्र माहके पूर्वार्धकी सुनहली धूप जो सदासे पूरा-पूरा बचाव नहीं करती तो भी भली मालूम होती है, और वसन्तकी हवा जो शरीरको रोमांचित करती है फिर भी सुखदाई लगती है, ऐसे ही एक सुप्रभातमें मैदानी नदीके शान्त और स्तब्ध प्रवाहमें तैरती हुई दीपशिखाकी तरह स्थिर,

निराधार वेत्रलतिकाके समान अवसन्न, वीरानेमे खडी वेआवाद भूतोप-  
 सृष्ट इमारतकी तरह दुर्बोध, परियोंके देशकी शाहजादीकी तरह सुन्दर  
 एक लड़की, एक प्रौढ़ाके साथ ललवानीकी दूकानपर चढ़ी और उसके  
 चढ़ते ही ललवानीकी दूकानमे जैसे उजाला फैल गया। वेपभूषासे पजात्री  
 दिखनेवाली ये माता-पुत्री इस दूकानमे पहली दफा दाखिल हुईं।  
 दूकानमें आये ग्राहकोकी आइट पाकर और काउटरपर रखे हाथोके उस  
 खूबसूरत जोड़ेको देखकर लड़का ठगा-सा रह गया, सम्हल ही न सका।  
 आदतके मुताबिक, रोजकी तरह लपककर वह काउटरपर भी खड़ा नहीं  
 हुआ। कुछ देर बाद मुँह और आँखोपर हाथ फेर, होश सम्हालता हुआ,  
 शो केसके पीछेसे वह काउटरकी दूसरी बाजू आया। सामान लेकर ग्राहक  
 चले गये। पर लड़का जहाँ खड़ा था, खड़ा रहा, खड़ा ही रहा और  
 शाम हो गई। किसी प्यारी चीजके खो जानेपर मन तमाम और बातोंसे  
 खिचकर जत्र उसी एक चीजपर अटकता है तत्र इन्सान कुछ भूला-सा  
 नजर आता है। लड़केकी भी यही हालत हुई। उसकी मस्ती, उसकी  
 वेपरवाही उस क्षणसे गायब हो गई, रोजकी तरह उसका विरह-गान भी  
 नहीं सुनाई दिया।

ललवानीकी दूकान रोजकी तरह खुलती रही। छोकरा भी जाता,  
 सामान बेचता, पैसे लेता, हिसाब करता और दूकान बढाता रहा, पर  
 गाना भूल गया। वह किसी गहरे सोचमे पड गया। वे दो खूबसूरत हाथ  
 उसकी निगाहोसे ओझल न होते। हजारो लोग इस दूकानपर आते हैं  
 पर वैसे हाथ कभी नहीं देखे। खूबसूरत हाथोका जोड़ा तरह-तरहके  
 रंगोमे और अजीब-अजीब शक्लोमे उसकी आँखोके सामने नाचता रहा।  
 कभी उसे पीले-पीले साँप दीखते, कभी हाथ फैलाये संगमरमरकी विशाल  
 मूर्ति दिखाई देती, कभी मोमका पुतला दीखता और पुतलेकी शक्ल  
 मिटकर केवल दो हाथ ही रह जाते। सड़कपर चलते हुए या दूकानमे

काम करते हुए लडकेको हरदम हाथोका वही खूबसूरत जोडा तग किया करता । कभी-कभी उसे लगता उसके चारो तरफ सैकड़ो, हजारो हाथ घूम रहे हैं । कई बार ऐसा होता कि दूकानमे आनेवाले ग्राहकोके केवल हाथ ही उसे दीखते । सामान उठाते हुए, सामानको थैलियोमे रखते हुए, पैसे गिनते हुए या दाम चुकाते हुए, कभी-कभी भूतकी तरह हर वक्त पीछे लगे रहनेवाले इन हाथोसे तग आकर लडका अपनी आँखे बन्द कर-लेता पर तो भी शायद उसकी बेचैनी दूर न होती ।

कोई आठ-दस दिन बाद वही लडकी फिर दूकानपर आई । आज वह अकेली थी । लडका उस समय दूकानपर न था । सुख लाल रगके स्वेटरमे ढके हुए हाथ काउटरपर रखे लडकी प्रतीक्षा कर रही थी और दूकानके नौकर बाअदब खडे हुए थे, इतनेमे लडका आ पहुँचा । लडकी ने चार-छः दवाइयाँ माँगीं । फिर कहा .. “इलेक्जियर पैपीन और पैनि-सिलीन इजेक्शन ।” बाकी सब सामान नौकरोने लाकर हाजिर किया । लडका बोला, “इजेक्शन चुक गये ।”

फिर उन हाथोपर उसकी निगाह जम गई । बादको घनी लम्बी और खिंची हुई भौहोंके नीचे बड़ी-बड़ी और नीली आँखोसे उसकी आँखे चार हो गईं । लडकेने देखा उनमे मायूसी और बेवसीका रग गहरा होता जा रहा था ।

“कहीसे दिला दीजिये, सख्त जरूरत है, ममीको दौरा हुआ है...” लडकीके इन शब्दोने लडकेको विचारोमे खो जाने न दिया । वह अभी आसपासकी दुनियासे बेखबर होने जा रहा था, पर स्वस्थ हो गया, बोला—

“कोशिश करता हूँ, उम्मीद कम है, पता दे जाइये, भिजवा दूँगा ।”

“मेहरबानी” कहकर लडकी जानेको हुई । इसी वक्त उसे कुछ ख्याल हुआ । कहा.. “नमस्ते” । काउटरपर रखे हुए अपने हाथ क्षणभर

देखनेके बाद वह पीछे हटी। हाथ धीरे-धीरे काउटरसे खिसककर दोनों बाजुओमें लटक गये। लड़कीने धीरेसे सिर उठाया और कहा...“भाफ कीजिये, हाथ काम नहीं करते।”

सामान रिक्षेपर रखा जा चुका था। लड़की बाहर आ गई। रिक्षेवालेने सहारा दिया। वह बैठ गई, रिक्षेवाला दूकानमें आकर दाम चुका रहा था। लड़कीने पूछा...

“मिसी बाबाका मकान जानते हो?”

“हाँ हुजूर, बारह नम्बर, नई बस्ती, विलकुल आखिरी बँगला है।”

रिक्षा चला गया। लड़कीकी आँखोंके सामनेका नीला आकाश धीरे-धीरे बदलने लग गया। उसे लगा, वह किसी विशाल, गहरे नीले समुन्दरके बीच खड़ा है। जहाँ तक उसकी निगाह पहुँच पाती है वहाँ तक समुद्र-ही-समुद्र है, एकदम शान्त, न लहरे उठती है, न ज्वार आता है, न हवा सनसनाती है, चारो ओर भयावह स्तब्धता है। सन्नाटेके स्वर मौनको बुला रहे है। वह देख रहा है, अथाह जलराशिके बीचोबीच समन्दरकी सुन्दरीके दो अनुपम हाथ पानीकी नीली सतहपर धीरे-धीरे उभर रहे है, यह आसन्न प्रलयका संकेत है। अब वह डूबने लग गया है, नीचे, नीचे और नीचे.. ...

जाने किस आहटने लड़कीको चैतन्य कर दिया। वह तनकर खड़ा हुआ मानो किसीने उसे चोरी करते पकड़ लिया हो लेकिन.. बारह नम्बर, नई बस्ती। हाथ काम नहीं करते...क्यों? क्या कुछ भी नहीं करते? नमस्ते भी नहीं? क्या हुआ है इन खूबसूरत...खूबसूरत पर बेजान, विलकुल हरकत नहीं होती उनमें? ऐसी सजा खुदा किसीको न दे...

इंजेक्शन खरीदकर उस दिन लड़का स्वयं बारह नम्बर नई बस्ती जाकर दे आया। बुढ़ियाकी तबियत सुधर गई। पहले दिनकी मुलाकातके बाद लड़का वहाँ अक्सर जाने लगा। बातों-ही-बातोंमें एक दिन

उसने जान लिया कि ये लोग पंजाबी शरणार्थी हैं। प्राण लेकर भाग आये हैं। दगाइयोने बापको माँ-वेटीके सामने कत्ल किया। इन दोनोंके हाथ पीछे बाँध दिये गये थे। बापके मरनेपर माँ बेहोश हो गई थी। हाथ रहते हुए भी ये दोनों बेबस, लाचार थी। कुछ कर नहीं सकी। फिर बारी थी लडकीके छोटे भाई, ढाई सालके निर्दोष बालककी। माँ तो पहले ही होश खो बैठी थी। हाँ, वहिन देखती रही, दगाइयोने चूहेकी तरह कान पकड़कर कितने ही बार बच्चेको ऊपर-नीचे झुलाया। फिर एक लकड़ीसे पैर बाँध उसे उल्टा लटकाया। दो ने मिलकर उस नन्ही-सी जानको लकड़ीके चारों तरफ जी भरकर धुमाया।

इस नृशस कृत्यसे बच्चा अधिक देर तक नहीं लड़ सका। लडकी जरूर अपनी सख्तीसे बंधे हाथोंके बन्धनोसे लड़ती रही पर बेकार उसकी सारी ताकत हाथोंमे खिचकर समा गई तो भी दीवालसे सर टकराने और अन्तमे मुर्देकी तरह लटके रह जानेके सिवा लडकी कुछ नहीं कर सकी। बेहोशीकी हालतमे उनपर क्या कुछ बीती सो खुदा जाने। होश आनेपर माँ को दौरे आने लगे और लडकीके हाथ अजगलस्तनके समान लटक गये और बेकाम हो गये। हाथ रहते हुए भी लडकी कुछ न कर सकी, इस अफसोसने भी उन हाथोंको स्पन्दनहीन बना दिया। लड़केको ऐसा मालूम हुआ कि बीती बातोंकी याद हरी होनेपर या अत्याचारकी कहानियाँ सुनने-सुनानेपर, अथवा दुःख सुखके तीव्र आवेशमे कभी-कभी हाथोंमे एकाएक जोरसे सनसनी पैदा होती है। वे एक दूसरेके साथ जोरसे कस जाते हैं और एक-दो मिनट बाद फिर ज्योंके-त्यों गिर पड़ते हैं।

किस कदर मुसीबतमे माँ-वेटी बतनसे वापस आकर इस शहरमे रुक गईं, उन्होंने कितने फाँके किये और कितने ही अविश्वसनीय घटना-चक्रोंमे फँसकर वे जिन्दा निकल आईं और आज तक जीवित हैं। पाकिस्तानमे जमा हुआ उनका रुपया अब मिल गया है और किसी तरह जरूरतें पूरी

हो रही है। सारा हाल लडकेने जान लिया। इधर लडकेका बाराह नम्बर नई बस्तीमें आना-जाना बढ़ता गया। उधर ग्राहक उससे कहते रहे... “मॉ-वेटी जादू जानती है। छोटे बच्चोंको पकड़ लेती है। बड़ी भयानक औरते है। उनके यहाँ कोई जाता-आता नहीं। मनोरमागंजमें रहती थी, ढेले मार-मारकर लोगोंने निकाल दिया। लडकी। वह तो बिलकुल चुड़ैल है। अगरचे ये लोग रिफूजी है तो रिफूजी बस्तीमें क्यों नहीं मरते जाकर? रहतीं किस ठाटसे है, जैसे राजघरानेकी हो। तुम्हारे जैसा आदमी कैसे उनके भाँसेमें आ गया...! कौन जाने कैसे उनका खर्च चलता है और कौन उनकी मदद करता है? तुम खुद समझदार हो, अपना भला-बुरा समझते हो। उनके यहाँ जाना तो दूर उस रास्ते निकलना भी बन्द कर दो इसीमें तुम्हारी भलाई है। कहना काम हमारा, मानना न मानना तुम्हारी मर्जी।”

दूसरे कहते....

“इन सालोका क्या भरोसा, आजको रिफूजी है कलको हमारी गर्दन नापने लगे। इनकी चाल ऐसी है कि कितनोंके घर बिगाड जावेंगे। व्यापार-रोजगार इनकी वजहसे अलग चौपट हो रहा है। थोड़ी पूँजीसे धन्धा करनेवाले इन महाजनोंके मुकाबलेमें हमारी बधिया बैठ जायगी एक दिन। हूँ! मुँहमें दही जमाये क्या बैठे हो, भाई साहब?”

इधर लडकेको अपने आपसे ही फुरसत नहीं.. लडकीसे पहचान होने के बादकी घटनाओंके चित्र एकके बाद एक उसके दिमागमें मँडराते रहते. उन बेजान हाथोंमें कभी-कभी अनायास बिजली टौड जाती है। शो केसमें रखी गुडिया को वे पाना चाहते थे, पर वह उनकी पहुँचके बाहर थी। एक दिन गुडिया बिक गई।

‘फ्लैग-डे’के दिन झण्डे बेचनेवाले छोटे-छोटे स्कूली बच्चे दूकानपर आये। उस दिन भी वे हाथ बच्चोंको प्यार करनेके लिए उठे थे। बच्चे इधर-उधर दौडते फिर रहे थे, पकड़में नहीं आये। फिर दोनों हाथ गिर पड़े—

जैसे वधिकके वारसे अपराधीका सिर धडसे अलग हो जाता है, जैसे बन्दूक के छरें लगनेपर उड़ता हुआ पक्षी हठात् जमीनपर आ जाता है, जैसे विजलीका झटका आदमीको एकदम ठेल देता है... ..

और उस दिन अपने माँ-बापके साथ आये उस सुन्दर अंग्रेज बच्चेको तो उन हाथोंने पकड़ ही लिया था, लड़का दौड़कर अपने माँ-बापसे लिपट गया, वे दोनों हाथ जैसे विजलीसे चलते हों, एकाएक उठे, मनचाही वस्तु न पाकर, एक दूसरेसे लिपट रहे । फिर गिर गये, ज्योंके त्यों ।

लड़का सोचता रहा. इसी बेवसीको दुनिया जादू कहती है ? इतनी बातें सुननेपर भी जब लड़केके मुँहसे शब्द न निकला तो बोलनेवालेने उसे झकझोर डाला, गोया लड़केको उसकी खयाली दुनियासे बाहर खींच लिया । लड़का बोला—

“हाँ, जी”

ऐसे बेमेल जवाबको सुनकर लोग अक्सर झुल्ला जाते और दूकानसे उतरकर अपनी राह लेते ।

अब तो लड़केकी हर शाम बारह नम्बर नई बस्तीमें कटने लगी । माँ-बेटीसे मुलाकात होनेके बाद वह खोया-खोया-सा रहने लगा । उसके सारे काम पूर्ववत् चलते रहे, पर जो चीज बन्द हो गई वह था उसका गाना, जिसे पड़ोसी अब न सुन पाते ।

करीब दो माह बाद पता लगा लड़केने इसाई धर्म स्वीकार कर लिया है । लड़कीको भी यही करना पड़ा, और माँ के बहुत रोकनेपर भी एक दिन गिजेमे जाकर दोनों पति-पत्नी बन गये ।

हाँ, शादीके दिनकी बात है । लड़का करीब ग्यारह बजे दूकानपर आया और लोगोंने इतने दिनों बाद फिर सुना... ..“आयगा.... . आयगा...”



उस रात उनका 'हनीमून' था। मॉ, बेटी और दामाद बारह नम्बर नई बस्तीमें मेहमानोका स्वागत कर रहे थे। शहरके बाहर इस बस्तीमें मुश्किलसे पाँच ऍंग्लो-इण्डियन कुटुम्ब थे। वे ही कुछ लोग आये, बैठे, खुश हुए और लौट गये। इसके बाद बुढ़ियाको दौरा आ गया। बमुश्किल तमाम रात बारह बजे, लडका और लडकी बुढ़ियाको सुलाकर चैनसे बातोंमें लग गये...

“.. आज मैं बहुत खुश हूँ।”

“...मैं भी।”

“...मेरे हाथ बेकाम न होते तो आज मैं तुम्हें अपने हाथोंसे टाई पहनाती !”

“खैर, जाने भी दो इन बातोंको। तुम मेरे पास हो, यही मेरे लिए बहुत है। आजकी रात तुम्हें अजीब-सी नहीं लगती क्या ? मुझे लगता है आज मुझे किसीसे कोई शिकायत नहीं है। मेरा गानेको जी होता है। तुम नहीं गाती क्या ?”

“नहीं, तुम गाओ, मैं सुनूँगी।”

लडका गाता रहा। उसने लडकीके दोनों हाथ अपने दोनों कंधोंपर रख लिये और बैठा रहा। लडकी खड़ी हुई सुनती रही।

‘आयगा...आयगा...’ जिन्दगीमें पहली बार इस खुशनसीबीने उसका दामन थाम लिया था। उसके रोम-रोममें खुशी समाई थी। फिर सोती हुई दुनियामें केवल दो ही जागनेवाले, तीसरा कोई नहीं। और लडकेका जादुई कंठ, जो आज बहुत दिन बाद खुला और दूरतक गूँजता रहा।

लडका गाता रहा, लडकी सुनती रही, गीत गूँजता रहा। दुनिया सोती रही और दो हाथ, दोनों हाथ, गरदनसे दोस्ती करते रहे। फिर वे पास-पास आनेको उतावले हुए, मिलनेको बेचैन हुए, लडकेकी गरदन बीचमें

थी, वह दबने लगी । लडका खुश हुआ कि आज उन नाजुक, खूबसूरत मर्मरी हाथोंके स्पर्शका सुख कैसे सयोगसे मिल रहा है !

पर अब गरदन जोरसे दब रही थी । लडकेने गाते-ही-गाते अपने बलिष्ठ हाथोंसे उन नाजुक हाथोंको मिलनेसे रोकना चाहा, पर वे कहाँ रुके ? लडकेकी सारी ताकत भी उन दो हाथोंको रोक नहीं सकी । वे मिल गये, पर किसीका दम घोटकर ।



## मिसला मिश्र

१९५१ में लखनऊ विश्वविद्यालयसे राजनीतिमें एम० ए० कर मिसला मिश्र एक स्थानिक कॉलेजमें प्राध्यापिका नियुक्त हो गई थी। तबसे वहाँ राजनीति पढ़ाती है और वाइस-प्रिंसिपल होनेके नाते दफ्तरका काम-काज भी देखती है। “बस, और कुछ नहीं। लिखना बहुत चाहा है, लेकिन लिखा बहुत कम है, शायद इसलिए कि आदतन ईमानदार बहुत है। जिसका पूरा यकीन नहीं, वह लिखना नहीं चाहती।”

मिसलाजीका यह अनावश्यक आत्म-चेत और तीखी आत्मा-लोचना, जो उनके साहित्य-सृजनमें अवरोध बन चली है, गुणग्राही पाठकोके लिए निश्चय ही खेदका विषय होगी, क्योंकि उनकी लेखनीमें एक ऐसी सरल मानवीय संवेदना और स्पष्ट ईमानदारी है जो अनायास ही मनको आलोकित कर जाती है। साम्प्रदायिक दंगेकी पृष्ठभूमिपर पत्र-शैलीमें लिखी हुई उनकी इस खरी और मार्मिक कहानीको पाठक सहज ही विस्मृत न कर सकेंगे।

## • तीन खत

—मिसला मिश्र

[ एक ]

सलमा !

एक अरसेसे तुम्हे नहीं देखा, खबर भी नहीं मिली । जिन्दगीकी जद्दो-जहद इस हदतक पहुँच चुकी है कि अब रात-दिन इस पेटकी पड़ी रहती है । तुम्हें तो मालूम है, हम अब तीन व्यक्ति हैं—राजेन्द्र, मैं और अशोक । अशोक हमारा बच्चा है, पाँच सालका, बड़ा समझदार । कभी-कभी तो मुझे ताज्जुब होता है, यह बच्चा इतनी बुद्धि कहाँसे लाया है ? पर राजेन्द्रका दावा है, उसका खानदान ही Intelligent लोगोंका है ।

बच्चोंकी चाहना उस ऐशके युगमें तो कर ही नहीं सकती थी । पर उनके पालनेके दग, रहन-सहन, हजारों बाते थी । कितनी बड़ी-बड़ी स्कीमें थी, पर आज इस अशोकको कुछ नहीं दे पा रही हूँ । कभी-कभी दुःख होता है, हम मामूली-सी चीजे भी अपने बच्चेके लिए मुहय्या नहीं कर पाते ।

तब राजेनने हाल ही कॉलेज छोड़ा था । युद्ध छिड़ चुका था । नौकरी मिल गई, और अब हाल यह है कि तनख्वाह है, भत्ता है, पर सवेरेसे शामतक घसीटते-घसीटते बजट खतम हो जाता है । कहाँसे उसकी पढाई निकले, कहाँसे और खरचे ? अपना बचपन याद आता है, और इस अशोकका । कितना प्यारा-सा बच्चा है, और इसे जरा-जरा-सी चीजके लिए डाँट देती हूँ । बाजारमें निकलता है तो दुतरफ़ा खिलौनोंको यों ताकता है कि बरबस हँसी आ जाती है और डाँट भी दो तो खिसिया जाता है । जरा-सा बच्चा है, पर रोता नहीं । हम कलकोंके बच्चे आखिर इतना समझते हैं । मचलना तो उनका काम है । कितने अरमान हैं मेरी दोस्त,

इस अशोकको आदमी बना देनेके । और अगर यही हाल रहा तो क्या हो सकता है ? 'जिन्दगी तो एक खेल है' अहमद भाईका फिकरा याद आ जाता है । और उनके लिए वह खेल ही था । और अब भी जिन्दगी एक खेल है उनके लिए ।

आज ही जरा बाजार जाना था और बाजार, तुम जानती हो, मुश्किलसे जरूरत भर रुपया जुटा पाते हैं, बाजार जाते हैं, वह चीज मिलती नहीं और रुपया खतम हो जाता है । ऐसे हैं यह बाजार । और दिनभर हैरान होते हैं सो अलग । और उस दिन पूरे पाँच घटेकी हैरानीके बाद जब चीज दिखाई पड़ी, तो लगा पीछे भीड़में कोई बिल्कुल कन्धे तक झुक रहा है ।

मैं घूमी । यो तो आजकल इस आम भगदड़के जमानेमें सबने तह-जीबका खयाल बालाये ताक रख दिया है, पर फिर भी । घूमी तो अहमद my God ! मैं ऐसे चौकी, और आप बड़े इतमीनानसे बोले, "मैं तो दरवाजेपर ही देख रहा था, पर तुम घूमी ही नहीं ।" और मुझे सिर्फ एक ही बात सूझी, "आप मुझे पहचान गये ?" अहमद मुसकराये, "तुम्हें भूला ही कब था !" और मैं सामान लेना भूल गई । बिना लिये लौट आई । मैंने उन्हें उस दिन देखा था जब वह इंग्लैंड जा रहे थे । उसके बादसे आज देखा था, एक जौ भर भी तो नहीं बदले हैं । बातें करते रहे दुनिया भरकी, अपनी, तुम्हारी, मेरी—और सलमा, तभी आज तुम्हारी याद आ गई है । याद आते हैं वे दिन, जब हम एक थे । तुम तो आज भी बड़ी हो, कभी हम भी थे । तुम तो आज भी जमींदार हो, राजा बाबू हो । सुना है—मियाँ बड़े लीगी है । हमारी क्या, एक क्लर्ककी आदमियत ही कितनी ? पर सलमा, जिन्हे भुलाते पाँच सालका जमाना निकल गया, वे दिन अहमदने एक झटकेसे याद दिला दिये । इस जिन्दगीके रोज-नामचेके कुछ पन्ने कितने प्यारे होते हैं सलमा, जिनकी याद इन्सान अपने

सीनेमें किसी गहरे राजकी तरह छिपाये फिरता है, और फिर एक जरा-सी ठेसपर याद बिखर जाती है। अहमदने आज उस दबी यादको यो ही कुरेद दिया—सोचो तो। एक लमहेमें इतने सालोंका अन्तर मिट गया। मुझे आज भी अहमदको पाकर उतनी ही उलझन थी, उतनी ही भिन्नता। पर अहमद अब खुल गये हैं। दिन बीत गये। उस जज्बाती तूफानका दौर अब खतम हो चुका है—अब तो हम इसपर बात कर सकते हैं। कलकी-सी याद है। जो बात तुम्हारे लाख पूछनेपर भी कभी इकरार नहीं कर सकी थी वह आज मान लेती हूँ। खुद बता भी दूंगी—तब जो एक हगामा खड़ा हो गया था, अहमदको घर छोड़ना पड़ा, यह सब कैसे हो गया यह तो आज भी नहीं समझ पाती हूँ।

वह दिन याद है जब यकायक आकर एक दिन तुमने कहा था, “सुनो प्रीति, यह अहमद भाई हैं न, बड़ा गडबड कर रहे हैं।” “क्यों?” और तुमने बड़े बुजुर्गोंकी तरह सजीदा होकर कहा था, “वह किसीसे प्यार करते हैं।” मैंने भी अनजान-सी पच्चीसों बातें पूछी थी। पर आज पूछती हूँ, क्या था जो वह किसीको प्यार करने लगे। उन्होंने कोई गुनाह तो किया नहीं। प्यार जब होता है, हो ही जाता है। अगर नाप-तोल, जॉच-पड़ताल लायक ससारी बुद्धि काम ही करे तो कोई प्यार न कर, व्यापार ही क्यों न करे। और प्यार। वह शायद तब मैं भी नहीं जानती थी।

उन दिनों जब नये-नये आये थे घरके लोग, नई जगह थी, रोज घूमने चल देते थे। घर भरमें अकेली पड़ी रहती थी। टाइफायडसे हालमें ही उठी थी—कमजोर, चिड़चिड़ी। उस दिन शायद किसीकी दावत थी। पार्टीका इन्तजाम हो रहा था। बहुत बड़ा इन्तजाम था। और मैं बाहर, उपेक्षित-सी पिछले बरामदेमें यूँ ही कुर्सीपर पड़ी थी। सारे दिन बादल घिरे रहे। ऐसे दिन जाड़ोंमें कितने प्यारे लगते हैं। सनसनाती हुई हवा, घूमते हुए सूरजमुखी! और वह बारह-तेरह सालकी टाइफायडके बाद कमजोर,

चिड़चिड़ी लडकी जब लड़कर किसीकी परवाह न पाकर वरामदेमे खीजकर पड़ रही तो बरबस अपनी असमर्थतापर रुलाई आ गई। पड़ी-पड़ी रोती रही। पाँव हिलाती रही और यकायक एक फुटबाल दनसे आकर पेटमे लगा। एक क्षणको सब ऊपर-नीचे नाच गया। तिरछी होकर उलट रही कुर्सीपर। जब दुनिया घूम चुकी तो खिलाडी भी देखे। फेंकनेवाला लडका तब आकर अपनी बॉल ले गया। उतना बड़ा लडका, क्या कहती ? और तबसे अक्सर वह शायद उस कसूरके एवजमें खैर-ख़बर ले लेता, तस्वीरे ला देता, तितली पकड़ देता, और यह देना-पावना सालोमे बढ़कर किस दिन इतने पैमानेपर अदल-बदल करनेको तैयार हो गया, कोई न जान सका।

तुम्हारी चचीको अहमदका मजाक बनाते मैने भी देखा था, पर तब तक मुझे खुद पता कहाँ था ? वह तो उस दिन तूफानके बाद जब लगाँ कम्पाउण्डका कम्पाउण्ड तक हिल उठा। चलते वक्त अहमद आये। अपने कमरेमे बैठी मैं तब किसी काममे लगी थी। खिडकीपर छाया पा, 'सर उठाकर देखा अहमद थे। "मै चला जा रहा हूँ..." मै उन्हें ताकती भर रही..."तुम्हे हिन्दू-मुसलमानमे फ़र्क लगता है प्रीति ?" लेकिन मुझे तब नहीं लगता था, और अब तो वे सब दीवारे ढह ही चुकी है। मैने कहा, "नहीं !" और उस दिन पहली दफ़ा अहमदने अपनी जुबानसे कहा था, "प्रीति, तुम्हे प्यार करता हूँ, कबसे करता हूँ यह नहीं जानता। पर करता रहूँगा जिन्दगी भर, यह अच्छी तरह जानता हूँ।" और दूसरे दिन अहमद चले गये। मुझे मालूम था उनके रहते भी और उसके बाद भी। मेरे पिता और तुम्हारे अब्बामे रोज बातें होती रही। मैने खुद विलायती डाकके लिफ़ाफ़े पिताके कमरेमे धरे देखे; पर वे खत क्या हुए मुझे नहीं मालूम, हूँदनेपर भी नहीं मिले। और अहमदने मुझे लिखा ! इतनी खत-किताबत के बाद पहलूका रूख मालूम हो ही गया होगा ! मुझे खुद नहीं समझ

पडता था कि आखिर यह इन्सान-इन्सानमे भेद कैसा ? .इन्सान इन्सान को चाह न सके, प्यार न कर सके । हफ्तो उलझी रही । फिर तो यकायक हमारी किश्ती उलट गई । वह मेँभधारमे तो थी ही जैमी कि सभीकी रहती है । जिन्दगीकी उस भाग-दौडमे किसे इतना ख्याल था कि कल कैसा आयगा । और एक दिन जब जिन्दगीकी गाडी उस अपनी चिकनी सपाट राहसे चूक गई तो आज भी वहींकी वही है । और क्या बुरा है, एक हद तक खुश भी हूँ । जिन्दगी भरकी उस अनिश्चित राह—न जमीनपर पाँव, न सतहपर काबू—उस दुलमुल जिन्दगीसे हट अब हम एक ठिकाने तो आ लगे हैं । हाँ जमीन है, सो भी ककरीली, नय, वेहया । एक क्लर्ककी आद-मियत ही क्या । मगर खैर । मुझे पता था सलमा, खूब समझती थी । सोसायटीके खम्भे पोले हैं, खोखले, जमानेकी हवाका एक भोका भी इन्हे भरभरा देनेको काफी है । हजारो दफा सोचा, समझनेकी कोशिश की, पर आश्चर्य आज भी है । वह बड़े-बड़े दिमाग, वह सरगना दुनिया भरकी सोचा किये, अपनी कभी नहीं सोच पाये । तडक-भडक, नाच-रग, सैर-सपाटे, दोस्त-दावत कौन नहीं समझता था, यह बहिया मौसम भरकी है । क्लाइमेक्स आया—वह दफ्तीकी आलीशान इमारत दही भी तो शानके साथ ! हर चातमें बड़ोंकी नकल भर थी । हम मध्य-स्थितिके लोग तब भी पोले थे, आज भी हैं । मुझे ताज्जुब है किस हिम्मतपर यह ऐशका ताजिया पग-पग पर हिलता-चलता था । मिनट-मिनटकी खैर मनानी पडती थी । वह अनि-श्चितता, आये दिनका वह शशपज उनका दम क्यों नहीं घोट देता था ? और एक तहलका मचा—मॉका हार्टफेल हो गया । खबर ही ऐसी थी । पिताने खुदकशी कर ली । उनकी वह शकल, रग-रगकी ऐठन, खिचा हुआ चेहरा. उस ऐशपसन्दीका अन्जाम, एक मशहूर इल्लीनियरकी ट्रेजेडी, चन्द अखबारोंकी कटिङ्ग और वस. हमारे सर-सब्ज घासले जाँ लू-लपटमें भी फूलते-फलते थे अपनी नमी खो बैठे । एक तूफान आया, किश्ती उलट



गई । यह समयका तकाजा था । एक अल्टीमेटम—हम तुम्हे बदलनेको मजबूर हो इसके पहले तुम बदल जाओ बेहतर यही होगा, नहीं तो नेस्त-नाबूद होंगे और नेस्तनाबूद ही हुए ! आह सलमा ! अब तुम्हीं कहो—उस गुजरी कहानीमें ऐसा है भी क्या जो सहेजा जाय...तबसे सब भुलाने की कोशिश की । जीवनके उस अन्धडमें जब सब वीरान हो चुका था, जीवनके उस अनजान चौराहेपर इस राजेन्द्रने राह सुभाई । मेरे भाग्यकी प्रचण्ड-धारा जब किनारे-कगारे ध्वंस करनेपर तुली थी तो यही राजेन्द्र किनारेका वृक्ष बन साध बैठा था । तबसे यही आश्रय है सलमा । इस राजेन्द्रने मुझे क्या नहीं दिया; अब तो घर है, द्वार है, पति है और यह अशोक है—

तुम हँसोगी, यह राजेन्द्र अब तक मुझमें, अपनेमें फर्क मानता है । बरसों तक भ्रम गई नहीं । घरके खत दबाये रहता है । हमारे पुराने सस्कार अब तक उसपर हावी है । अपनेसे वह मुझे ऊँचा समझता है । यह वह घाव है जो हम दोनोंको काँचता है । काश मेरा वह जमाना कुछ न होता, राजेन्द्र मुझसे खुल सकता । अब तो इस जीवनके हम आदी है । छः साल बीत चले, पर आज भी कभी उसका व्यवहार खुल जाता है । मैं चुप रह जाती हूँ । आज ही अहमदसे बातें करते-करते देर हो गई : अहमदका इसरार था मैं उन्हे स्टेशन तक छोड़ने चली, और आधे रास्ते मुझे जैसे खयाल आया, “अहमद, मैं नहीं जाऊँगी । तुम्हारी बेगम साथ होगी । मुझे न जाने कैसी उलझन लगेगी ।” लेकिन अहमदको सब खिलवाड़ है—तुम्हारे तो भाई है, तुम्हे क्या बताना । मुझे बेवकूफ बनाने लगे—“हाँ है तो बेगम साथ, पर चलो तुम तो देखने लायक हो प्रीति, मियाँकी जान मुसीबत बना देनेवाली तुम्ही हो । उसे देखना चाहिए ।” लाचार जाना पड़ा । वहाँ कोई न था । मैं उन्हें पहुँचाकर लौट आयी । चलते-चलते बोले, “कभी आऊँगा प्रीति, तब तुम्हारे यहाँ

ठहरूँगा। हिन्दुस्तानका इतिहास लिख रहा हूँ। इस लखनऊकी जगह नये इतिहासमें भी होनी चाहिए, और मेरी दिलचस्पी इन बातोंमें तुम जानती हो, नहीं के बराबर रही है।” मैं चुप रही। देर हो रही थी। मुझे ख्याल हो रहा था, अशोक लौट आया होगा। अकेला बैठा होगा। पर घर पहुँचकर देखा—बाप-बेटे दोनों पडे हैं। मुझे सच ही बुरा लगा—देर हाँ गई थी। चुपचाप अन्दर चली गई। जल्दीसे खाना तैयार किया। अशोक लगा अहमदके बारेमें पूछने। मैं तुम्हें कह चुकी हूँ सलमा, यह अशोक इतना जिज्ञासु है कि मेरी अकल हवा हो जाती है। कहाँ तक जवाब दूँ। राजेन्द्रसे ही खूब पटती है। बराबरवालों जैसा तो बर्ताव करता है। मौज होती है तो ‘राजेन सुनो दास्त’ और नहीं तो चुपचाप भी पडा रहता। आज अहमदमें न जाने क्यों फिर उसकी दिलचस्पी जाग उठी। उसे क्या बताऊँ, मैं तय नहीं कर पाती। अपने अतीतमें सिर्फ एक ही राहत है, राज है, वह खोल देना मुझे उचित नहीं लगा। चुप रही। और राजेन्द्रका और भी बेटा मुकाबला था। राजेन्द्रके इस रूपकी कल्पना भी नहीं की थी। मैं लौटी तो चुप पडा था। मैंने समझा, यका है, सो लेने दो। पर जब पडा ही रहा, मनमें एक खटक उठी। ‘आखिर है क्या?’—मैंने आवाज दी तो चुप। और अशोक बोला, “दिक न करो भाई, राजेन बीमार है। क्यों राजेन?” मैंने सिरपर हाथ रखा, गर्म नहीं मालूम हुआ। मुझे ताज्जुब था, क्या मामला है। छुटनी तो एक तरह जानी हुई है। “क्या बात है राजेन?” मैंने हिलाया आखिर। “कौन था तुम्हारे साथ आज?” करवट बदलकर पहला सवाल राजेनने किया। ओह सलमा, तुम राजेनकी वह सूरत देखती। बेवसी कभी इतनी सजीव हो सकती है। राजेन कभी सुन्दर था ही नहीं। उसकी कुरूपता आज कितनी भयानक लग रही थी। मैंने आज तक किसीको सफाई नहीं दी और आज जरूरी था कि दूँ। नहीं तो इस कमजोर इन्सानकी हत्या होगी।

मेरा हाथ आप-से-आप हट गया। वह अब भी ताक रहा था मुझे। एक क्षण भरमे मैंने जवाब दिया, “राजेन तुम्हे मुझपर अब भी यकीन नहीं है?” और जिन्दगीमे पहली टफा राजेन खुला, “प्रीति, सवाल यकीनका नहीं है। समाजमे आज मेरी हैसियत क्या है? मैं जो कुछ हूँ, जानता हूँ। सूरत नहीं है, हैसियत नहीं है; मेरी कमजोरी कभी उतावली हो जाती है। तुम्हें क्या दे सका हूँ? मेरे पास पैसा भी नहीं है—प्रीति, अगर मैं.. . .”

“पैसा तुमसे बड़ा हो सकता है राजेन?” मैंने कहा—

“हाँ, मैं गरीब हूँ, मजबूर। और प्रीति, आज मुझे यह माननेमे शर्म नहीं आती कि मुझे भी जिन्दगीकी हविस है। यह कुत्तोकी जिन्दगी! तुम यकीन पूछती हो, मुझे खुदपर यकीन नहीं। कल मैं अभावोंमे क्या कर बैहूँ?”

उसके आँसू भर आये। मुझे जन्त करना आता है। पर जन्तकी भी हद होती है। वहाँसे उठकर कमरेमे आकर पड रही। मैंने खानेको नहीं पूछा, पीनेको नहीं पूछा, जिन्दगीकी भयानकता मेरे आगे साफ़ हो गई। इन्सान क्या पा रहा है सब खोकर। कभी-कभी जीमे एक हलचल मच जाती है; कहाँ जा रही है यह नाव, खेवैयापर भरोसा नहीं। मुझे ऐसी जगह रोना नहीं आता। जिन्दगीमे बेहयापन दिन-दिन बढ़ रहा है। आये दिनकी मुसीबतों और खटखटोने जीवनकी भावुकता सोख ली है। बाकी है सोचनेकी क्रिया, और वह जब तुम ख्याल करोगी, लगेगी कितनी भयानक है! जवान इन्सान अंगर जीवनकी निस्सारता ही सोचने लगे तो जिन्दगी बेरौनक होनेमे क्या बाकी रह जाता है। पर इन हकीकतोपर पर्दा डाल इन्हें रगिनियों मान लेनेके लिए वह अज्ञान, वह मूढता, कहाँसे लाऊँ? समझ-दारोकी भी कैसी मुसीबत है! राजेन उठ आया, मगर भाफी नहीं माँग सका। एक दिन आता है सलमा, जब भावुकता चुक जाती है, मान-मनौवल

की गुजाइश नहीं रहती, सुनने-समझने किसी चीजकी गुंजाइश नहीं रहती। बाकी रहता है एक बोझ ढोना।

“अपनी कमजोरीके लिए दुःखी हूँ प्रीति ! प्रीति, तुम उसे समझ सकती हो। तुम ही तो एक मेरा सम्बल हो। जितना ही कमजोर होता जाता हूँ उतना ही तुम्हे कसकर थामना चाहता हूँ।”

अब तुम्हीं कहो, उसे माफ करनेको क्या बचा था ? और क्या कहकर वह माफी माँगता ? और इस तिल-तिलकर घुलनेवाले मानवपर मेरा दुःख तुम क्या समझोगी ? मैं कितना रोई। अहमदके बारेमें वह सुन चुका है मुझसे ही। पर अचानक एक वक्त जब जिस्मकी तमाम कुव्वतोंसे जवाब पा वह घर लौटे, उसे उसका वेटा बतावे—उस आदमीकी याद दिलावे—जो उसका घर बसनेसे पहले, उसके और उसका घर बसानेवाली हस्तीके बीच आ चुका हो, जिससे उसे जलन न हो, हार मंजूर हो। मजबूरी सोचो सलमा, एक मिनट ! कितनी बड़ी ट्रेजेडी है ! मैंने उसे माफ कर दिया। यह तो उसने मुझे वादमे बताया, ऑफिसमें उस दिन आम नोटिस आया था तीन महीनेका, और यह नई बात नहीं है। यह तो जाना हुआ था। जब लड़ाई खतम होनेकी प्रार्थनाएँ की जाती थी तो कुछ ऐसे भी थे जो इस लगी आगमें पेटके टिक्कड सेक रहे थे। इसलिए लड़ाई खतम होनेपर सदमा भी उनको जरूरी था। और तुमसे सलमा क्या चोरी ! उस दिन छुट्टी थी, और हम कहीं जानेको तैयार खड़े थे, जब यकायक गहरे शोरके साथ साइकिलपर अखबारवाला चिल्लाता चला गया था—लड़ाई खतम हो गई। सुनकर एक मिनटको हम खुश हो गये और दूसरे क्षण राजेन फक्के चेहरेसे बोला, “मैं नहीं जाऊँगा। मेरी तबियत ठीक नहीं।” सच बात है सलमा, हमें धक्का लगा था। कितना बड़ा स्वार्थ !.. अंदर आकर फिलॉसफरोकी तरह बुझी मुसकान बिखेरकर राजेन बोला, “घोसला समेटो प्रीति, दिन बीत गये।” देखा

सलमा, उस दिन जब दुनिया खुशीके आँसू रोई, बिछुडोकी मुरादे बर आई, सियासतकी दम घोटनेवाली आब्रोहवामे जवानी-मस्ती भर गई, हम जल्लादोंसे सहमकर रह गये ।.. यह है हमारी जिंदगी । और तबसे ही यह घर, यह छोटा-सा घर, यह छोटी-सी गृहस्थी—इसका क्या होगा, यह चिन्ता सवार है । जब दुनिया भरके भत्ते मिलते थे तभी पहलीसे तीसतक सौ दफा मरकर जीते थे, तो अब क्या होगा ?.. दुनिया वही, तेजी वही, सिर्फ नौकरी नहीं होगी । सही मसला तो अब आया है । अब तक किनारोकी जंग थी, अब घरेलू है । मुझे तो कुछ सूझता नहीं । यह भी सब अहमद ही बता रहे थे । अब बैठे-ठाले आदमीको सोचनेको वक्त मिलता है तो जमीन-आसमानके कुलावे मिलते हैं । हमें तो क्या बताये चैन नहीं, आराम नहीं, और सच पूछो तो तकलीफोंका हिसाब लगानेको वक्त तक नहीं मिलता । मगर फिर भी यह खत लम्बा हो गया, इतना कि मुझे खुद ताज्जुब है । पर सात साल बाद लिख रही हूँ और तुम्हें कमसे कम पढ़नेका वक्त तो मिलेगा ही सही, पढ़ लेना । सुबह तक ख्याल न था और दोपहरमें अहमदने मिलकर तमाम सालोंका फर्क मिटा दिया । और लम्बा होते हुए भी खतमें सब हिसाब साफ है, बाकी कुछ नहीं । वस.

तुम्हें मेरा प्यार

—प्रीति

[ दो ]

नजीर मजिल,

नजर बाग,

लखनऊ,

सलमा ।

खत पाते ही तुम खुशफात उगलोगी, मुझे यह यकीन था । तभी तो सब पहले ही लिख दिया था । अब और क्या बाकी है ? रोमास ।

नहीं, अब और नहीं सूझती। तुम्हीं सोचो और तुम्हींको मुबारक हो। जिन्दगीमें आराम है और बेफिक्री, खूब खुशफात सोचो। मुझे क्या कहना है, और अहमदके लिए क्या बताऊँ। एक रूहानी प्यार, या जो कुछ कहो मुझे उनसे रहा है और रहेगा भी। कुछ बातें हैं जिन्दगीमें सलमा, जिन्हें हम भुला नहीं पाते। वह सैलाब, वह जुनून और अहमद, पर जाने दो वह बात उन दिनोंकी है जब हम जवान थे, रंगीनियों थीं, बहारे थीं, अब तो जिन्दगीमें फकत एक प्यास बाकी है—न साकी है, न शराब है, और हविस भी तो मिट गई है। अब तो महज एक कोरम पूरा करना है। जिन्दा है, इसलिए कि और कोई काम नहीं सूझता !

आजकल न जाने कैसी नहूसत छाई रहती है। एक अजीब उधेड़-धुनमें दिन कटते हैं। राजेन अजीब हैरान है। नोटिस पद्वह दिनमें खतम हो जायगा और नौकरी अब तक नजर नहीं आती। सुबहसे शाम तक भागदौड़में। रात गये घर लौटता है। मुँह दिन-दिन सूखता जाता है। कल कह रहा था, कही एक मिलमें किसी एक मेकैनिककी जरूरत है और राजेन तैयार है। अभी काम कहीं सीख लेगा और काममें लग जायगा। रात गये काला-धुध होकर लौटेगा। मुँह अँधेरे भागेगा

देखा सलमा ! क्या तेजीसे सीढियों उतर रहे हैं। कभी हम पैसेवाले थे। कभी दिमागकी कमाई खाते थे। आज हम श्रमजीवी हैं। ठीक ही है। जो होना है, होकर रहे। इंतजार क्या ? दबाव जितनी जल्दी पड़ता है, जितना गहरा पड़ता है, प्रतिक्रिया उतनी ही टिकाऊ होती है। और इस दबावकी भी कहीं न कहीं तो हद होती है।

सलमा ! पिछले खतमें तुम्हें लिखा भी था कि फिक्र सवार है 'क्या होगा ?' दिमाग ज्यादा काम नहीं करता। सोचनेकी आदत तो कभी नहीं थी। पर अब यह दिन विवश कर रहा है। कैसे एक-एक दिन करके हम

मुसीबतजदा एक हो रहे है। जमाना लाचार कर रहा है—कुछ सोचे । और तुम जानती हो, मेरा दिमाग राजनीति नहीं समझता है । ज्यादा बातें तो नहीं आती ! क्यों हुआ ? क्या हुआ ? और क्या होगा ? यह मेरी बुद्धिके बाहर है । फिर भी जिन्दा रहनेका अधिकार हमको चाहिए ही । इंसानियतका तकाजा है, ऐश-आराम मयस्सर न हो, जिन्दगी कायम रखनेको रोटी तो चाहिए ही, जब इतना भी न मिले तो इंसान क्या करे ?

मुझे कोई समझाये सलमा, ( तुम्हारा तो सियासतसे खानदानी रब्ब-जव्व है, अब भी एक लीगी नेताकी वीवी हो ) आखिर इस भुखमरीका, कगालीका भी इलाज है ? अब यह बर्दाश्तसे बाहर है । घर खाली है, बक्स खाली है, पेट खाली है, जेब खाली है, और किसीके भरनेकी उम्मीद नजर नहीं आती ।

वेकारीका राक्षस मुँह खोल चुका है । फटेहाली गज़भर फासलेसे घूर रही है । दफ्तरोंके स्याफ पतझड़के वेकार पीले पत्तोंसे भड़ रहे है, ऑफिसकी डबल-रूटीन जिनकी जिदादिली चूस चुकी है । आये दिन 'रोटी दो, कपडा दो' का शोर मचता है, मचकर रह जाता है । तगी दबाती चली आ रही है, हमारी आदमियत इस बोझसे दबी दम तोड़ रही है ....और वतनके लीडरोंको हमारी फिक्र नहीं, उन्हें अपने झगड़ोंसे फुरसत नहीं । अपनी टेक ( कितना स्वार्थ है सलमा ! ), अपनी बात रखनेके लिए यह प्यारा लहू, यह इंसानका लहू इन ककरीली सड़कोकी दरारोमे भरा-जाता है..... पैरों रोदा जाता है.....

वह कौन-सी वहशत है जो अच्छे-भले इन्सानको खूँखार बना देती है ? सदियोंसे सीखी हुई तहजीब एक लमहेमे भुलाकर इन्सानमे खुदगर्ज खूँखार इन्सान जाग उठता है । लाशें तडप उठती है । घर वीरान हो जाते है । बच्चे यतीम हो जाते है । वीव्रियाँ लावारिस हो जाती है ।

ढिलोपर पड जाते है वह गहरे नासूर जो फूटते नहीं, रिसते रहते है ।

यह दरारे, यह वह खाइयों है सलमा, जो पूरी नहीं जा सकतीं । कैसे पुरे मरने वालेकी यादे ? कैसे मुमकिन है मिट जाय उनकी तसवीर !

यही एक ख्वाजा साहब रहते है । नजमा उनकी एकलौती लडकी है । खासी सुन्दर लडकी है । उस दिन बम्बईके दगेमे बेचारीका पति मारा गया । सलमा, सलमा ! उसका दुःख, उसका विलाप मुहल्ला हिलाये देता है ।

जानती हो क्या कहती है—“हाय अब्बा, जमील मारा गया ! मैं जमीलको खोकर इस पाकिस्तानसे क्या भर पाऊँगी ।” और सलमा । हम अपने खून और जिन्दगीकी कीमतपर पालकर उन प्यारोको इस खूँरेजीके हवाले कैसे कर दे.. ...और इस पाकिस्तानसे लोगोको नाराजी क्यों है, मैं समझ नहीं पाती । बच्चे नादान रहते हैं, साथ-साथ निभ जाती है । वही जब बड़े हो जाते हैं, स्वार्थोंकी टक्कर होती है । हकोपर चोट पडती है । एका चटख जाता है ।

बुजुर्गोंका दिल गवाही नहीं देता । पर वे बच्चे तो अलग होकर रहते है । जवान लडके जब घर-द्वार लेकर अलग रहना चाहे तो उन्हें रोकना कहींकी अक्लमन्दी है । अपने पसन्दका घर, अपने पसन्दकी जिन्दगी, यह तो हरेकका हक है । उसको दवाना कहींका इन्साफ है ? मुझे ज्यादा बातें तो नहीं आती है । राजनीति जाननेको फुरसत ही कब मिली ? फिर भी इतना तो समझ पाती हूँ कि जबतक समाजके इस सदियों पुराने ढाँचेको बदला नहीं जाता नये इन्सानकी नई माँगें, नई उमंगें उसमे फिट नहीं कर सकतीं । यह तो जरूरतके मुताबिक नई चीजमे ही मिल सकती है ।

जमीनका बटवारा ही खुशहाली नहीं ला देगा । उसके लिए तो नया हिन्दुस्तान बनाना पड़ेगा और यह नया हिन्दुस्तान क्या इन पुराने दिमागोंसे हासिल होगा जिन्हें आज हम जवानोंकी



दिखाई राहपर चलनेमे एतराज है ? ज़मानेके साथ इन्सानकी जेहनियत बदलती है, सभ्यताके हरवे-हथियार बदल जाते हैं और सदियों पुराने दिमाग उस सत्यको भी नहीं मानना चाहते । वे माने या न माने, जब जरूरत होती है राह बन ही जाती है, और आज जरूरत है तो राह आप बनती जा रही है । लीडरोंको तो अपनी-अपनी है, और इस बीच हमारी हालत बढसे-बढतर होती जाती है । दम तोडने को आ पहुँची है । आज हमलोग किस तूफानसे गुजर रहे हैं, उसे न पूछो सलमा ! तुम रईस हो, रईसजादी हो । रोमान्स और हकीकतका कोई मुकाबला नहीं है ।

मेरा तुम्हारा भेद खतोसे जाहिर है । मेरी इतनी दास्तान सुननेके बाद भी मुझे बताती हो अहमद मेरे बारेमे क्या कह रहे थे । बख्शो मेरी जान । मुझे सब पता है । वह सैलाब, वह जुनून । कभी मैं भी जवान थी । दुनियाके जर्रे-जर्रेमे रोमान्स नजर आता था ..और आज मन इन्सानियत खोजता है । राशनकी दूकानपर कपड़ेकी धक्कम-धक्कामे जब कोई टकरा जाता है तो बेचारेपर तरस आ जाता है । उसकी नजरोमे रोमान्सकी खोज । वह दिन बीत गये...मैं कह रही थी...ठहरो.. देखो कोई आया है दरवाजे पर । दो मिनट, अभी...

हाँ राजेन था । इसे क्या हो रहा है सलमा ! मुझे बड़ा डर लगता है—राजेन वह लफ़्डी है जो झुकती नहीं, टूट जाती है...और इतने मासूम दिलोका आजके हिन्दुस्तानमे क्या गुजारा है । चुप पडा है । कल पूछ रहा था कितने रुपये हैं मेरे पास । तुमसे भी नहीं छिपाऊँगी.. कुल ५७।=) है । मैं इस राजेनको बहलाना चाहती हूँ, पर कैसे ? यह नहीं समझ पाती... . और आज तो कलसे यह अशोक भी बीमार है । रह-रह कर कहता है, गला जकड रहा है । न मासूम इसे भी क्या हो रहा है । हरारत तो ज्यादा नहीं है... ..

इसकी जरा-सी बीमारीपर मेरे होश बिगड जाते हैं । न जाने क्यों यह राजेनका अशोकपर हृदसे ज्यादा प्यार कभी-कभी डरा देता है । राजेन इतना बदकिस्मत क्यों है सलमा, जिसका दुनियामे मुझे और अशोकको छोड़कर कोई नहीं । एक मिनट देखो, फिर खॉस रहा है. . अशोक. अशोक...

अच्छा सलमा, फिर लिखूंगी । इधर वक्त कम मिलता है, इसलिए सोचा आज ही लिख लिया जाय, फिर जाने कब फुरसत हो ।

यह अशोक न जाने कैसा-कैसा कर रहा है । फिर सलमा, मुझे अब कुछ कहना बाकी नहीं है । तुमने अब सब जान लिया ।

फिर लिखूंगी, यह अशोक आज न जाने क्या कर रहा है जवाब देना !

सलमा मेरा प्यार ।

—प्रांति

[ तीन ]

नजीर मजिल,  
नजरबाग,  
लखनऊ

सलमा ।

कहर बरपा हुआ सलमा इस नाचीज इमारतपर, और वह ढह गई, बिना किसी शोर-गुलके । अशोक मर गया । आज दो दिनसे राजेनका भी पता नहीं है । उस रात जब तुम्हे खत लिख रही थी, हलकी हसरत थी । गलेमे खराश बता रहा था । सवेरा होते होते डिपथीरिया हो गया सलमा । पर मैं यह तब न जान सकी । राजेनकी आँखमे एक चूँद नहीं आई । आखिर वक्त जब उसे रह-रहकर ऐंठन हो रही थी उसने यकायक हाथ फैला दिये । मैं झुकी, सोचा शायद कुछ मुझसे चाहता है, पर अशोक चारों तरफ देख रहा था, राजेन झुका । अशोक गलेपर झूल गया ।

आखिरी बार (अशोक ! ) राजेन अपने दोस्तसे मिला और निर्जीव शरीर बिस्तरपर रह गया ।

जिन्दगी क्या है सलमा ! कल तक जो हममे से था आज दुनियामे उसका कोई हिसाब बाकी नहीं । लोग घर बदल देते हैं, सामान फेंक देते हैं...जो बीत गई सो बात गई...और मैं यहाँ क्या-क्या हटाऊँ ? जरेँ-जरेँमें अशोक रम रहा है । इस घरमे हमसे ज्यादा उसकी सॉस रौशन थी ।

बीमारीकी हालतमे उसकी सॉस जब घुट-घुट जाती, गलेमे खर-खर कफ खरखराता, और वह छुटपटाकर सॉसके लिए बिस्तर पर तडपता । उसके धारो आँसू वह चलते और हम असहायसे पास खड़े थे बिल्कुल लाचार. ....और हमारा बच्चा हमारे सामने तडप रहा था ।

हम उसका इलाज भी न करवा सके सलमा ! यही कलंक रह-रहकर आता है । हम उसे जिन्दगीमे कुछ न दे सके तो सलमा वह मौत भी अकेला ही भेल ले गया ।

हमारे पास कुल ५७।।=) ये और एक इजेक्शन २५) का आता है । छः इजेक्शन ! हम इतना कहाँ पाते सलमा ! मेरे पास जेवरके नाम एक छल्ला नहीं है, तुम्हे तो मालूम है. अमीरी लुट चुकी थी जब घर छोड़ा । और यह राजेन क्लर्क-पेशा, पेटकी रोटी ही नियामत थी ।-पैसेकी कीमतका आज ख्याल हुआ जब मैं अशोककी जानसे हाथ धो बैठी । आह पैसा ! मेरा अशोक पैसे-पैसेको तरस गया । मामूली खिलौने तक न दे सकी । उसके कपड़े दबा-दबाकर रखती रही और वे अब तक पड़े हैं । पहननेवालेकी ढरकार खतम हो गयी । मेरा यह बच्चा सलमा तस्वीरो वाली किताब तकको तरस गया...

खीचा पैसा उसके भी काम न आ सका । हम उसका इलाज भी न करवा सके सलमा ! राजेन पागल होकर दौड़ा । घर-घर मोंगा और

मायूस होकर लौट आया। उसका प्यारा अशोक तकलीफसे छुटपटाता था और राजेन बापका दिल लिये ब्रुत-सा खडा ताकता रहा।

दिया बुझ चुका था। घर भरपर मौतका अँधेरा छा गया था। अशोकके जिस्ममें अब भी गर्मी बाकी थी। मुझे यकीन नहीं हो रहा था। यह ख्याल कि जिसे हम प्यार करते हैं वह अब नहीं है, कितना डरावना होता है। Ah God ! what a fearful thing, to see a human soul take wing

सलमा, मौत किसीके बसकी बात नहीं। जो पैदा होता है वह मर भी जाता है। पर जो बीमार दवा भी न पा सके उसके माँ-बाप वह सटमा नहीं भूल सकते। मैं सोचती हूँ सलमा, काश हम उसकी दवा करा पाते तो वह बच ही जाता। रह-रहकर यही ख्याल मुझे बेचैन कर देता है। एक हूक-सी कलेजेमे उठती है। लगता है, पकड़ते-पकड़ते कोई चीज हाथसे निकल गई।

जरा-जरा-सी बात। उस दिन उलझ रहा था—‘मुझे बाल ले दो।’ रो-रोकर रह गया और सलमा नहो ले दी बाल। सारा बाजार घुमा, बेव-कूफ बना लौटा लाये। घर तक पूछता आया, ‘कब तक मँगा दोगी?’ कह दिया, अगले महीने ले दूँगे और अगला महीना कहाँ आया, खिलाडी पहले ही चल दिया।

राजेनका दुःख मामूली नहीं है। उसका बच्चा जरा-जरा-सी चीजको तरस गया और जिन्दगीमें ही नहीं, वह बिचारा तो कफन भी नहीं पा सका।

किसी त्योहारकी छुट्टी थी। ऑफिस बन्द थे। न परमिट मिली, न कफन। यह अशोक इस तर्गीमे यों “कज़ा ले चली चले” . . सा बीत गया ! औरोके बच्चे खाते थे, पहनते थे, वह देख-देखकर रह जाता था। अपना बचपन याद आता था। यह बदकिस्मत अशोक तर्गी और तेजीमे

ही चल दिया । और इसका चला जाना यो जिन्दगी वीरान कर जायगा यह तो उस वक्त समझ ही नहीं पडा था ।

एक गजभर सफेद पापलीनमे—जो उसीके कमीजके लिए पडी थी—उसे लपेटकर लोग जब चल दिये तो लगा कि दिलमे दरार पडती चली गई ।

मौतकी जुदाई तो रातके सन्नाटेमे, कमरेकी नहूसतमे, समझ पडी । हिमोटाइज-सा राजेन पीछे-पीछे चला गया...और उसे जब बच्चेको झुलाकर फेक देनेको कहा गया तो वह रो पडा । नहीं फेंक सका । किसी और ने फेंक दिया । मुर्दा ! जो अपना नहीं, उसका क्या मोह ?...

सलमा ! आज तीन दिन बीत गये । जिन्दगीकी घडी चार बजकर दस मिनटपर रुक गई । फिर तो आगे-पीछे सब शून्य है । दिमागमें सोचने की क्रिया जारी थी वह खतम हो गई । कुन्दे-सी पडी थी । अब लिखने बैठ गई । क्या करे, कुछ अकल काम नहीं करती ।

राजेन दूसरे दिन ही चुपकेसे कही चल दिया । दो दिन-रात पागल-सी हूँटा की, पर वह न जाने कहाँ है । कब लोटकर आई नहीं मालूम । होश आनेपर अपनेको घरपर पाया ।

यादगारोकी कब्र । यह मकान मेरा दम घोट रहा है । अकेली हूँ—बिल्कुल अकेली । दुनियामे अपना कोई नहीं । जिन्दगीकी गाडी मजिलके उस सुनसान मोड़पर आकर बिगड गई जहाँ वीरानगी और खाकके सिवा कुछ नजर नहीं आता । अब बाकी राह पूरी भी नहीं होगी । सफर पूरा करनेको दम कहाँ पाऊँगी सलमा ! वह खडहर हूँ जो भौं-भौं कर रहा है । बसनेवाले चल दिये । ढह जाना बाकी है ।

जो कभी नहीं सोचा आज उसके बिना कोई चारा नहीं । खुदकुशीको इतना बुरा क्यों बताते हैं ? जब रौनक न हो, चहल-पहल न हो, तो सुनसान ठूँठ चाहे खडा रहे, चाहे गिर जाय । दुनियामें जब कोई इस्तेमाल

न हो, तो कोई क्यों जिये ? जिन्दगी चहान-सी बोलिले ~~हहःलशि~~ लादे फिरनेकी हिम्मत चुक गई है । वेसुरा राग जिन्दगी भर अलपनेसे अच्छा है, वह लय खतम कर दिया जाय .जिन्दादिली ही जिन्दगी है, वरना दुनिया बेरौनक बनानेका हमे क्या हक है ?

मैं खुदकुशी कर ही लूँगी । यह चमन बेवक्त उजड़ गया । अब और कोई हसरत बाकी नहीं, और कौन-सी तमन्ना घर आई ? अपनेको मिटाकर भी घिसटनेके सिवा क्या मिला ? मैं राजेनसे भी बदकिस्मत हूँ—जब तक मैं और अशोक उसके आश्रित थे । राजेन यो चल देगा इसका मुझे गुमान भी न था ।

सलमा ! राजेन अशोकको जलराशिके हवाले कर लौटा तो यही आकर चुप पड़ गया । अशोककी बीमारी, उसकी मौत और बेकारीकी तबाहीमे तीन दिनसे उसे खाने तकका खयाल न था । रात हो आई थी । सरसे पाँच तक पसीनेसे भीगा जमीनपर यहीं पड़ा था । दोनो हाथोपर सिर टिकाये ऊपरको ताकता रहा । उसकी वह वहशियाना सूरत । मेरी हिम्मत नहीं पड़ रही थी । पास जाकर पूछा “क्या सोच रहे हो राजेन ?” “सोचनेको बाकी क्या है ?” उसका जवाब था । मैंने सोचा, उसे खयाल बदलना चाहिए, वरना राजेन-सा कमजोर दिल यह सदमा बरदाश्त नहीं कर सकेगा ।

धीरे-धीरे उसके सिरपर हाथ फेरा तो वह एकदम उठकर बैठ गया । बैठा रहा । फिर यकायक बोला, “प्रीति ! अशोकके बगैर मैं जिन्दा नहीं रह सकता । जिन्दगी धकेलनेमे अशोकका बड़ा हाथ था । यह अशोक मुझे जिन्दा रखे था...अब...अब क्या करूँगा ?” बेवसीकी कसक आँखो-मे उमड़ आई । मैं समझाने लायक भी न थी । एक बेहूदा-सी बात मैंने कही, “राजेन, तुम खुदको सँभालो । बच्चा तो बड़ी बात नहीं ।”

मैं आपेमें नहीं थी सलमा । चाहती थी, राजेन फूट पड़े । वरना यह आग धधक-धधककर उसे स्वाहा कर देगी । और वह पागल हो रहा था । मुझे इसका पता न था । एक ही धुन थी उसे—“मुझे बच्चा चाहिए ।”

राजेनके लिए मुझे इनकार नहीं हो सकता था सलमा ! मैं आपेमें नहीं थी । दिमागमे लकवा लग चुका था । मतलब समझनेकी ताब शायद हम दोनोंमे नहीं थी ।

उसका पसीनेसे भीगा बदन मारता जिस्म जब नजदीक आया, मुझे अपने इस नारी-शरीरपर एक भारी छी-छी अंतरमे जान पड़ी । अशोककी लाशपर मानव-निर्माण !...मैं छिटककर दूर जा पड़ी । और उसका तो दिमाग खराब हो चुका था । मैं पड़ी-पड़ी सिसकती रही । एक बेहोशी, थकान । कब सो गई, नहीं मालूम । यकायक राजेनकी चीखसे नौद उचट गई । वह भागता दरवाजे तक चला गया । मैं बैठीकी बैठी रही । वह लौटकर चौखट पकडकर खड़ा हो रहा । फिर आकर करीब बैठ गया । मुझसे बोला, “अशोक था । मैं दरवाजे तक गया । वह न जाने किवर चला गया ।”

परिस्थितिकी भयङ्करता बिजली-सी दिमागमे कौंध गई । यह राजेन पागल हो गया था ! और सलमा, जिन्दगीका सारा दुःख, अभाव, तकलीफें भयानक रूपसे आँखोंके आगे फिर गईं । मुझे रोना आया । जीवन भर कभी इतना रोना नहीं आया । और अब तो सारी जिन्दगी ही चुक गई ।

राजेनकी चेतना लौट पड़ी । बोला, “प्रीति मेरा दिमाग खराब हो गया । तुमसे अभी बच्चा माँग रहा था । पर मुझे हक क्या है ? मैंने अपना बच्चा मार डाला ! खाना, कपड़ा, दवा, मैं तो कफन भी न दे सका!”—गला भर आया । एक गहरी सोंस लेकर बोला, “मैं नालायक हूँ प्रीति । इस कमजोरीपर मुझे घर बसा तुम लोगोको घसीटनेका क्या

अधिकार था, और उसको.. ” उफ सलमा, मेरा कलेजा मुँहको आ रहा था । मेरी पीठपर हाथ रखकर बोला, “प्रीति, तुम्हें क्या दे सका ? अब तो यह अशोक मुझे खतम कर गया । मेरा दुनियासे रिश्ता टूट गया । उस असहाय बच्चेको कुछ न दे सका । तुम तो समझदार हो, तुम मुझे माफ कर देना । कुछ दे न सका, पर वह लाचारी थी ।”

बात खतम हो गई । रोई भी, जितना रोया जा सका । अब तो ऑसू भी चुक गये । बाकी है एक जलन । चुपकेसे वह कब कहीं निकल गया, नहीं मालूम । और अब मेरे पास इस जिस्मके सिवा कुछ नहीं है ।

पेटमें एक दाना नहीं, पास एक कौड़ी नहीं । भाग्य मानती नहीं हूँ । फिर भी वह जो इस हरे-भरे घरको उजाड़कर बरबादीकी खाक उड़ा गया उसके प्रति एक प्रतिहिंसा है । मेरा पति, मेरा लडका, इस तंगी और कगालीके शिकार हुए, यह घर खडहर हो गया । एक मेरा नहीं, लाखों घर यो ही तबाह हो रहे हैं । अशोक जब बीमार था, राजेन इजेक्शनके लिए सारे दिन दौड़ता फिरा, लेकिन नहीं पा सका । चोर-वाजारकी कीमत हम अदा नहीं कर सके । हमने हाथ-पैर भी जोड़े । वह दूकानदार, हमारा ही पड़ोसी, एक खासा मशहूर लीडर है । पूरा केमिकल वर्क्स चलता है उसका । और उसका टिल नहीं पिघला । सौदा सौदा ही था । हमारा बच्चा तडपता रहा । बगलके घरमें ढेरों टवा पड़ी रही । राजेनका खून खौल रहा था । दूसरा कोई वक्त होता तो वह हाथ चला बैठता । पर रह गया, और अब न जाने कहाँ है सलमा ? क्या लिखूँ, सब तो लिखा जा चुका । जिन्दगीका ड्रामा खतम हो गया । तडप-तडपकर मुझे मरना बाकी है । हम मर जाँय तो सलमा, हम गरीबोंको याद कर लिया करना । मेरी यादको तुम बची रहोगी, मुझे यकीन है । लीडरो तक मुफलिसी और मौत नहीं पहुँचती !



मेरा आखिरी प्यार सलमा—आखिरी ही है। मेरा पार्ट बुरा या भला अदा हो गया। कोई हसरत, कोई तमन्ना बाकी नहीं है। राजेन कही भी हो, मुझे यकीन है उसके पहले मैं ही चल दूँगी इस दुनियासे।

—प्रीति

सलमा !

अभी-अभी लहू-लुहान राजेनको लोग पकड़ लाये हैं। उस दवा-फरोशसे वह फौजदारी कर बैठा। बच्चेकी मौतके उस गुनहगारको राजेन माफ़ नहीं कर सका। बस.

मेरा दिमाग...मेरा दिमाग घूम रहा है...हाथ जवाब दे रहे हैं...  
मैं...मैं...मेरे...



## राधाकृष्ण प्रसाद

आरा ( बिहार ) मे जन्मे राधाकृष्ण प्रसादकी प्रारम्भिक शिक्षा बगलामे हुई । पटना विश्वविद्यालयसे एम. ए. कर आपने 'बालक' पत्रका सम्पादन किया और तदनन्तर बिहार सरकारके प्रचार विभागसे सम्बद्ध हो गये । सम्प्रति आकाशवाणीके इन्दौर केन्द्रमे ड्रामा-प्रोड्यूसर है । पर्यटन और पठन-पाठनकी ओर विशेष रुचि रखते हैं ।

वातावरणका सजीव चित्रण, सरल किंतु प्रभावपूर्ण अचूक व्यंग्य, और कहानी कहनेकी सीधी-सहज आढम्बरहीन शैली राधा-कृष्ण प्रसादकी कहानी-कलाकी प्रमुख विशेषताएँ है । आपकी छोटी सक्षिप्त और मार्मिक कहानियोको पढ़ मन एक गहरी उदासीसे भर उठता है और मनका सोया दर्द जैसे जाग उठता है । अनेक कहानियोका विभिन्न भारतीय भाषाओमे अनुवाद हो चुका है ।

सात कहानी-संग्रह ( 'देवता', 'विभेद', 'अन्तर्गकी बात', 'खरा और खोटा', 'कटे पख', 'समानान्तर रेखाये' और 'केश-ब्रह्मरका एजेण्ट' ), तीन उपन्यास ( 'आदि और अन्त', 'टूटती कडियो' और 'हे मेरे देश' ) और लगभग बीस बालोपयोगी पुस्तके प्रकाशित हो चुकी है । चीनी उपन्यास ( 'रिक्षावाला' ) का अनुवाद भी प्रकाशित हुआ है ।

## • फुलवरिया

—राधाकृष्ण प्रसाद

उदास, मटमैला वातावरण वहाँ निरन्तर छाया रहता है। गाँवपर मानो मनहूसियत बरसती है। कच्ची पगडडियों है। गर्मीमें धूल उड़ती है। बरसातमें कीचड़की ब्राद आ जाती है। यदि आप किसी कारणवश उस गाँवमें पहुँचे तो वहाँकी स्तब्धता आपके हृदयको थका देगी। बॉसके लम्बे और घने वृक्ष आपका स्वागत करेंगे और एक रहस्य भरी मर्मर आवाज आपके प्राणोको आतंकित कर देगी।

गाँवके चारो ओर गढ़हे हैं और बरसातका पानी उनमें जमकर सड़ जाता है। उस सड़े हुए, दुर्गन्धयुक्त जलपर अनेक रोगोके कीटाणु पलते हैं और ये कीटाणु रङ्ग-विरङ्गके हैं।

यहाँके निवासियोंको देखिए। मलेरियासे पीड़ित इनकी पीली आँखोंमें जीवनके प्रति एक उपेक्षाका भाव मिलेगा। एक ऐसी थकान इनके चेहरे पर है जिसे देखकर मनमें सिहरन हो उठती है।

ऐसे गाँवमें आकर शहरका कैसा भी आदमी उदास हो सकता है। फिर निरजनने तो कभी देहात देखा हो नहीं। जन्मसे ही केवल शहर देखता आया। बाप किसी ऑफिसमें किरानी थे। मरे तो सचमुच निरञ्जन को भी मार गये।

लडकपनसे ही वह उड़नछू प्रकृतिका आदमी रहा है। तीन बार मैट्रिकमें फेल हुआ। बीज-गणितके बीज पहिचाननेकी अपेक्षा फुटबॉलकी बारीकियोंसे वह अधिक परिचित रहा। फलतः परीक्षा नामक चीजसे उसकी जन्म-जात शत्रुता रही।

बूढ़े अनुभवी बापने अपनी जिन्दगीमें बहुत कोशिशों की ताकि लडका वशको न डुबो दे। निरञ्जनके और दो भाई थे जो उससे समझदार थे और जिन्होंने मैट्रिक रूपी वैतरणी पारकर वशकी किरानी-परम्पराको सजीव रखा था। एक निरञ्जन ही ऐसा हतभाग निकला जो किरानी होनेका सौभाग्य न प्राप्त कर सका। कायस्थ-परिवारके अकिञ्चन, मैट्रिक फेल लडकेको कौन ऐसा उदार श्वसुर मिलता जो अपनी लडलीको सौप धन्य मानता ? अतः निरञ्जनके हाथ पीले नहीं हो सके और इसी शोकमें उसकी बूढ़ी माँ मर गई। पिता भी थोड़ा आगा-पीछा सोचकर मर गये।

बड़े भाईके आसरे निरञ्जन आखिर कब्रतक रह सकता था ? बड़ी भौजाईका चेचकसे भरा गोरा मुँह निरञ्जनको देखकर बैलून हो जाता था और समय-असमय, परोक्ष-अपरोक्षमें जो बातें वे कहती थी उनमें श्लेष और वक्रोक्तिकी मात्रा बहुत अधिक रहती थी।

हार मानकर निरञ्जनने होमियोपैथी पढनी शुरू की। किरानी न हुआ—न सही, होमियोपैथ डॉक्टर तो हो सकता है ! और कुछ ही दिनोंमें लम्बी-चौड़ी एक डिग्री भी उनसे खरीद ली। अब वह डॉक्टर निरञ्जन था और हमेशा दवा और रोगियोंकी बातें सोचता था।

पर डॉक्टर हो जानेसे ही क्या होता ? उसके लम्बे-चौड़े साइन-बोर्ड और उधार माँगी हुई कुर्सियाँ किसी मरीजको आकर्षित करनेमें असमर्थ साबित हुईं। जब दो-तीन महीनेका दूकान ( या डिस्पेंसरी ? ) भाड़ा भी घरसे देनेकी नौबत आई तो भाई-साहबका धैर्य छूट गया। बोले—“साइन-बोर्डको किसी बढईके हाथ बेच दो निरञ्जन, और दवा सब अपने लिए रख छोड़ो। और कुछ नहीं कर सकते तो कमसे कम इतनी मेहरबानी करो कि चुपचाप जैसे थे, वैसे पड़े रहो। तुम जानते हो कि कुल मिलाकर मुझे ७६॥) महीना मिलता है। तुम्हों ये रुपये लेकर बजट बनाओ। नन्हेंकी स्कूल-फीस दो महीनेसे बाकी है और नन्हेंकी माँकी साडी. . .”

निरञ्जन सिर झुकाकर वापस लौट आया। ग्लानि और चिन्तासे उसका मन जर्जर था। चौबीस वर्षका जवान होकर भी वह कितना पगु है... कितना अपदार्थ !..

×

×

×

गाँवका नाम है फुलवरिया। यह नाम कैसे पडा, यह अनुसन्धानका एक विषय है। पर इतना सत्य है कि फूलोंकी कोई पृष्ठभूमि इस गाँवके इतिहासमें नहीं।

निरञ्जन कैसे इस गाँवमें आया, यह भी एक नाटकीय घटना है। अपने ही पेशेके एक प्रौढ़ सज्जनने उसे सलाह दी, “भले आदमी, शहरमें कहीं होमियोपैथी चलती है ? भागो यहाँसे, नहीं तो तुम्हारी दवाओमें जग लग जायगी ! जानते हो, एक दिन मैं भी तुम्हारी ही तरह नादान था। तुम तो शायद मैट्रिक तक पढे हुए हो। मैं अपर फेल हूँ। धर्मपत्नीके गहने गिरवी रखकर मैंने भी शहरमें प्रैक्टिस शुरू की थी। पर सालभर तक जव धेलेकी आमद नहीं हुई तो मेरी नींद टूटी और गाँव भाग गया। आज जानते हो, भगवान्की दयासे मेरी क्या औकात है ? तुम्हारी ही उम्रका मेरा एक बेटा एम. बी. बी. एस. में पढ रहा है। शहरमें एक दुमंजिला मकान मैंने खरीदा है . . . ”

इसी प्रौढ़ सज्जनने उसकी मदद की। दूकानका भाडा चुकता किया गया और उनकी ही सलाहसे वह घरसे तीन सौ मील दूर एक अनजान देहातमें आ धमका।

प्रारम्भके दिन तो बहुत ही दुःखदायी रहे। निपट गँवारकी जिन्दगी ! निरञ्जन सचमुच रूँआसा हो गया। अपने भाग्यपर उसे झुँझलाहट आई। यदि वह भी मैट्रिक पास कर पाता !... फिर ये दिन उसे क्यों देखनेको मिलते ?

पर धीरे-धीरे निरञ्जन अभ्यस्त हो चला । फुलवरिया गाँवका उदास, धूमिल वातावरण जैसे उसका चिर परिचित हो । उस गाँवके जीवनकी शून्यतासे जैसे उसका आश्चर्यजनक मेल हो ।

उसकी प्रैक्टिस जमने लगी । गलेमे चमड़ेका स्टेथस्कोप लगाकर गम्भीर मुद्रामे जब वह भयभीत और आतंकित चेहरेवाले मूढ़ ग्रामीणोंकी ओर देखता, तो उसके ओठोंपर एक अजीब तरहकी मुसकान दौड़ जाती ।

पता नहीं, यह उसकी ट्वाका परिणाम था या मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाका, जिसके फलस्वरूप उसके रोगी शीघ्र ही अच्छे हो जाते । निरञ्जनका नाम आस-पासके गाँवोंमे भी फैलने लगा । एक-डेढ़ महीनेकी प्रैक्टिसमे ही उसके पास इतने पैसे हो गये कि उस प्रौढ़ अथच दयालु सज्जनका कर्ज उसने चुकता किया और पच्चीस रुपयेका मनीऑर्डर भाई साहबके नाम भेजा । लौटती डाकसे वेल्डनकी तरह समय-असमय फूल उठनेवाली नन्हे की माँने आशीर्वादोकी झडी लगाते हुए पोस्टकार्डमे लिखा था कि निरञ्जन जैसे लायक लड़केसे यही उम्मीद थी ।

×

×

×

दूसरा महायुद्ध समाप्त हो गया था । भारत आजाद हो चुका था पर उसके दुर्गुण जैसे दुर्गुने हो गये थे ।

निरञ्जनने देखा—सारा फुलवरिया जैसे और भी धूमिल हाता जा रहा है । खेतांका अनाज पता नहीं कहाँ चला जाता था । पीले, दुर्बल और अज्ञानमे डूबे इन हताश ग्रामीणोंको देखकर निरञ्जनका मन जैसे बर्फ हो जाता ।

यहाँ रास-रगकी किसे फुरसत थी? सन्ध्या होनेके साथ ही मिट्टी-तेलके अभावमे सारा फुलवरिया जैसे एक शवका रूप ले लेता । यदा-कदा रग्घू साऊ या ऐसे ही दो-चार महाजन या जमींदारके कारिन्देके घरसे धुआँती लालटेनोका मटमैला प्रकाश चमक जाता ।

घर-घरमे रोगी । सन्ध्या होते ही सियारोंका कोरस-गीत शुरू हो जाता और निरञ्जन अपनी छोटी-सी लैम्पके सहारे दवाओका सूचीपत्र अन्यमनस्क होकर पढा करता । कभी-कभी भुँभुलकर सोचता—यह भी कोई ज़िन्दगी है ?...शहरमे और न सही कम-से-कम सिनेमा-हाउसके पास खडे होकर शामके समय घण्टे-दो-घण्टे लता और सुरैयाके रेकार्ड तो सुने जा सकते है । . कहाँ लताकी मीठी आवाज और कहाँ सियारोका कोरस ?....

×

×

×

ऐसी ही एक रातकी घटना है ।

उस रात उसे नीद नहीं आ रही थी । अपने भाग्यकी विडम्बनापर वह उधेड़-बुन कर रहा था । यह बात ठीक है कि उसके पास कुछ पैसे आ रहे है, और शहरका आवारा, अपदार्थ निरञ्जन आज डॉ० निरञ्जन है । पर उसके मनको शान्ति कहाँ है ? एक देहाती नौकर उसने सस्तेमे रख लिया है । कच्चा-पक्का बनाकर वह चला जाता है । पर क्या उसके दिन ऐसे ही बीतते जाँयगे ? नीरस, एकरस, शुष्क ? बजर जमीनकी तरह क्या उसकी जिन्दगीमे हरियाली नहीं आयगी ?...और तब थोड़ी सेक्सकी अनुभूति उसे बेचैन कर जाती है और वह बिछावनपर करवटे बदलता है ..

“डाक्टर बाबू !” अँधेरी रातको छेदती हुई एक भर्राती, बूढ़ी आवाज थराँकर निरञ्जनके कानोसे टकरा गई । कुछ देर तक निरञ्जन सहमा रहा । फिर दरवाजा खोल दिया । अपने टार्चके प्रकाशमे देखा—एक पचास-साठ सालकी बुढ़िया आँसू बहाती हुई ठंडमे काँप रही थी ।

रोती और काँपती बुढ़ियाने जो बातें रुक-रुककर बतलाईं उनका आशय यह था कि उसके जवान, इकलौते बेटेको आज कई रोजसे बुखार आ रहा है । इस समय उसकी हालत बहुत खराब है और बुखारमे वह मूर्च्छित पडा हुआ है । वह जातिकी दुसाधिन है और खेतोमे मेहनत मजूरी करके जीती है । घरमे ऐसी कोई मूल्यवान चीज नहीं थी जिसे बेच

कर वह डॉक्टर बाबूकी फीस जुटा सकती थी। घरमे एक पीतलकी थाली थी जिसे वह रगधू सावके यहाँ बन्धक रखकर कुछ पैसे लाई थी। वे पैसे भी पथ्य इत्यादिमे खर्च हो गये। इस समय उसका वेटा बिना दवाके मरने को है।

बुढिया निरञ्जनके पैर पकडकर कॉप रही थी। उसके शरीरकी मैली और जर्जर साडीके छिद्र उसकी दशाके परिचायक थे।

निरञ्जन अन्तमे लाचार होकर और कुछ भुँभुलाकर दु साध-पाडाकी ओर चला। एक हाथमे दवाका बक्स था, और दूसरे हाथमे टार्च। सारे गाँवपर अलकतरे-सी काली और गाढ़ी अँधियाली छाई थी। निरञ्जनका मन उस अन्धकारमे और भी खीज उठा। बिना कुछ प्रातिकी आशामे, ऐसी अँधेरी रातको घरसे बाहर निकलना एक भावुकताकी ही तो बात थी। डॉक्टर यदि भावुक हुआ तो उसका काम चला। भावुक तो कवि होते है। पता नहीं, निरञ्जनके अज्ञात मनमे यह कौन-सा कवि बैठा था जिसने उसको चलनेपर बाध्य किया।

छोटी-सी फूसकी भोपडी। बुढियाकी भोपडीके आँगनमे पहुँचकर उसने टार्चका प्रकाश धुमाया बिजलीकी गतिकी तरह एक नग्न, सॉवली युवती उठ खडी हुई और फटी टाटसे अपनी लाज छिपाती हुई ब्रीमार रोगीके पाससे हट गई।

निरञ्जनका सिर जैसे धूम गया। रोगटे खडे हो गये और हाथ कॉपने लगा।

बुढियाने दब्री आवाजमे कहा, “यह हमारी पतोहू है बाबू।”

रोगीके पास वह पहुँचा। जमीनपर एक फटा-पुराना कथा बिछा था और उसपर ककालके समान एक दम तोडता हुआ युवक पड़ा था। उसकी आँखे भयानक रूपसे धुँधली थी और वे क्रमशः पथराती जा रही



थी ! प्रकाश देखकर रोगीके ओठ फडफड़ाये—जैसे वह कुछ कहना चाहता हो !

बुढिया निरञ्जनके पैर पकडकर चीख रही थी, “डागटर बाबू, मेरा बेटा !. ”

निरञ्जन जैसे किसी भाव-समुद्रमे डूबा था । जल्दी-जल्दी एक दवा निकालकर बोला, “इसे खिला दो । फिर सुबह मेरे पास आना ।” और इसके बाद वह तेजीसे निकल आया ।

×

×

×

उस रात फिर निरञ्जनको नींद नहीं आई । यह उसके जीवनकी कैसी अनुभूति थी ! वह उस रोगीको देखते ही समझ गया था कि यह कुछ मिनटोका मेहमान है । फिर व्यर्थ ठहरकर क्यों अपना समय नष्ट करता ?..

सुबह बुढियाके बेटेकी मौतकी खबर मिली । जैसे इस खबरकी वह प्रतीक्षा कर रहा था । इस खबरने उसको उतना विचलित नहीं किया ।

पर त्रिजलीकी गतिके समान भागती हुई वह नग्न युवती, और प्रकाशको पाकर एक मरते हुए कालके ओठोकी फडफडाहट ?.

कपडेके अभावमे लज्जाका इतना वीभत्स रूप उसने कब देखा था ? और मिट्टी-तेलके अभावमे मरते हुए व्यक्तिके ओठोकी फडफडाहट ?... मरते हुए बेटेका मुँह अँधेरेमे, तेलके अभावमे माँ नहीं देख सकी होगी और अपने सुहागको छुटते हुए देखकर उस अन्धकारमें निराभरणा पत्नीने क्या सोचा होगा ?...

×

×

×

यह फुलवरिया ग्राम ।

निरञ्जनको महात्मा गाँधीकी वह उक्ति याद आ गई जिसे अपने कभीके किसी पाठ्य-ग्रन्थमे उसने पढा था—‘भारतकी आत्मा गाँवोमे बसती है !’

“तो क्या भारतकी आत्मा यही फुलवरिया जैसा ग्राम है ?”—  
निरञ्जनने माथेपर बल डालते हुए सोचा ।



## सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

उनतीस वर्षीय सर्वेश्वरदयाल सक्सेना कवि रूपमें इतने विख्यात हो चुके हैं कि अब अनेक पाठकोंको यह जानकर कदाचित् आश्चर्य हो कि वह प्रतिभाशाली कहानी-लेखक भी है। आपने बस्तीमें जन्म लिया। प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा भी वहीं हुई। अनन्तर अध्ययनार्थ बाया बनारस, प्रयाग पहुँचे। एम० ए० करनेके बाद पाँच वर्ष तक स्थानिक ए० जी० कार्यालयमें क्लर्कों की, फिर ओल इंडिया रेडियोके समाचार-विभागमें नियुक्त होकर दिल्ली पहुँचे। तबसे स्थूल रूपेण वहीं हैं—मन तो त्रिवेणी-तीर ही छोड़ आये हैं।

प्रारम्भमें कविताएँ लिखी, फिर कहानियाँ, अनन्तर फिर कविताओका दौर शुरू हुआ। अब लघु-उपन्यासोंकी ओर प्रवृत्त हो रहे हैं। 'निकष-१' में प्रकाशित उपन्यासिका 'सोया हुआ जल' की बहुत चर्चा रही। अंग्रेजीमें भी अनुवाद हुआ। क्या कविता, क्या कहानी—हरेकमें विद्रोह-सूचक विषय-वस्तुके दर्शन होते हैं।

## ● कमला मर गई

—सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

“सुना है कमला मर गई।” मॉने अपने उस लम्बे-चौड़े खतमे, जिसमें उसने तमाम इधर-उधरकी बातें लिखी हैं, एक कोनेमें यह भी लिख दिया है। जैसे इसके लिखनेकी उसने कोई जरूरत न समझी हो, और पता नहीं कैसे यह लाइन उसकी कलमसे निकल पड़ी हो। आकाशके अनन्त नक्षत्रोंके बीच जैसे किसी तारेके टूटनेपर कोई कह पड़े “देखा नहीं तुमने, अभी एक तारा टूटा था” और फिर अपने काममें लग जाय। एक बात थी जो सूचनाके रूपमें निकल पड़ी। उसके पीछे कोई विचार, कोई गहरी अनुभूति नहीं, केवल एक सूचना—सूचनामात्र।

मैंने यह पक्ति पढ़ी। कई बार पढ़ी। कई ढगसे पढ़ी, विभिन्न स्वरा-घात दे देकर पढ़ी। संभव है कोई दर्द, कोई हल्की सहानुभूति इसके पीछे मिल ही जाय, पर लगता है सब निरर्थक है। इस पक्तिके पड़े रहनेमें या निकाल देनेमें खतका कहीं कुछ बनता-बिगड़ता नहीं, वह अपनेमें पूर्ण है। और मेरी जिन्दगी भी है, ठीक इस पत्रकी तरह। कमलाका नाम कहाँ किस कोनेमें था बहुत आँखें गड़ाकर देखनेपर, मस्तिष्कपर जोर डालनेपर ही पता लगता है, उसके ‘रहने’ ने इस लम्बे चौड़े जीवनपर कहीं कोई प्रभाव नहीं डाला और आज उसके ‘न रहने’ ने कहीं कुछ ऐसा नहीं किया कि उसकी कुछ कमी खटके। लेकिन कमला ‘मर गई’। यद्यपि यह ‘मर जाना’ शब्द मैं दिन भरमें सैकड़ों बार सुनता हूँ पर कमलाके साथ इस ‘मर जाने’ का सम्बन्ध कुछ अजीब लगता है। लगता है मर गई तो कोई बात नहीं, लेकिन अगर न मरती तो अच्छा था। यही औरोंमें और कमलामें मेरे लिए

भेद है। वह जिन्दा थी, इस दुनियामे रहकर भी वह मेरे लिए नहीं थी, लेकिन आज मर जानेपर जैसे वह मेरे लिए कुछ हो गई हो। जबतक वह जिन्दा थी मैंने कभी उसके लिए कुछ नहीं सोचा, लेकिन आज जब वह मर गई है, मैं उसके लिए कुछ सोच रहा हूँ। उसकी जिन्दगीने तो नहीं, लगता है उसकी मौतने कही थोड़ा बहुत उसको मुझसे बाँध दिया हो।

एक घना कोहरा है मेरी आँखोंके आगे, जिसमें मैं उससे सम्बन्धित स्मृतियाँ टटोल रहा हूँ। एक घटना पकड़मे आ रही है। मुझे आश्चर्य है कि यह घटना आजतक मुझे याद क्यों है? आजसे लगभग बारह वर्ष पूर्वकी बात है जब मैं नौ या दस वर्षका रहा हूँगा, कमलाका परिवार मेरा पड़ोसी था। मेरे घरसे लगभग दो फर्लाङ्गपर उसका घर था। उसकी माँ और मेरी माँमे बहुत पटती थी और अक्सर वे लोग एक-दूसरेके यहाँ आया-जाया करती थी। यही कारण हमारे-उसके सम्पर्कमे आनेका था। यूँ बच्चोंका सम्पर्क परिवारकी अपेक्षा अधिक शीघ्र और गहरा हो जाता है, फिर वह तो मेरी समवयस्क भी थी। खेल-कूदमे हम लोगोको बहुधा एक-दूसरेकी जरूरत पड़ती थी। मैं स्वभावसे ही गम्भीर था और जितना ही मैं गम्भीर था उतनी ही वह चंचल थी। शामका समय था। मेरा मकान बहुत छोटा, खपरैलका था और वह भी एक गलीमे। इसीलिए प्रकाश जल्दी विदा ले लेता था। मैं बैठा पढ़ रहा था। मेरा शिक्षक कोयलेसे भी अधिक काला था अतः अँधेरा छाते ही मैं लालटेनकी प्रतीक्षा करने लगता था क्योंकि मुझे उसे देखकर डर लगने लगता था। उस अँधेरेमे उसके काले-काले चेहरेमे उसके सफेद दाँत-रहरहकर चमक उठते थे, जब वह मुझे हिसाब लगाते समय कही गुणा-भागमे गलती करनेपर डाँटता था। उस समय मुझसे जरूर गलती होती थी। और साधारण गलतियोंपर जब वह मेरे कान पकड़कर चिल्लाता था तब मैं आँखें बन्दकर चीख उठता था, दर्दसे कम लेकिन माँ द्वारा सुनाई हुई राक्षसोंकी कहानी याद करके अधिक।

ऐसे अवसरोपर मैं हिसाब भूलकर भगवान्की याद करने लगता था। उस-  
दिन ऐसा ही अवसर था जब मैं भगवान्को याद कर रहा था। वह मेरे  
कान ऐंठ रहा था और कमरेमें अँधेरा छा गया था। तभी कमलाके पिता  
आये थे। उन्होंने कहा, “मास्टर साहब, जरा इसे दो मिनटकी छुट्टी तो दे  
दीजिए।” मैं प्रसन्न हो उठा, यह सोचकर कि भगवान्ने मेरी पुकार सुन  
ली। लेकिन मैं ज्यों ही कमरेके बाहर प्रकाशमें आया, उनका चेहरा देखकर  
काँप उठा क्योंकि वह क्रोधसे तमतमा रहा था। मैं बहुत डर गया और  
खड़ा होकर शायद सजाकी प्रतीक्षामें अपराधी-सा उनकी ओर देखने लगा,  
मुझे रुकते देखकर वे बड़े कड़े स्वरमें बोले—“आइये आइये, रुक क्यों  
गये?” और तेजीसे चल पड़े एक ओर गलीमें, जिसमें उनका घर था।  
कुछ तो डरसे और कुछ छोटा होनेके कारण मैं पिछड़ जाता था। लेकिन  
उनकी निगाह घूमते ही मैं दौड़कर उनका साथ पकड़ लेता था। रास्ते भर  
वे मुझसे कुछ नहीं बोले, लेकिन वह दो फर्लाङ्गका रास्ता मेरे लिए कितना  
कष्टदायी रहा होगा, इसका अनुभव इसीसे किया जा सकता है कि वह आज  
तक मुझे याद है। उस गलीमें जिसमें अँधेरा उमड़ रहा था और मच्छर  
सूँ-सूँ कर रहे थे। मैं कितनी बेचैनी लिये भाग रहा था, यह मैं आज भी  
नहीं भूलता। सोचता था, कहीं कमलाने शिकायत तो नहीं कर दी है।  
कैसी शिकायत करेगी वह? मैंने उसे मारा तो है नहीं। फिर इधर मुझसे  
उससे झगड़ा भी तो नहीं हुआ। कभी सोचता था, शायद उसे कहीं चोट  
लग गई हो और उसने खुद बचनेके लिए मेरा नाम लगा दिया हो। कभी  
सोचता, हो सकता है उससे कुछ नुकसान हो गया हो, कोई चीज टूट गई  
हो, कोई चीज खो गई हो या कोई चीज चुराकर खा ली हो और खुद सजासे  
बचनेके लिए उसने मेरा नाम लगा दिया हो। बस इतनी ही मेरी उस  
समयकी मानसिक परिधि थी। इसके आगे मैं नहीं सोच सकता था। परेशान  
और डरा हुआ, जब मैं मकानमें पहुँचा तो मैंने देखा, मकानके बड़े आँगनमें

चारपाईपर उसकी माँ बैठी पानदान बन्द कर रही हैं। एक पतली छड़ी पासमें रखी है। उसके हाथ बंधे हैं और वह जोर-जोरसे सिसकियाँ भर रही है जैसे उसने बहुत मार खाई हो। उस समय उसे देखकर मुझे तरस नहीं आया, बल्कि मैं और डर गया। उसके पिताने कहा—“लो, इससे पूछ लो।”

माँने बड़े इतमीनानसे कहा, “तुम्हीं न पूछ लो।”

“मैं क्यों पूछूँ? तुम्हीं अपनी बिटियाकी बहुत तरफदारी लेती हो। तुम्हीं पूछो न!” इतना कहकर वे तेजीसे घूमने लगे। थोड़ी देरके लिए सन्नाटा छा गया। सब चुप थे। केवल कमला सिसकियाँ भर रही थी। कोनेका अमरूदका पेड़, आँगनकी नीची-नीची दीवारे, अँधेरेसे भरा हुआ बरामदा, पिंजड़ेमें टँगा हुआ तोता सब मेरी तरह सहमे-सहमे नज़र आ रहे थे। मैंने कई बार उसकी ओर आँख उठाई लेकिन वह आँखें नीची किये रोती ही जा रही थी। उस खामोशीसे मेरा डर बढ़ता जा रहा था। मेरी टाँगें काँप रही थी। आखिरकार उसकी माँ बोली, बड़े प्यारसे—“बेटा, तू कल यहाँ आया था। सच-सच बोलना!” पता नहीं क्यों मेरे मुँहसे आवाज नहीं निकली। वे फिर बोलीं—“जब हम और तारा तेरे घर गये थे, तब तुम और कमला साकल खोलकर चुपचाप मकानमें आये थे। झूठ मत बोलना, महरिनने सब देख लिया है। वह बता रही थी!”

मैंने कहा, “जी हाँ।”

उनके बाप बोले, “तुमसे किसने कहा था आनेके लिए” उनकी आवाज बहुत कड़ी थी। धबराकर छूटते ही मैंने जवाब दिया, “कमलाने” क्यों? यह मैं आज तक नहीं समझ पाया। शायद मेरे दिलमें डर रहा हो कि कहीं मेरे ऊपर आफत न आ जाय। उसके पिता मेरा उत्तर सुनकर जोरसे चिल्लाये—

“देख ली अपनी लड़कीकी करतूते !” और उसकी ओर घूर-घूरकर तेजीसे घूमने लगे ।

माँ बोली, “क्यों बुला लाई थी ?”

मैंने कहा, “यूँ ही खेलने ।”

उन्होंने फिर पूछा, “क्या खेलने ?”

मैंने फौरन जवाब दिया, “घरौदा ।” क्योंकि यह दोनों बातें ही सही थीं । दीवाली समीप थी । हम लोग घरौदे बनाते थे । मैं हमेशा कागज, चमकीली पन्नी और दफ्ती आदिका घरौदा बनाता था । मेरे पिताकी दूकान पर अक्सर शीशेकी पैकिंगमे चीड़के बक्स आते थे, जिन्हें वे एकके ऊपर एक रखकर कीले जड़कर आलमारी-सी बना देते थे । सामने झालर, दफ्तीके घर, नीले लाल कागजोंकी फूलपत्तियाँ, मुनहरी रुपहली पन्नियोंके सिंहासन आदि । और इस प्रकार मेरा घरौदा सजता था । माता-पिता भी थोड़ा बहुत हाथ बँटा देते थे । दीवाली खत्म होनेके बाद खिलौने निकाल दिये जाते थे और हम इनमे किताबें रखते थे । कमलाने भी घरौदा बनाया था लेकिन मिट्टीका । दो कोठेका घरौदा था उसका जो दालानमें एक कोने मे बना था । लम्बे-लम्बे ईंटे रखकर उसने दीवाल बना ली थी । उसपर मिट्टी चढ़ा चूनाकारी भी हो गई थी । बीच-बीचमे गेरू घोलकर उसने फूल-पत्तियाँ बनाई थीं । चौद-सूरज-तारे आदि घरौदेके ऊपर दीवाल-रूपी आकाशमे बने थे । उस दिन मेरे घर पता नहीं क्या था । तमाम औरतें आई थीं । कमला, उसकी बड़ी बहन और माँ भी आई थीं । सब लोग जब अपने काममें लगे थे । मैं कमलाको अपना घरौदा दिखा रहा था और समझा रहा था, कैसे उसमे पीतलकी घटी लगेगी, वह जब बजेगी तब भगवान्‌के खानेका समय होगा । भीतर कहाँ दीया जलेगा और कब ज्यादा रात हो जानेपर भगवान्‌ सोयेगे । कहाँ लक्ष्मी जी सोयेगी, कहाँ गणेशजी सोयेगे । कौन-सा तकिया-चादर लक्ष्मीजीका है, और कौन-सा



गणेशजीका आदि-आदि । मेरे घरौदेको देख-देख उसके मनमें अपना घरौदा भी दिखलानेकी उत्कण्ठा बढ रही थी । उसके घरौदेके लिए जव मिट्टी और गोबरका ढेर पडा था तब मैंने देखा था । उसके बादसे मैं उसके घर नहीं गया था । स्कूलके बाद घरका काम करना पड़ता था । नौकर था नहीं । गली पार करके ही बाजार था, अतः सुबह-शाम हल्दी, धनियाँ, नमक, कड़ुआ तेल, तरकारी आदि जो कम पड़ता था, लेने जाना पड़ता था । दुकाने परिचित थीं, ले आता था । शामको मास्टर, और खाली समय घरौदेमें जुटते थे । ऊपरसे माता-पिता कड़ी निगरानी रखते थे । घरसे बाहर निकलने नहीं देते थे । उनका खयाल था इधर-उधरके लडकों के साथ खेलकर मैं खराब हो जाऊँगा; गाली सीख जाऊँगा इत्यादि । खैर, मैं कमलाका घरौदा नहीं देख सका था । उसने कहा, “चलो मेरा घरौदा देख आओ । तुमसे तो अच्छा नहीं है, लेकिन मेरे गणेशजी तुम्हारेसे बहुत अच्छे हैं ।” मैंने कहा, “चल” ।

और हम लोग किसी तरह साकल खोल घरमें घुस गये थे । घरौदेके सामनेकी चहारदीवारीमें एक बोरा बिछा था, जिसपर उसने अपने माँकी कोई फटी धोती डाल ली थी । उसपर हम लोग बैठे थे और मैं उसके गणेश जीको देख-देखकर हँस रहा था । कह रहा था, “गणेश है या घोघामल, तोट निकली है उसकी” । और उसकी मिट्टीकी घंटी बजा मैंने कुछ संध्याके मंत्र पढ़े जो मुझे सात वर्षकी उम्रमें ही रटा दिये गये थे । माता-पिता आर्यसमाजी थे, वैदिक संध्या पूरी-पूरी रटा दी थी और मैं एक ईश्वर भक्तकी तरह कड़े नियमसे छोटी घंटीमें पानी रख पूजा करता था और उसके बाद दरवाज़ा खुला देख महारिन काम करने आई थी और हम लोग उठकर चले गये थे । कुल इतनी ही बात थी । लेकिन उनके पिता मेरा “घरौदा,” उत्तर सुनकर जोरसे चिल्लाये, “वह सब मैं जानता हूँ ।” और फिर अपनी पत्नीसे बोले—

“यह तो मैं पहले ही जानता था। यह सब उसकी ही शरारत है, अभी दस वर्षों में ही उसके ये हाल हैं। बदमाश, चुड़ैल कहीं की। टोंग तोड़ दो उसकी जो यह कलसे घरसे बाहर निकले।” उसकी माँ कुछ नहीं बोली, केवल मुँहसे इतना कहा, “जाओ”। मैं मुक्ति पाये पछीकी तरह भागा। एक लम्बा दलान पड़ता था दरवाजे तक पहुँचने में। जब मैं दरवाजे तक पहुँचा तो कमलाके चीखकर रोनेकी आवाज सुनाई दी। मैं रुक गया। मैंने उसके गालपर पड़ी हुई जोरकी चपतकी आवाज सुनी और उसके बाद उसके पिताकी जोरसे गरज, “मैं पूछता हूँ आखिर कोनेमें छिपी घरोदोंमें बैठी उसके साथ क्या कर रही थी?” इतना सुनकर मैं चला गया। मैं उस समय यह न समझ सका था कि आखिर हमने क्या गुनाह किया था, उनका क्या मतलब था। पर आज बात समझमें आती है और उनकी बेवकूफीपर तरस भी आता है। उसके बाद लगभग दस दिन बाद मेरी कमलाकी मुलाकात हुई, वह बहुत गंभीर थी। उसकी चंचलता पता नहीं कहाँ उड़ गई थी। वह माँके पास अपनी बड़ी बहनके साथ कुछ लेने आई थी। मेरे कमरेमें भी वह आई। मैं नई-नई कापियो पर कागज़ चबा रहा था। मेरे पास वह खड़ी रही चुपचाप खामोश। मैं भी चुपचाप था। यद्यपि उसे देखकर दिल उछल रहा था। उसने पूछा—

“तुम्हें तो नहीं मारा बाबूजी ने।”

मैंने कहा, “नहीं”

कुछ देर रुककर मैंने फिर पूछा—

“तुम्हें मारा क्यों था कमला?”

वह बोली—“पता नहीं क्यों? कहते थे लड़कोंके साथ अकेलेमें नहीं खेलना चाहिए”। फिर वह चली गई। मैंने उस दिन अपनी माँसे पूछा। उसने भी कहा—“लड़के लड़कियोंके साथ नहीं खेलते” और तबसे लड़कियोंके साथ खेलते समय मैं सोचता, यह बुरा है और अक्सर अपने साथ

खेलने वाली लड़कियोंसे मैं कह देता, “मैं लड़का हूँ, तुम्हारे साथ नहीं खेलूँगा।”

उसके बाद फिर कमलासे मुलाकात नहीं हुई। शायद वे लोग मकान छोड़कर किसी दूसरी तहसीलमें चले गये थे। बचपनके दिनोंमें साथी बनते और छूटते देर नहीं लगती। न जाने कितने साथी बनते हैं, न जाने कितने छूट जाते हैं; भविष्यमें उसका कोई लेखा-जोखा हम नहीं रख पाते। फिर और नये-नये साथी बने, लेकिन कोई ऐसा साथी नहीं बना जो स्मृति रूपमें भी मेरे मस्तिष्कमें जिन्दा रहता। इसका कारण मेरी गंभीर प्रकृति भी। खेलकूदसे मुझे विशेष शौक नहीं था, फिर ऐसे लड़कोंके और कम साथी होते भी हैं जो खेल-कूदमें भाग न लेते हो। चार-पाँच साल तक फिर कमलाका कोई पता न रहा। उसके बाद जब मैं ‘नाइन्थ क्लास’में था, कोई वकील थे उनके यहाँ एक शादी पड़ी। मुझे भी माँके साथ जाना पड़ा। माँने बताया, कमला और उसकी माँ भी आई हैं। लड़केकी शादी थी। बारात कहीं बाहर गई थी। घरपर रात-रात भर औरते गाती बजाती थी। मैं बाहर लड़कोंमें बैठता था।

किसी कामसे मैं माँके पास एक क्षणको भीतर गया। मैंने देखा तमाम औरते बैठी हैं और उनके बीचमें कमला नाच रही है। मुझे आज भी उसका वह रूप नहीं भूलता। गौरवर्ण अत्यन्त सुन्दर, हँसमुख सूरत और गजबका श्रृंगार। उसे देखकर मैं फौरन खिसक गया। एक लड़की जब नाच रही हो तब वहाँ खड़े होकर देखना मेरे संस्कारके विरुद्ध था। मैं कमरेके बाहर निकल आया। यद्यपि मेरा जी कमलाका नृत्य देखनेको करता था। इसीलिए कुछ देर दरवाज़ोंकी दरारको देखता रहा। उस समयकी दृष्टि आलोचनाकी नहीं प्रशंसाकी थी। लेकिन मजबूरीने मुझे वह नाच न देखने दिया। यह सोचकर कि लोग देखेंगे तो क्या कहेंगे? और फिर लुकछिपकर नाच देखते हुए मैं चला आया। अपनेको

कितना दबाया था मैंने, यह आज महसूस हो रहा है। दूसरे दिन माँ ने कहा—

“कमला तुझे पूछ रही थी।”

मैं खामोश रहा। इसका जवाब ही क्या हो सकता है। वे फिर बोलीं, “सुना है तूने, कमला नाचती बहुत अच्छा है, पता नहीं उस देहातमे रहकर उसने यह सब कहाँसे सीखा है।” कुछ रुककर बोली—

“गाती भी बहुत अच्छा है। मगर.. बड़ी बेहया हो गई है। शरम तो उसमे है ही नहीं। मैंने तो उसकी माँसे कह दिया, नाचना-गाना बुरा नहीं, पर ज्यादा मत उकसाओ नहीं तो बिगड़ जायगी।”

इसके बाद फिर पाँच साल तक कमला नहीं मिली। इन पाँच वर्षों मे मेरी जिन्दगी बिलकुल ही बदल गई। मैं क्यासे क्या हो गया, इसका अनुमान भी लगाना कठिन है। जिन्दगीके नये-नये परदे खुले, नई-नई चीजे आईं, उनका आकर्षण इतना प्रबल था कि मेरे हृदयमे कमलाका रहा-सहा अस्तित्व भी समाप्त हो गया। एक घटना याद आ रही है। मैं उस शहरमे गया हुआ था जहाँ कमलाके पिता बदलकर आ गये थे। उनके विभागमे हर दूसरे-तीसरे वर्ष बदली हुआ करती थी। मैं अपने चाचाके यहाँ ठहरा था। एक दिन साँझके समय उन्होंने कहा—“आओ चलो घूम आये!”

मैंने कहा, “कहाँ जायेंगे?”

वे बोले, “ब्रजकिशोरके यहाँ”

“कौन ब्रजकिशोर?” मैं कुछ सोचता हुआ बोला।

“तेरे घरके पड़ोसमे वे बहुत दिन रहे है; तू नहीं जानता।” उन्होंने आश्चर्यसे कहा।

मुझे याद आ गया ब्रजकिशोर कमलाके पिताका नाम है।

मैंने कहा, “कितनी दूर है उनका घर?”

उन्होंने कहा, “दो मील ।”

मैंने कहा था, “आप हो आइये । दो मील जानेकी मेरी हिम्मत नहीं । दो फर्लांग होता तो सोचता ।”

आज मैं सोचता हूँ, कमलाके लिए कुछ दूर चलने तककी तकलीफ मैं नहीं उठा सकता था । इतना भी स्नेह उसके लिए मेरे दिलमें नहीं था जब कि बेकारमे न जाने कितना इधर-उधर घूमा करता था । चाचा चले गये और मैं पड़ा-पड़ा ग्रामोफोन पर पिटे हुए रेकार्ड बजाता रहा । जैसे कमलाकी मुलाकातसे उन्हें बजाना ज्यादा कीमती हो ।

दो महीने बाद मुझे फिर किन्हीं छुट्टियाँमें चाचाके पास जाना पड़ा । किसी बातके अवसरपर वे कहने लगे ।

“उस बार तेरा ज़िक्र मैंने ब्रजकिशोरके यहाँ किया था । मैंने बताया राजन आया है, पर कुछ थका हुआ था इसीलिए नहीं आया । वे लोग तो कुछ नहीं बोले । लेकिन उनकी लड़की कमला है न, वह जैसे तेरे न जाने से कुछ चिढ़ी थी, कह रही थी—

“होँ साहब बड़े आदमी है । पैर न घिस जाते इतनी दूर तक आते हुए । अगर वह कल रहें तो उनको आप अवश्य भेज दीजियेगा, नहीं तो जब फिर आये तब कहिएगा ‘कमला ने बुलाया है,’ अगर इस पर भी न आये तो मुझे इत्तला कीजियेगा मैं खुद आऊँगी । यह क्या इन्सानियत है कि हजार बार वह यहाँ आ चुके,लेकिन यहाँ एक बार भी नहीं आये । जैसे यह उनका घर ही न हो । हम लोगो से उन्हें कोई मतलब ही न हो” चाचा इतना कह कर खामोश हो गये । और मैं सोच रहा था कितनी आत्मीयता है इस सदेश मे । तभी चाचा चाची से बोले, “बड़ी मुँहफट लड़की है, ऐसी बातूनी लड़की-तो मैंने कहीं देखी नहीं । काफी इण्टेलीजेण्ट भी है ।”

चाची बोलीं, “जो भी हो। मैंने तो उसकी बहुत बदनामी सुनी है। तमाम कालेजके लड़के उसके पीछे पड़े रहते हैं। उसकी माँ कह रही थी ‘बड़ी आफत है इस लड़कीके मारे। कहीं शादी कर देती तो छुटकारा मिलता। पर इनके बाप घर बैठे लड़का पाना चाहते हैं।”

चाचा बोले, “यहाँ मिस्टर ब्रजकिशोरकी गलती है। क्यों उसे इधर-उधर कान्फ्रेन्स वगैरह में नाचने-गाने जाने देते है? जमाना नाजुक है, लड़कियोंको तनिक भी आजादी नहीं देनी चाहिए।”

चाची बोली, “वे विचारे तो नहीं चाहते पर कमलाके आगे किसीकी चलती नहीं।”

“लड़कीके आगे माँ-बापकी न चले।” चाचा हँसने लगे। चाची बोलीं, “बात तो कुछ ऐसी ही है। वह बहस करने लगती है, माँ-बाप कोई जवाब नहीं दे पाते। फिर जवान लड़कीपर सख्ती भी तो नहीं की जा सकती।”

मैंने चाचा-चाचीकी ये बातें सुनीं और इसे सुनकर कमलाके प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ गई। क्योंकि मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि इस-समाजमें एक बहुत बड़ा दल ऐसा है जिसका काम ही कुमारी लड़कियोंको बदनाम करना होता है। मुझे हर ऐसे आदमीसे नफरत है जो किसी लड़कीके बारेमें बात करते समय उसके चरित्रपर आक्षेप करता है। फिर अभी हमारे समाजमें आदमीके रूपमें कीड़े फूल रहे हैं। वे क्या क्या है, इसे क्या समझे? कलाकी आडमें उनकी कुत्सित मनोवृत्तियाँ वह गन्दगी तलाश करती हैं जिसमें ये नरकके कीड़े रेंगते हैं। हमें तो आज ऐसे आदमी चाहिए जो कलाकी उन्नति करें, किसी भी अवरोधकी परवाह न करें और उनको, जो अपनी सकीर्णताके कारण कला या कलाकारका अपमान करते हैं, ऐसी ठोकर मारे कि आँख खुलनेपर गन्दगी भरी दुनिया भी उन्हें फूलो भरी लगने लगे।

मैंने उसी क्षण निश्चय किया कि मैं इस बार कमलासे अवश्य मिलूँगा पर कुछ ऐसे कारण आ गये कि मुझे बिना मिले ही चला आना पड़ा। फिर पूरे एक वर्ष तक मैं चाचाके पास भी नहीं जा सका। इस बार यद्यपि कमलाको देखने की इच्छा थी। बी० ए० की परीक्षा देकर जब मैं गर्मीकी छुट्टियोमें घर गया तो पिताने कहा, “तू पयानपुर चला जा। ब्रजकिशोरका निमंत्रण आया है। खुद भी वेचारे कई बार कह चुके हैं। हम लोगोके तो जानेमें बड़ी भ्रंभट है, पर किसीका जाना जरूरी है। उनकी लडकीकी शादी है।” मैंने पूछा, “बड़ी लडकीकी।” उन्होंने कहा, “नहीं कमलाकी।”

मुझे आमतौर से विवाह-शादीमें जानेसे तकलीफ होती है पर पता नहीं किस प्रेरणासे मैं वहाँ एक दिवस पहले ही पहुँच गया। वह एक तहसील थी। देहात और शहर दोनोका मिश्रण। लोगोने मुझे दस साल बाद देखा था, अतः जल्दी पहचाना नहीं। फिर तो बादमें अपनी प्रकृति के कारण मैंने बहुतसे काम ओढ़ लिये। बरात लाहौरसे आई थी। पूरी शादी खत्म हो गई पर मैं कमलाको देख न सका। भाँवरोके समय रात अधिक हो जानेसे सो गया और फिर जनवासेकी देख-भाल करना मेरी ड्यूटी थी, अतः मुझे वही बना रहना पड़ा। चलते समय दोनो दलोमें काफी भगड़ा-सा हो गया। लड़के वाले लड़की साथ ले जाना चाहते थे और लड़की वालोका कहना था कि विदा नहीं होगी। लड़कीकी तबीअत खराब है, एक तो इतना लम्बा सफर, फिर दवाका क्रम भंग हो जायगा, उसकी विदा फिर हो जायगी। उन्हें लड़कीको मारना नहीं है, लेकिन आखिरकार लड़के वालोकी ही जीत हुई। कमलाकी विदाई करनी ही पड़ी।

घरसे स्टेशन दो मील था। बारातको पहुँचाने मुझे भी स्टेशन जाना पड़ा। क्योंकि सामान अधिक था और उसी गाड़ीसे लाहौर ‘बुक’ करना

था। स्टेशन पहुँचकर मालूम हुआ कि गाड़ी चार घंटे 'लेट' है। छोटा स्टेशन। स्टेशन मास्टरकी इच्छा पूरीकर देनेपर वे स्वयं ये सब काम करने लगे। मैं मुक्त हो गया। स्टेशनके पीछे आमके घने छायेदार वृक्ष थे। वहींपर दरियाँ ब्रिछीं। सुबह सात बजेका समय था। चार घंटे लेट होनेके कारण गाड़ी ग्यारह बजे आती। अतः सारे घराती, बरातियोंके भोजन आदिका प्रबन्ध करनेमें लग गये। बरातियोमें कुछ स्नान करने और इन्तजाम करने और बाकी गप्प मारने बैठ गये। कमलाकी पालकी एक कोनेमें, एक पेडकी आडमें सबसे अलग दूर रखी थी। मेरे दिलमें रह-रह कर कमलासे इस चलती-चलाती बार मिल लेनेकी इच्छा उठ रही थी फिर वह बीमार भी तो थी। पर हिम्मत नहीं पड रही थी। उससे, जो एक नव-वधू हों, उससे बात करना जो दुनियाकी नज़रोमें गैर हो, मुझे एक गुनाह लगता था। तभी एक नौकरानीने, जो पालकीके साथ आई थी, आकर कहा आपको 'बहिनी' बुला रही है। मैं चला गया। समीप पहुँचते ही एक बड़ा धीमा और मीठा स्वर सुनाई दिया। उसने कहा—

“आओ, अब तो तुम बहुत बड़े हो गये।” और इतना कहकर उसने पालकीका एक तरफका पर्दा बिल्कुल उठा दिया और बोली, “आओ, बैठ जाओ” मैं भिभ्रकते-भिभ्रकते बैठ गया। उसने किसी प्रकारके आडम्बरका प्रदर्शन नहीं किया, नमस्कार तक नहीं। उसके इस पहले वाक्यने दस सालकी दूरी मिट दी। मैं कुछ सयत होते हुए बोला—

“तुम्हीं कौन छोटी रह गई हो।” वह एक फीकी हँसी हँस पडी। वह एक उम्दा सलवार और ओढनी पहने थी। बहुत दुबली, कमजोर और पीली लग रही थी। वधूकी तरह वह तमाम आभूषणोंसे सजी थी। मैंने यूँ ही बात चलानेको कहा—

“सलवार कबसे पहरने लगी हो?”



“लाहौरकी है ।” व्यंगसे वह बोली ।

मैं चुप रहा । उसने नौकरानीको बुलाकर कहा—“उधर चली जाओ, किसीको इधर मत आने देना ।” फिर बोली—

“दस साल वाद मिल रहे हो । लड़की न होती तो देखती कैसे नहीं मिलते ?” मैं चुप रहा । मेरी आँखोंके सामने तमाम पिछली बातें नाचने लगीं ।

“मेरे घरके पास तक आते थे पर मेरे, यहाँ आनेमें तुम्हारे पैर थकते थे । बुलाया तब भी नहीं आये । आज भी अगर न बुलाती तो शायद नहीं आते ?” मैं कुछ बोल न सका । इतने स्नेहसे शिकायत करनेवाले भी जीवनमें कहाँ मिलते हैं ? वह फिर बोली—

“मेरी शादीमें कैसे आ गये ? अच्छा हुआ, चले आये । बहुत मानता मानी थी, तुम किसी तरह आ जाते, तुम्हें देख लेती चलती वार” । यह ‘चलती वार’ उसने कितनी दर्द भरी आवाजमें कहा था । वह कुछ रुककर फिर कहने लगी—

“तुम जैसे ही आये, मुझे मालूम हो गया । यद्यपि भीतर नहीं आये तुम । मिठाई भिजवाई थी । सोचा, कौन जाने लोग काम-काजमें भूल जायँ और तुम शर्म और तकल्लुफकी वजहसे यूँ ही रह जाओ ।” मुझे याद आया, जब मैं आया था तब नाश्ता कर लेनेके बाद एक नाश्ता और आया था । नौकरानीने पूछनेपर कहा था, “भीतरसे भेजा है ।” मैंने समझा मौसीजीने भेजा होगा । और यह भीतर वाला नाश्ता ही मैं ठीकसे कर सका था क्योंकि यह अच्छा था । विवाह आदिमें दो प्रकारकी चीजे बना करती है । कुछ मामूली और कुछ खास ढंगसे । वह कहती रही ।

“समझमें नहीं आता, तुममें इतनी शर्म क्यों है ? ईश्वरको चाहिए था तुमको लड़की बनाता, मुझको लड़का ।” इतना कहकर वह हँस पड़ी । पर मैं खामोश ही रहा । उसने पूछा—

“ये सुस्ती क्यों ? कुछ उदास दिख रहे हो । तुम्हारे बारेमें मुना था तुम काफी खुशमिजाज हो ।”

मैने कहा, “बचपनकी बातें याद आ रही हैं ।” वह पुलक उठी, “सच तुम्हें बचपनकी सब बातें याद हैं । मैं तो जानती थी भूल गये होंगे । तभी न जिन्दा रहकर भी तुम्हारे लिए कमला मर गई थी ।”

मैने कहा, “चुप रहो, क्या बकती हो ।”

वह बोली, “शल्लत कहती हूँ क्या ? या तो अपनेको बड़े आदमी समझते रहे होंगे । सोचते होंगे कालेजमें पढता हूँ । और वह एक मामूली पढी लिखी देहाती लडकी, उससे दूर ही रहना अच्छा । ज्यादा पढ लेनेका तुम्हें घमड हो गया है । यहाँ तो गँवार ही रह गई । बहुत चाहा, बहुत सर पटका पर मेरी चली ही नहीं । काश, मैं भी कालेजमें पढ पाती !” इतना कहते-कहते उसकी आवाज झूब गई । मैने देखा, जैसे वह व्यथासे भर उठी है ।

मैने कहा, “अच्छा चुप भी रहो, बहुत कह चुकी हो ।” फिर जैसे वह सचमुच यह प्रसंग टालकर अपनेको हल्का करती हुई बोली—

“शादी कब करोगे ?”

मैने कहा, “मैं शादी कल्लंगा ही नहीं ।”

“क्यों, क्या किसीसे मोहब्बत हो गई है !”

“नहीं तो ।”

वह हँसते हुए बोली, “मैने सोचा शायद कालेजमें किसीसे मोहब्बत हो गई हो !”

मैं बोला, “क्या कालेज मोहब्बत करनेकी जगह है ?”

उसने कहा, “लडके तो यही समझते हैं ।” उसका यह जवाब सुनकर मैं चुप हो गया । थोड़ी देर बाद बोला,

“तुमने किसीसे मोहब्बत की है !”

“कोई इस लायक मिला ही नहीं ।” वह मुसकराते हुए बोली ।

मैने कहा, “मैने तो सुना है तुम्हारी किसीसे मोहब्बत हो गई है ।”

उसने कुछ कड़ी आवाजमे कहा, “यह नहीं सुना मैं आवारा हूँ, बदमाश । एक नहीं, जाने कितने लडकोसे मेरा सम्बन्ध है ! इधर-उधर कान्फ्रेन्सोंमें नाचती-गाती फिरती हूँ ।” मेरा चेहरा फक पड़ गया । मैने उसके मुखकी ओर देखा जिसमें घोर उपेक्षा और घृणाके चिह्न थे । मैने बात बदलनेकी गरजसे बड़े स्नेहसे पूछा, “तुमने नृत्य-कला कहाँसे सीखी । कमला, मैने तुम्हारे नृत्यकी बड़ी तारीफ सुनी है ।” मेरी बात सुनकर वह न हँसी, न मुसकराई वैसे ही गंभीरतापूर्वक बोली—

“सीखा कहाँ है ? लेकिन सीखना चाहती थी । इतने ही पर तो यह हाल है, अगर सीखती तो जाने क्या होता ?...अब उस जन्ममे सीखूँगी ।” इतना कहते-कहते उसकी आवाज जैसे उदासीके समुद्रमे डूब गई और वह इतनी पैनी दृष्टिसे शून्यमे देखने लगी कि मैं सहम गया । मेरे मुखसे निकल पडा ।

“कमला !”

उसने कहा, “कहो”

मैने कहा, “तुम्हारी तन्वीयत खराब है लेट जाओ ।”

उसने कहा, “क्यो ? क्या लेटनेसे तन्वीयत अच्छी हो जायगी ?”

मैने कहा, “हाँ, आराम तो मिलेगा ही” ।

वह बोली, “मुझे आराम नहीं चाहिए और अगर लेटना ही होगा तो एक साथ चितामें ही लेटूँगी ।” उसकी आँखे वैसी ही बनी रहीं निस्तेज, पैनी, शून्यको फाड़कर खा जानेकी प्रतीक्षामे । मैं घबरा उठा । मैने कहा, “कमला गंभीर मत बनो । थोड़ी देरके लिए तो मेरे सामने

खुश रहो। मेरा इतना कहना था कि वह खिलखिलाकर हँस पड़ी। लेकिन ऐसी हँसी, जिसके पीछे कोई अनुभूति नहीं। भयानक। हिस्टीरियाके हमले सी। मैं सर झुकाकर बैठ गया। मुझे परेशान देख वह कुछ शांत होकर बोली—

“जानते हो मैं कहाँ जा रही हूँ?”

मैंने मुसकराकर कहा, “लाहौर!”

वह भी बोली कुछ मुसकराकर, “नही जी मरने।”

मैंने कहा, “चुप रहो। क्या मरने-मरने लगाई है! शुभ अवसरो-पर ऐसी बातें नहीं की जातीं। तबीयत तो थूँ ही खराब हो जाती है। वहाँ पहुँचोगी सब ठीक हो जावेगी।”

वह बोली, “यह तबीयत ठीक होनेके लिए खराब नहीं हुई है।”

मैं चौक उठा, पर सयत होकर बोला, “क्या हुआ? इच्छा रखो, अच्छी हो जाओगी।”

वह बोली, “यही इच्छा तो नहीं है, फिर एक गवार और देहाती बनकर जीने से मरना ही अच्छा।” कहकर वह एक फीकी हँसी हँसने लगी।

तभी अचानक उसके पति पर दृष्टि गई जो कुछ दूर पर किसी से खड़े-खड़े बातें कर रहे थे। नाटे और मोटे, सूट पहने हुए। बड़े भद्दे। कमला जितनी ही दुबली-पतली सुन्दर थी, वे उतने ही नाटे-मोटे और भद्दे थे। पढ़े भी थे तो शायद हाई स्कूल फेल। रुपया था, व्यापार करते थे।

मैंने पूछा, “देखा उनको? पसन्द हैं?”

वह हँस पड़ी और मुँह बिचकाकर बोली, “उस गणेशजी ऐसे है मोटे धमधूसर।” मैं भी हँसने लगा।

मैंने कहा—“शादीके पहले नहीं देखा था?” उसने ‘न’ सूचक गर्दन हिलाई। फिर बोली—

“शादीमे लडकियोंसे कौन पूछता है ? फिर मुझसे किसकी हिम्मत थी, जानते ही थे मैं मना कर देती। खैर, बाबूजीके सरकी बला टली। बेचारोकी बड़ी बदनामी हो रही थी। ये लोग भी अच्छे ही हैं, केवल सूरत पसन्द की, दहेज-ओहेज भी नहीं लिया।”

तभी मुझे ऐसा लगा, जैसे कुछ लोग मुझे खोज रहे हैं, क्योंकि गाड़ी आनेका समय हो गया था। मैं उठनेको हुआ। मेरा दिल भर आया था। उस थोड़ी देरकी बातचीतने मुझे दर्दसे भर दिया था।

मैंने पूछा, “मेरे लायक कोई सेवा ?”

वह फिर फीकी हँसीमे बोली, “मेरे लिए ? मुझे अब कुछ नहीं चाहिए। मैंने जो-जो चाहा मुझे नहीं मिला, मुझे नहीं दिया गया। और अब आखिरी वक्तमे जरूरत भी क्या ?” कुछ रुककर फिर बोली, “तुम्हारे चाचा कह रहे थे, तुम लेखक हो रहे हो। अखबारोमे काफी लिखते-पढ़ते हो। मैं तो रह गई। बहुत-सी चीजे कहना चाहती थी, लिखना चाहती थी, पर इस लायक नहीं हूँ। कुछ ऐसा करो कि यह दुनिया बदल सके। हम स्त्रियोंकी आवाज भी लोग सुने और सुननेकी जरूरत समझें। काश ! मैं तुम्हारी तरह होती तो दुनियाको बताती कि ऐसी जिन्दगीसे लडकीका गला घोटकर मार डालना अच्छा है।”

मेरी आँखोसे आँसू निकल पड़े और मैं एक क्षण भी अपनेको अधिक ठहरनेमे असमर्थ पाकर तेजीसे चला आया और काम करने लगा। गाड़ी चलते समय उसने इशारा किया। मैं डब्बेके साथ दौड़ने लगा। उसने कहा, “देखो भूलना नहीं चाहे कमला मर भी जाय।” और फफककर रो पड़ी। मैं पीछे छूट गया और वह आँखोसे खो गई।

और आज कमला मर गई, ज़िमे आता है, मैं यह वाक्य ‘कमला मर गई’ बार-बार दोहराऊँ। तबतक दोहराऊँ जबतक दुनिया उसे सुनकर यह



## राजेन्द्र यादव

राजेन्द्र यादवका परिचय उन्हीके शब्दोमे इस प्रकार है—

“जी, नाम मेरा राजेन्द्र यादव है । शहरोमे शहर आगरामे २८ अगस्त १९२६ को अवतार लिया । पिताजी डिस्ट्रिक्ट बोर्डके डॉक्टर थे सो बचपन उनके साथ मथुराके कस्बो, मेरठ और आगरे मे बीता ( यो वह बीत ही गया हो, सम्पर्कमे आनेवाले हम-उम्र या छोटे बुजुर्गोंका ऐसा कतई विचार नहीं है । ) । आगरा कॉलेज नामक वटवृक्षके नीचे ‘बोधिसत्त्व’ प्राप्त किया सन् ५१ मे । तबसे रिसर्च, ‘ज्ञानोदय’ और सरकारी नौकरीके त्रिलोकमे भटक चुका हूँ । फिलहाल कलकत्तामें अहिंदी भाषियोंको सरकार बहादुरकी ओरसे हिन्दी पढाता हूँ । फिर भी लगता ऐसा रहता है जैसे चिरन्तन बेकार हूँ ।”

राजेन्द्र यादव कदाचित् सूत्र रूपमें कहानी कहनेमे विश्वास नहीं रखते । उनकी कहानियोसे लगता है कि वह विस्तारके साथ ही कहानी कह सकते है । ‘डिटेल्स’ के प्रति उनका मोह बहुत है, और यह स्वीकार करना पडेगा कि उनके ‘डिटेल्स’ बहुत सच्चे, खरे और मनको चुभनेवाले होते है । मध्यवर्गीय युवक-युवतियोंकी काक्षाएँ, परवशता और घुटनको राजेन्द्र यादवने अपनी कहानियोमे बहुत सफलताके साथ चित्रित किया है । वह स्वयं कोई सन्देश नहीं देते, किन्तु उनकी कहानियों घिसी-पिटी परम्पराओसे विद्रोह करनेके नोटपर ही समाप्त होती है ।





## • खेल-खिलौने

—राजेन्द्र यादव

बड़े आदरके साथ जैसे ही हमने दोनों हाथ माथेतक उठाकर नमस्कार किया, कार घुर्रधूँ करके हमारे बीचसे चल दी। एक ओर मैं खड़ा था, दूसरी ओर बाबू जी। दरवाजेपर झुण्डका झुण्ड बनाये वे लोग झोंकती हुई कारकी ओर हाथ जोड़ रही थी। जब वे कारकी ओर देखती तो बड़ी शिष्टता और नम्रतासे मुसकुरा देती, जैसे वे इसीकी अभ्यस्त है और जब जरा पीछे हटकर दरवाजेसे बाहर निकल आते किसी बच्चेको झिड़कती या क्रुद्ध होकर पीछे धकेलतीं तो उनकी भवे लपकती तलवारकी तरह माथेपर तन जाती। कारके स्टार्ट होते ही इतनी देरसे लगाये हुए शिष्टताके सारे अनुशासन टूट चुके थे और उन कार वालियोंकी मुखर आलोचनाएँ प्रारम्भ हो गई थी—जिनका विषय था, चश्मेकी कमानी, पाउडर, दाँत, मुँह, बाल काढनेका ढग, ब्लाउजकी डिजाइन और कट, साड़ीकी किनारी इत्यादि। नये आदमियोंके सामने जबरदस्ती चुप किये गये और स्वतः डरे हुए बच्चे अब और जोरसे चीजे मॉगने लगे थे।

इससे पहिले कि मैं जवाब दूँ, छोटी वीराने उछल-उछलकर बता दिया—“सुधीन्द्र भाई साहब, आज नीरजा जीजीको देखने आई थी उनकी सास।” और बच्चोंने खूब उछल-कूदकर एक साथ ही इस बातको दुहराया “सास देखने आई थी।”

पृथ्वीपर पड़े हुए कारके निशानोको देखता हुआ मैं लौटने ही को था कि मेरी निगाह सामनेसे आते हुए सुधीन्द्र भाईपर पड़ गई। शेरवानी, ढीला पाजामा, सैडल और हाथमे अटैची लिये वह धूलमें सने चले आ

रहे थे। मैं पूछनेको ही था “लौट आये ?” तभी स्वयं उन्होंने ही पूछ लिया—“कहो भाई क्या हल्ला है ? आप सबलोग क्यों यहाँ जमा हो रहे हैं।” एक विचित्र प्रकारका बुझा हुआ उनका स्वर था।

फिर भी मैंने पास जाकर उनके कन्धेपर हाथ रखकर गम्भीरतासे बताया, “नीरजाकी सुसरालसे कुछ स्त्रियाँ देखने आई थीं उसे, अभी तो गई है आपके आगे-आगे। हमलोग उन्हें विदा करने आये थे। आप सीधे स्टेशनसे ही आ रहे हैं न, लाइए अटैची मुझे दीजिए। नलिनीके घर सब ठीक-ठाक है न, तार देकर क्यों बुलाया था ?” अटैची मैंने उनके हाथसे ले ली, लेकिन मुझे लगा सुधीन्द्र भाईके चेहरेपर उत्साह नहीं था।

“हाँ तो नीरजाको देखनेको आये थे, फिर क्या हुआ ?” उन्होंने सिर झुकाकर ओठोंकी पपड़ीको उँगलियोंसे टटोलते हुए पूछा। हम लोग एक-एक कदम भीतर चल रहे थे। बरामदा पारकर अब हम ड्रॉइंगरूममें आ गये थे। बाबूजी अपने कमरेमें चले गये, जीजी, माताजी, भाभी, बुआ, और छोटे-छोटे बच्चे सब हमसे पहिले ड्रॉइंगरूममें आ चुके थे। सोफे और कोचपर अब वे लोग बैठ गई थीं। बीचकी मेजपर उन देखनेवालोंके लिए लाये गये नाश्तेके बर्तन, कप, प्लेटे, चम्मच, चायदानी, गिलास, ट्रे इत्यादि रखे थे। किसी प्लेटमें चाकी बची दाल-मोट पड़ी थी, किसीमें बंगाली मिठाईको काटता चम्मच। प्यालोंके तलोंमें थोड़ी-थोड़ी चाय बच गई थी। एक बड़ी प्लेटमें केलोंके छिलके, लुकाट और सेबके बीज, सन्तरेकी जेली और टेस्टमें लगानेके मक्खनकी टिकियाके कागज पड़े थे। मेजपर चारखानेका मेजपोश था।

“आओ भाई सुधीन्द्र, आओ।” सभीने हमें देखकर उत्साहसे बुलाया—“तुम कब आये ? अभी आ रहे हो ? अरे, जरा देर पहिले आते।” अपने पास बैठनेकी जगह छोड़कर बुआने आपसमें बड़े उत्साहसे होती

हुई बातों का सिलसिला एकदम तोड़कर कहा। मैंने अटैची कोने में रख दी और बीच की मेज एक ओर दीवाल के सहारे हटाकर उस जगह एक आराम कुर्सी खींच लाया। सुधीन्द्र भाई उसी पर बैठ गये, मैं हत्ये पर बैठ गया। बच्चे इधर-उधर घेरकर खड़े उस बच्चे हुए नाश्ते चाय, फल इत्यादिकी प्रतीक्षा कर रहे थे। कुल्लूने धीरे-धीरे अपनी माँओसे माँगना भी शुरू कर दिया था। बुआने जैसे बिलकुल नई बात हो, सुधीन्द्र भाई को सूचना दी—“नीरजा को देखने आये थे, उसकी सुसरालसे जहाँ रिश्ता हो रहा है न।”

तभी जीजीने एकदम कहा—“मैं यहाँ आई कमरे में कथा लेने, देखा एक चश्मेवाली औरत खड़ी है। मैं एकदम झुक रह गई—हाय राम है कौन यह, यो घुस आई है। उसके पीछे एक और लडकी-सी, फिर एक तेरह-चौदह साल का लडका। पूछा, तो उसने बताया—हम लोग बनारस से आये हैं। मेरी समझ में नहीं आया, क्या करूँ। सब से पहिले जाकर बाबूजी को जगाया। वे झट तहमट बाँधे ही दौड़े। और जब भाभी को बताया, तो चूल्हे में रोटी डालकर वह भागी कि बस! और भैया, बुआने तो तमाशा ही कर दिया, कभी इस धोती को उठाये कभी उस ब्लाउज को पहने, ‘मैं क्या पहनूँ मैं क्या पहनूँ’ कहती-कहती सारे घर में ऐसी नाच-नाच फिरी है कि देखते ही हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते।”

“और अपनी नहीं बतायेगी।” भाभीने हाथ बढ़ाकर कहा—“धोत्री मेरा कपड़ा नहीं दे गया, कहाँ तो परसो ही दे जाने को रो रहा था। लो, कथा भी उसी कमरे में छोड़ आई—आग लगे ऐसे घर में। कोई चीज ठीक जगह पर रखी हुई पाती ही नहीं। बिन्दी की शीशी अभी यहाँ रखी थी, न जाने कौन निगल गया। अपने काम की चीज हो या न हो बच्चों को उससे खेलना। नाक में दम है।” और भी बीस बातें। रोई पड़ती थी बीबीजी—अरे हों हों री! क्या है, क्यों जान खाये जा रही है।” और जीजी की बात कहती-कहती भाभीने वीरा के दोनों हाथ झटक दिये, क्योंकि बिना

उनकी बातोंमें रुचि लिये हुए, वह बार-बार उनका मुँह अपने ~~होनों~~ हाथोंसे अपनी ओर करके ठिनकती हुई दुहराये जा रही थी—“भाभी केला दिलवाओ एक, बेबीने बंगाली मिठाई खा ली, हम भी लेंगे।”

फिडकी खाकर वह भी अब शेष तीनों बच्चोंके पास चली गई। वे सब नाश्तेकी उसी मेजके चारों ओर घिरे, बाकी बची चीजोंका हिस्सा बाँट कर रहे थे—“तूने अपने ‘कप’ में ज्यादा चाय कर ली, इतनी ही हमें भी दे। आप तो दाल मोटकी तश्तरी लेकर अलग बैठ गये, कल हमारे पटाखे मॉगने कैसे आ गये थे, तब तो ‘आम्मे वी दो पंताके!’ अम्मा देखो इस उमाने चायदानी फोड़ी।”

“अच्छा हल्ला मत मचाओ।” माताजीने उन्हें फिडककर कहा—“उनके आते ही सारे घरमें ऐसी भगदड़ मची कि बस क्या बताये, कोई इधर भाग रहा है, कोई उधर। हमारे तो भाई, बच्चे भी गजबके हैं, घर भाड़ो, साफ करो, एक मिनट बाद फिर वही धूरा-सा करके रख दे। लोगोंके यहाँ न जाने कैसे सजे-सजाये घर रहते हैं। और बैठक तो ये समझो, इस कैलाशने (मैंने) भाड़-पोछ दी थी, कवाडखाने-सी पड़ी थी, कहाँ बैठाते, कहाँ उठाते?”

मुझे इस समय अपनी बहादुरी जतानी बड़ी आवश्यक लगी, फौरन ही बोला—“बैठक मैंने दोपहरको ही भाड़-पोछ दी थी। तस्वीरोंके चौखटे साफ कर दिये थे, मैटलपीसपर ये सारे खिलौने ठीक-ठाक रख दिये नहीं तो आनन्द आता।” और मैंने सब खिलौनों-तस्वीरों इत्यादि पर दृष्टिपात किया।

“जीजी, बच्चा।” इस बार जीजीका बच्चा नाश्तेकी चीजे खन्म हो जानेपर फिर जीजीके पास आ गया था और खिलौनोंका नाम सुनकर मैटलपीसपर रखे चीनीके भगवान् बुद्धकी ओर उँगली उठा-उठाकर कह रहा था।

“हाँ बच्चा, जाओ, तुम सब लोग जाओ—बाहर खेलो, देखो सुधीन्द्र भइया आये है—बाते करने दो। जाओ, बेबी, विभास, जाओ सब बाहर जाओ, इसे भी ले जाओ।” और जीजी स्वयं उठकर सब बच्चोंको बाहर कर आई।

“हमने तो समझा था, नीराकी सास कोई बुढ़ी-सी होगी, पुराने खयालोंकी; पर वह तो खूब जवान है। फैशनमे रहती है। उल्टे-पल्लेकी धोती, चश्मा। और लडकेकी भाभी तो फैशनके मारे मरी जा रही थी, देखा नहीं लिपस्टिक कैसी गाढी-गाढी पोत रखी थी, बार-बार पर्स खोलकर रूमाल निकालती, कभी तहकी तह होठोपर लगाती, कभी माथे-गालोपर—पाउडर तो बोरी भर लगाया था—मुझे तो बड़ी भद्दी लगी। लडका सीधा था। छोटा भाई है।” जीजीने बैठते ही बताया।

“और देखा कितना छोटा है, मैट्रिक कर चुका है, और एक ये है कैलाश, ऊँट-का-ऊँट अभी बी० ए० मे ही पढता है।” माताजीने कहा।

मैं और सुधीन्द्र भाई चुपचाप बैठे थे। यहाँ कोई किसीकी सुनना ही नहीं चाहता था। एक ही बातको अपने-अपने शब्दोंमे कहनेको सभी उत्सुक। समझ मे नहीं आता था किसकी बातको सुना जाय। तभी अचानक बातोंके प्रवाहको पलटनेके लिए मैंने कहा—“आप लोग तो यहाँ बैठी बातें बना रही है, नीरजा कहाँ है, उसे भी बुला लीजिए न। सुधीन्द्र भाई आये है, न चाय न पानी।”

“वह तो भीतरवाले कमरेमे मुँह ढँके पड़ी है—सिसक रही है। अब बीस बार तो मैं समझा आई हूँ—मानती ही नहीं है।” चाची बोलीं।

“क्यों?” इस बार सुधीन्द्र भाईने अचानक चौककर मुँह उनकी ओर घुमाया।

“कहती है, मैं शादी नहीं करूँगी, मुझे पढ़ने दो, अभी मेरी इच्छा नहीं है। खूब समझाया कि सभी लडकियोंकी शादी होती है, तू क्या

अनोखी है, और हमलोग क्या हमेशा ऐसी ही है। पर उसने तो न माननेकी जैसी कसम ही खा ली है।” चाचोने फिर बताया।

“और वहाँ लड़का जिद किये बैठा है कि शादी करूँगा तो इसीसे करूँगा—वापसे साफ कह दिया है। फोटो देखनेके बाद यहाँ चुपचाप आकर स्कूल जाते हुए देख गया कही, वस तभीसे जिद किये है। तभी तो ये सब आई थीं देखने।” माताजीने कहा कुछ चिन्तित स्वरमे।

नीरजाके रोनेकी बात सुनकर बातोका उत्साह मन्द पड़ गया। तभी बाहरसे जीजीका बच्चा फिर उनके पास आ गया—सबके मुँहकी ओर देखकर धीरे-धीरे बोला—“जीजी वह बच्चा लेगे।” उसकी निगाह मैटलपीसपर रखी उस बुद्धमूर्तिपर थी।

“बात क्यों नहीं करने देता। सब बच्चे बाहर खेल रहे हैं और तू यहाँ जमा है।” इस बार उसे माताजीने फटकारा। वह सहमकर चुपचाप खड़ा हो गया, गया नहीं। जीजी उसके सिरपर सात्वनासे हाथ फेगने लगी। “जिद नहीं करते मुन्नी।”

“अब नीरजा बेचारी रोये नहीं तो क्या हो।” मैंने नीरजाका पक्ष लेकर माताजीसे कहा—“आप तो इस बुरी तरह पीछे पड़ जाती है। नये आदमियोंके सामने अधिक हठ भी तो नहीं कर सकती, और आप है कि उन्हींके सामने जोर दे रही है, ‘वह दिखाना, वह दिखाना।’ सच, सुधीन्द्र भाई, माताजीने नीरजाकी कोई चीज ऐसी नहीं छोड़ी जो दिखा न दी हो उन्हें। क्लासमे कराये गये कटार्ड-सिलार्डके कामोसे लेकर मेजपोश, स्वेटर—सब। यहाँ तक कि हार्डजीनमे बनाये गये शरीरके विभिन्न अङ्गोके डायग्राम्स तक। अब उन्हींके सामने जिद करने लगीं कि ‘गाना सुना, गाना सुना,’ मुझे सच बड़ा गुस्सा आया।”

“सुनाया उसने ?” सुधीन्द्र भाईने पूछा । दोनो घुटनोंपर अपनी कुहनी रखे, वे धीरे-धीरे अपनी माथेकी सलवटे टटोल रहे थे—बड़े चिन्तित, उदाससे ।

“सुनाना पड़ा । सुनाये नहीं तो क्या करे । यहाँ पीछे पड़नेवाले तो ऐसे-ऐसे जबरदस्त है, हमारी माताजी, बुआ है, चाची है ।” वास्तवमे मुझे नीरजाको दिखलानेके ढंगपर बड़ा क्रोध आ रहा था ।

“अब, भई, ये तो समझते नहीं है” माताजीने अपनी सफाई बड़े गम्भीर स्वरमे दी—“लडकियोंकी शादीका कितना बोझ मॉ-बापपर चढ़ा रहता है इसे तो उनकी ही छाती जानती है । तुम्हारा क्या है, तुमने तो उठायी जवान और दे मारी । लडकियों तो सब मना किया ही करती है । हमने अपनी शादीकी बात सुनी थी तो हम भी रोये थे ।”

“नीरजा ऐसी लड़की नहीं है—वह वास्तवमे अभी पढ़ना चाहती है ।” मैं अडा रहा ।

“तो पढ़नेको कौन मना करता है, अब हमारी तरफसे चाहे जिन्दगी भर पढो । क्यों भई सुधीन्द्र ?” माताजीने सुधीन्द्र भाईका समर्थन प्राप्त करनेके लिए उनकी ओर देखा ।

पर माथेकी सलवटे उँगलियोंसे टटोलते हुए वे न जाने कबसे क्या सोच रहे थे । जबसे आये थे, उनकी यह उदासी मुझे अखर रही थी । जीजीका बच्चा ( उसे प्यारमे वह ‘पापा’ कहती थी ) अब भी भगवान् बोधिसत्त्वकी मूर्तिके लिए हठ कर रहा था । मुझे उसका यह हठ करना बुरा लग रहा था । हम सब लोग बातें कर रहे थे पर उसे जैसे वही धुन । मैं इस मूर्तिको ग्यारह रुपयेमे विशेष रूपसे प्रदर्शनीसे लाया था । वास्तवमे उसकी चीनी बहुत बढ़िया थी । माताजीकी बातपर कोई कुछ नहीं बोला—थोड़ी देर सब चुप रहे । आखिर मुझसे नहीं रहा गया, मैंने पूछ ही

लिया—“क्यो सुधीन्द्र भाई, जबसे तुम आये हो, बहुत उदास और सुस्तसे हो । क्या बात है ?”

“हाँ रे, तू जबसे चुप ही है, सब लोग ऐसे जोर-जोरसे बोल रहे है ।” माताजीने एकदम इस प्रकार कहा जैसे विषय बदलकर बोल रही हो, पर वह वास्तवमे इतनी देरसे उनकी बातका समर्थन न करनेकी सफाई मोंग रही थीं ।

“मैं ?” बड़े भर्रायेसे गलेसे उन्होंने कहा, फिर एकदम गला साफ करके संयत स्वरमे बोले—“मैं । नही कोई खास बात नही है ।”

“तो भी ?” मैने पूछा “आपने बताया नही नलिनीके यहाँ कैसे है—तार क्यो दिया था ?”

“कौन नलिनी ?” जीजीने, धीरेसे पूछा बुआसे, “मुझे तो नहीं मालूम ।” कहकर उन्होंने प्रश्न-मुद्रासे चाचीकी ओर देखा, चाचीने माताजीकी ओर ।

“सुधीन्द्रकी धर्म-बहिन है एक, मुरादाबादमे ।” माताजीने बताया, फिर स्वयं जाननेकी इच्छासे सुधीन्द्रकी ओर देखा ।

सुधीन्द्र भाई एक ओर मुँह घुमाये दरवाजेमेसे अन्यमनस्कसे बाहर देख रहे थे, उसी प्रकार बिना हिले-डुले उन्होंने कहा, “नलिनी मर गई !”

‘भूत’ से जैसे हम लोगोके बीचमे थाली गिर पड़ी हो । एक-साथ सबके मुँहसे निकला—“नलिनी मर गई ?—कैसे ?” हम बुरी तरह चौक उठे ।

सुधीन्द्र भाई उसी प्रकार अविचलित रहे, एकदम भूटकेसे उन्होंने गर्दन घुमाकर माताजीकी ओर मुँह किया—फिर सूनी आँखोसे देखते हुए बोले—“हाँ, नलिनी कल साढ़े नौ बजे मर गई । तार देकर उसने मुझे बुलाया था ।”



“कैसे ?” एक बार सबके मुँहसे निकला । जीजीने माताजीसे पूछा, “क्या उमर थी ?” माताजीने हाथसे उन्हें चुप रहनेका इशारा किया, और मुँहपर सारी उत्सुकता लाकर सुधीन्द्र भाईके मुँहकी ओर देखने लगीं ।

“कैसे मर गई ?—जैसे सब मर जाते है ।” धीरेसे वह हँसे—उनकी हँसी कितनी व्यथाभरी थी, मेरे हृदयमे जाकर जैसे वह जोरसे लरज उठी । उनका सिर झुक गया था । दोनों हाथकी उँगलियोंको एक दूसरेमे फँसा, उन्हें जोड़े हुए वे कुछ क्षण सोचते रहे । एक गहरी साँस छोड़कर उन्होंने भटकेसे सिर उठाया । “कैसे मर गई, एक लम्बी कहानी है । क्या कीजिएगा सुनकर ?”

अब वातावरण एकदम बदल गया था । अभी होनेवाली बहस और आलोचनाएँ न जाने कहाँ चली गई । सुधीन्द्र भाईकी उदासीका ऐसा कोई कारण होगा मैंने सोचा भी न था । “क्या उम्र थी ?” जीजीने सीधे ही पूछ लिया ।

“उम्र ?—पूरे इक्कीसकी नहीं थी । यह मेरे पास फोटो है ।” उन्होंने अचकनके भीतर हाथ डालकर पर्स निकाल लिया और जीजीकी ओर बढ़ा दिया—उसमे एक पासपोर्ट साइजका फोटो लगा था ।

बड़ी उत्सुकतासे जीजीने फोटो लिया—चाची, बुआ, माताजी सभी उसपर झुक गईं । “लडकी बड़ी सुन्दर है । मुँहपर कैसा भोलापन है । आँखे बड़ी प्यारी हैं । सीधी-सी लगती है ।” सभीने अपनी-अपनी राय दी । खूब देखनेके बाद जब वह पर्स उन्हें लौटाया गया तो इतमीनानसे देखनेके लिए मैंने ले लिया । लडकी वास्तवमे बड़ी सुन्दर और आकर्षक थी ।

“कैसे मर गई ? क्या किस्सा है, सुनाओ तो सही जरा ।” जीजीने आग्रहसे पूछा । सभी लोग इसी आशासे उनकी ओर देख रहे थे ।

“क्या करोगी, पूरा किस्सा है—लम्बा” सुधीन्द्र भाईने टालना चाहा।

“हमे अब क्या करना है, पूरा सुनाओ, तुम उसे कैसे जानने लगे?” जीजीने पास खड़े अपने पापाके दोनों हाथ पकड़कर कहा, क्योंकि हाथ-पैरोंसे उसकी खिलौना लेनेकी मूक जिद जारी थी। मुझे बड़ा बुरा लग रहा था। ऐसे जिद्दी बच्चे मुझे जरा भी पसन्द नहीं हैं। मैंने कहा—“पूरा तो सुनाओ—इस पापाको तो सँभालिए, जवसे अडा हुआ है, यह जिद मुझे जरा भी पसन्द नहीं है।”

“नहीं-नहीं अब कहाँ जिद कर रहा है?” जीजीने उसके दोनों हाथ पकड़ लिये थे, लेकिन पैरोंको जमीनपर क्रमसे पटकता हुआ वह मचल रहा था।

बात कहाँसे शुरू करे शायद सुधीन्द्र भाई यही बड़ी गम्भीरतासे सोच रहे थे। लोग सुननेके लिए उत्सुक है या नहीं, उन्होंने अपने उदाससे नेत्रोंसे चारों ओर देखा। सिवा उस बच्चेके जो अब डरकर चुप हो गया था किन्तु गया नहीं था, सभी लोग उनकी ओर देख रहे थे। उन्होंने माता जीकी ओर देखकर कहना प्रारम्भ किया—“भाभी जी, जिन दिनों आप बढायूँ थीं न, सन् पैतीसकी बात है, शायद मैं पिताजीके पास गाँवमें ही था। तभीका किस्सा है, लीजिए अब आप नहीं मान रही तो सुनिए—शुरूसे बता रहा हूँ। हाँ तो होऊँगा कोई छः सात सालका। तभी शहरसे पिताजीके दोस्त देवनारायण वकील आये उनके पास। पिताजीने बुलाया था। पिकनिकका प्रोग्राम था। तभी मैंने पहिली बार नलिनीको देखा था। वालोंमें रिवन बाँधती थी। रङ्ग-विरङ्गे फ्राकपर हल्के हरे रङ्गका छोटा-सा चेस्टर पहिने वह त्रिलकुल गुड़िया-सी लगती थी। मैं लाख जिमींदारका लडका सही, लेकिन था तो गाँवका ही। गेलिस लगाकर एक ढीला-ढाला हाफ पेण्ट और एक कोट पहिने था। उससे बोलनेकी बड़ी इच्छा होती थी, पर सकुचित होकर रह जाता। सुबह छः बजे ही वे लोग कारसे आ गये

थे, वकील साहब भीतर थे, पिताजीसे बातें कर रहे थे। हम दोनों नाश्ता इत्यादि करके बाहर धूपमें दूर-दूर ही घूम रहे थे। शायद सझोच यह था कि कौन पहिले बोले ? हमारे घरके सामने ही थोड़ी-सी जगह छोड़कर आम रास्ता था। उसके दूसरी ओर एक छोटा-सा कच्चा तालाब—पोखर। उसमें आठ-दस बतखें तैर रही थीं, हमलोग थोड़ी देर उन बतखोंको देखते रहे, कभी-कभी कनखियोंसे एक-दूसरेको भी आपसमें देख लेते। अचानक अपने हाथोंको अपनी जेबोंमें और भी अधिक धँसाकर वह बोली, “देखो, कितना जाड़ा है, बतखोंको जाड़ा ही नहीं लग रहा।” मैंने धीरेसे कहा, “ये तो ऐसे ही तैरती रहती है।” इसके बाद तो वह मेरे पास आकर दुनिया भरकी बातें करने लगी। उसके बोलनेके बेभिभक्त ढगको देखकर तभी मैं चकित रह गया। दुनिया भरकी तो उसे बातें याद थी, और बड़ी बातूनी। उसने सब बताया, जिस स्कूलमें वह पढ़ती है, उसमें कौन टीचर अच्छी है, कौन बुरी, किस-किस लड़कीसे उसकी अधिक मित्रता है। जिस बसमें वह जाती है उसका नम्बर क्या है। खैर उस दिन उसने खूब बातें की। मैं बिलकुल चुप रहा क्योंकि मेरे पास कुछ भी नहीं था। फिर भी हम दो दिनोंमें खूब घुल-मिल गये थे। कैरम वह बड़ा अच्छा खेलती थी। और ताश, लूडो, स्नेकलैडर, ट्रेड, ओम्नीबस न जाने क्या-क्या तो वह खेल लेती थी। खैर, पिकनिकके पश्चात् जब वे लोग चले गये तो अचानक मुझे लगा जैसे दुनियामें कोई काम करनेको ही नहीं रह गया है। फिर तो जब भी पिताजीके साथ शहर जाते उनके यहाँ ज़रूर जाते। लेकिन थोड़े दिन घर रहकर वह अपने किसी सम्बन्धीके यहाँ चली गई।”

“मेरी पढाई चलती रही।” सुधीन्द्र भाई कुछ रुके। तभी मैंने देखा, धीरे-धीरे कुनमुनाता हुआ पापा रह-रहकर जीजीको नोचता हुआ अपनी जिदको चालू रखे हुए है। अदम्य इच्छा हुई, जोरसे एक चोंच मारकर धकेल दूँ। न बातें करने देता है, न कुछ सुनता है। बड़े लाडले आये।

पर जैसे-तैसे अपनी इस इच्छाको दबाया । निश्चय कर लिया कि इसबार इसने बातोंमें जरा भी विघ्न डाला तो कान पकड़कर बाहर निकाल दूंगा, फिर चाहे जीजी बकती ही रहें ।

“मैट्रिक कर लेनेके पश्चात् वकील साहब और पिताजीमें यह एक अच्छा खासा विवाद उठ खड़ा हुआ कि पढ़ाई जारी रखनेके लिए मैं हॉस्टलमें रहूँ या वकील साहबके यहाँ । पिताजी हॉस्टलके पीछे पड़े हुए थे क्योंकि दो-चार महीनेकी बात होती तो कुछ नहीं था । खैर, मैं यहाँ हॉस्टलमें आया । वकील साहबने आज्ञा दे दी कि दिनमें एक बार यहाँ जरूर आओगे । हॉस्टलमें अच्छी तरह जम लेनेके बाद मैं वकील साहबके यहाँ जाने लगा । एकाध घण्टा बैठता और चला आता । वकीलनी ( जिन्हें मैं चाची कहता था ) और वकील साहबसे ही बातें करता था । बातोंमें वह नलिनीकी तारीफ करते । हमारी नलिनी ऐसी है, वैसी है, यों पढ़नेमें तेज है, यों खेलनेमें होशियार है । एकाध बार तो मैंने सुना, फिर तो मुझे मुँहभलाहट आने लगी । क्योंकि उसकी प्रशंसा करते वह थकते नहीं थे और मुझे लगता था जैसे उनके कहनेका बस इतना ही मतलब है—तुम चाहे जितने होशियार हो, नलिनी तुमसे लाख दर्जे इंटलिजेंट है । अक्सर वह पूछते, कुछ तकलीफ तो नहीं है । रोज ही कुछ न कुछ खिला देते । मैंने वहाँ सैकेन्ड-इयर किया, और छुट्टियोंके पश्चात् जब मैं वहाँ गया तो बताया गया कि नलिनी अब वहीं आ गई है । मैट्रिकमें फर्स्ट पास हुई है, सैकेंड पोजीशन है । यहीं पढ़ेगी । कभी-कभी मैं उसके विषयमें सोचा करता, न जाने कैसी होगी । हमलोग सन् छत्तीसमें मिले थे और अब था पैतालीस । नौ-दस वर्षका अन्तर बहुत होता है । तभी वकील साहबने उसे बुलाया, “चाय ले आओ नलिनी ।” और नलिनी चायकी ट्रे लेकर आई । मैं बुरी तरह चौंक गया, पहिली जो धुंधली नलिनी मेरे मानस-पटलपर थी उसकी इससे कोई तुलना नहीं थी । मैंने नमस्कार किया । नलिनीने चायका ट्रे रखकर नम-

स्कारका उत्तर दिया मुस्कुराकर । और बेभिभक्त वकील साहबके पास बैठ गई ।

“भाई साहब, फर्स्ट डिवीजनमें पास होनेकी मिठाई तो खिलवाइए ।” मैं चकित रह गया, लाख बचपनमें मिले सही लेकिन मैं तो एकदम किसी लडकेसे भी इस तरह नहीं बोल सकता । फिर वह तो पन्द्रह वर्षकी एक लडकी थी जो धोतीमें सिमटी सिमटाई-सी अपनेमें ही लीन हो जानेकी चेष्टा किया करती है । पर न तो उसकी वाणीमें, न व्यवहारमें, किसी प्रकारकी भिभक्त, सङ्कोच या लज्जा मुझे लगी, इसके विपरीत मैं स्वयं ही सोचमें था कि क्या उत्तर उसे दूँ । चाय बन गई थी तभी अपना कप उठाकर वकील साहबने कहा—“तुम तो इसे भूल-भाल गये होगे । यह तो वही नलिनी है जो तुम्हारे यहाँ गई थी, यह चुड़ैल कुछ भी नहीं भूलती—न मालूम बचपनसे ही ऐसी याददाश्त लेकर पैदा हुई है । छोटी-से-छोटी बात सब इसे याद है ।”

“इन्हे क्यों याद होगा—हारते थे न, जिस खेलको देखो उसीमें गोल रखे थे । मिठाई चाहे जब खिलवाइए, लेकिन चाय क्यों ठण्डी किये डालते है ?” और वह कुटिलतासे मुसकराकर कपपर झुक गई । मैं उसकी ओर सीधा देखनेका साहस नहीं कर सका । इधर-उधर भागती दृष्टिको समेटकर उस ओर लानेकी चेष्टा करता, पर जैसे वह वहाँ पहुँचकर किसी शक्तिसे छिटक उठती । उसके इस उत्तरपर भी मैं कुछ नहीं बोला ।

“भाई साहब । आप तो बहुत ही शर्माते हैं ।” उसने फिर कोचा । इस बार मेरा सारा सङ्कोच जैसे इस वाक्यकी प्रतिक्रियासे क्षोभ बन उठा । बड़ी असभ्य लडकी है, मनमें सोचा, जबसे आई है कुछ-न-कुछ बोले ही जा रही है । जब मैं नहीं बोलना चाहता तो मेरे पीछे क्यों पडी है ? मैंने कहा—“आप तो मुझसे अच्छी तरह पास हुई है, आप पहिले खिलाइए न ।”

“या तो बिल्कुल ही नहीं बोल रहे थे, और अब बोले तो ऐसी शिष्टता से बोले कि छोटे-बड़े सबका ध्यान भुला दिया।” जल्दीसे चायकी घूँटको घूँटकर वह हँस पड़ी। हाथका कप कॉप गया और चाय छलक गई। वकील साहब इस सारे वातावरणका आनन्द ले रहे थे। बनावटी क्रोधसे बोले—‘क्या कर रही है ? तमीजसे बात कर। सारे कपड़े खराब किये लेती है।’ मुझे वकील साहबपर क्रोध आ रहा था। यह तो नहीं कि ठीकसे डाटे, तभी तो इतनी वेशर्म हो गई है। लडकियोंके इतने निर्लज्ज होनेके मैं खिलाफ हूँ। यही चीज तो उनमें अन्य चारित्रिक दुर्बलताओंको जन्म देती है. . और भी मैंने उसके विषयमें न जाने क्या-क्या उलटा-सीधा सोच डाला। बातोंका उत्तर तो मैंने उस समय दिया, पर मुझे उसका बेकम्पकपन अधिक पसन्द नहीं आया, और वकील साहब थे कि अपनी बेंटीकी इस बहादुरीपर फूले पड़ते थे। माँ-बाप ऐसा लाड-प्यार करते हैं तभी तो लडकियाँ विगड़ जाती हैं। सामने तो बड़ी इतराती रहेगी और सैकड़ों सिनेमा-उपन्यासोंके दृश्य उस समय मेरे सामने आये। जब वही इतनी वेशरम है तो मैं ही क्यों हयादार बना रहूँ—सोचकर मैंने सारा सङ्कोच छोड़ दिया। उसकी ओर देखा, वह सुन्दर थी पर स्त्रियोंमें एक स्वाभाविक लज्जा, हलका-सा संकोच रहता है, वह असुन्दरको तो सुन्दर बनाता ही है, वह जैसे सुन्दर पर भी कलई कर देता है—पर वहाँ कुछ नहीं, वही सपाट मुँह। हाथमें केवल दो सोने की चूड़ियाँ। ऊपरसे नीचे तक कुछ नहीं। उल्टे पल्लेकी धोती, सो भी कंधे पर झूल रही थी—नये आदमीके सामने जाते हैं तो थोड़ा सिर पर रख लेते हैं। मैं सोचने लगा इस लडकीको इतना निर्लज्ज बना देने में इसके इस सौन्दर्यका कितना हाथ है। जब चलने लगा तो बोली—“देखिए भाई साहब, मुझे इस बार तीन इम्तहान देने हैं। कॉलिजमें इन्टरका तो है ही, एक विशारद और दूसरा सगीतका। कहिए कैसा रहेगा ?’

“बड़ा अच्छा रहेगा ।” कहा, पर सोचा, शायद यह दिखाना चाहती है कि मैं कितनी पढ़ाऊँ हूँ ।

“संगीतके लिए हमने एक ट्यूटर लगा लिया है, सत्तर रुपये लेगा । विशारद हमें आप करायेगे ।” उसने एक बार वकील साहबकी ओर देखा । मैं इस अप्रत्याशित बोझसे जैसे अचकचा उठा । वकील साहब बोले—“हाँ दिलवा दो भई । पास तो यह हो ही जायेगी, लेकिन तुम तैयारी करा दोगे तो जरा अच्छी तरह पास हो जायेगी । हिन्दीके तुम विद्वान् भी हो, सब जानते हो । ठीक रहेगा । सन्ध्याको चाय यही पिया करो ।”

“हाँ-हाँ ।” करके मैंने स्वीकृति दी । उस समय तो मुझे यह विश्वास हो गया था, इस लड़कीको अपने सौन्दर्यका गर्व है । इसीलिए यह इतनी निर्लज्ज है । उसे गर्व है तो रहा करे—गर्व करनेवालोंके लिए यहाँ भी गर्व कम नहीं है । दो-एक दिन तो पढाऊँगा, ठीकसे पढ़ी तो ठीक है, जरा भी तीन-पाँच की तो उसी दिन छोड़ दूँगा, कोई बहाना बना दूँगा । ज्यादासे-ज्यादा वकील साहब बुरा ही तो मानेंगे । इस क्षोभ और द्वन्द्वके भीतर कभी मुझे लगता जैसे कोई बड़े मृदुल स्वरमे पूछता—“किन्तु यह नलिनी है कैसी लड़की ?” खैर उस दिन, दिन भर मैंने उसके विषयमे जो भी सोचा वह अधिक अच्छा नहीं था ।

“और सन्ध्याके समय मैं उसके पास जाने लगा, उसे पढ़ाने । भाभीजी, जब आज भी उन बातोंको सोचता हूँ तो शर्मसे गर्दन झुक जाती है । किसीके विषयमें इतनी जल्दी सम्मति बना लेना कितना खराब है । सच कहता हूँ, उस जैसी बुद्धिवाली लड़की मेने जिन्दगीमे एक भी नहीं देखी । ओफ ! क्या दिमाग पाया था उसने । किसी भी बातको एक बार समझा दो, कमसे-कम इस जिन्दगीमे दूसरी बार समझानेकी जरूरत ही नहीं । कभी कापीमे मीनिंग या नोट्स नहीं लेती थी । और इतनी सुन्दर

लिखाई कि क्या कहूँ । एक किताब पढ़ लेती तो शब्द-प्रतिशब्द वह उसे महीनो याद रहती । बहुतसे स्थानोंपर वह मुझे पढ़ाती थी या मैं उसे, यह मैं आज तक नहीं जान पाया । मैं उसे बड़े ध्यान और गम्भीरतासे पढ़ाता और वह बड़े आनन्दसे पेन्सिलसे खेलती या पेनसे नाखून रँगा करती । मैं झुंझलाकर एकदम पूछ बैठता, “बताओ मैंने क्या बताया ?” और वह मेरा प्रत्येक शब्द दोहरा देती । मैं आश्चर्य करता यह लड़की है या आफत ! पन्त, प्रसाद, निराला, महादेवी, और भी न जाने कितने कवियोंकी सैकड़ों कविताएँ उसे याद । उसके निबन्ध देखकर उसके मनन-पर सिर खुजाना पड़ता था । उसकी कहानियाँ देखकर आँखें फटी रह जाती थीं । मैंने उसे तीन वर्ष पढ़ाया । इस बीचमें उसकी प्रत्येक अच्छी-बुरी बात देखनेका मौका मुझे मिला । अब इसे आप चाहे जो कुछ भी कहिए—मेरी दुर्बलता या बुद्धिमानी—मैं उसकी एक-एक बातका भक्त बन गया ।” कहकर सुधीन्द्र भाई कुछ देरके लिए रुके कि उनकी यह प्रशंसा अति पर तो नहीं पहुँच गई है । माताजी की ओर देखकर उन्होंने खिलौना लेनेके लिए अपनी मूक जिद जारी रखते पापाको शून्य आँखों से देखा । फिर कहा—“भाभी जी, आप सोचेंगी मैं व्यर्थ ही उसकी इतनी प्रशंसा करके उसे आसमान पर क्यों रखे दे रहा हूँ । लेकिन मुझे वास्तवमें ऐसा लगता है उसकी पूरी बात कह ही नहीं पा रहा हूँ । खैर तब मैंने जाना कि क्यों यह लड़की निडर, निर्भीक और बेझिझक है, क्योंकि उसके हृदयमें भय, कलुष, या उलझन नहीं है । वह उन लड़कियोंमें से नहीं है जो मनमें हजार उल्टी-सीधी बातें रखते हुए भी ऊपरसे अपनेको बिल्कुल निर्लेश दिखाया करती है । और उसके स्वभावकी वह सबलता, वाणीकी तीव्रता, मुक्त हास्यकी चंचलता उसके रूप-गर्भके प्रतीक नहीं है, वरन् वह उसकी प्रखर प्रतिभाका प्रचण्ड विस्फोट है, जो उसके व्यक्तित्वके इन सब रूपोंमें दिखाई देता है ।”



“तो ऐसी वह लड़की थी।” सुधीन्द्र भाई ने फिर बोलना प्रारम्भ किया, “मैं उसे पढ़ाता था किन्तु इस बातका निश्चय मुझे हो गया कि यह केवल संयोग है, जो मैं उससे पहिलेसे पढते होनेके कारण उससे आगे हूँ और उसे पढ़ा रहा हूँ, नहीं तो इसे स्वीकार करनेमें मुझे कोई भिन्नता नहीं कि वह मुझसे कई गुनी अधिक बुद्धिमान्, प्रतिभा-शालिनी थी। सबसे बड़ी बात जो मैंने उसमें नई देखी वह यह कि किसी की अप्रत्याशित बातसे एकदम प्रभावित नहीं होती थी, इसीलिए प्रायः वह भावुक नहीं थी। जब मैं उसकी उन बेभिन्नक खुली आँखोंमें देखता तो लगता न मालूम कितने गहरे खुले आकाशको मैं देख रहा हूँ, जिसका कहीं भी ओर-छोर नहीं है। मुझे निश्चय हो गया कि यह लड़की किसी दिन सारे देशको अपनी विलक्षण प्रतिभासे चकित कर देगी।”

“खैर, मैं उसे पढ़ाता रहा। एक दिन उन चाचीने बताया कि अपने जिन सम्बन्धीके यहाँ वह पहिले ‘मैट्रिक’ तक पढने को रही थी, उनका पत्र आया है। उन्होंने लिखा है कि नलिनीके लिए लड़का उन्होंने ठीक कर लिया है, लेकिन नलिनीने स्पष्ट कह दिया कि उसका विचार अभी शादी करनेका कतई नहीं है। अभी वह थर्ड ईयरमें ही पढती है, कम-से-कम एम० ए० तक वह इस विषयपर सोचेगी भी नहीं। फिर दूसरा पत्र आया—वह लड़का इसी मुहल्लेका है, हमारी ही जातिका है, पिछले आठ-दस सालसे मैं उसे देख रही हूँ—बड़ा सुशील और सीधा लड़का है। उसीने नलिनीको मैट्रिकके लिए इङ्गलिश पढ़ाई थी—नलिनी भी उसे जानती है। घर काफी सम्पन्न है—वह सुखी रहेगी, पास रहेगी। लेकिन नलिनी भी एक नम्बर की जिद्दी लड़की—एक नहीं मानी। फिर तीसरा पत्र आया—उस लड़केने नलिनीमें पता नहीं क्या देखा है कि अपने बापसे स्पष्ट कह दिया है कि शादी कर्हंगा तो इसी लड़कीसे, नहीं तो बिल्कुल नहीं। इसी विषयमें वे मुझसे सलाह लेने आई थी कि अब क्या

करे ? नलिनी पास बैठी सब सुन रही थी । मैं कुछ राय जाहिर करूँ इससे पहिले वह स्वयं बोली—“पता नहीं क्यों लडकोको शादी करनेकी ऐसी जल्दी पडती है । लाइए मैं उन्हें लिख दूँ सीधा, कि मैं आपसे शादी नहीं करना चाहती ।” मैंने उसकी ओर देखा, शायद वह मजाकमे कह रही हो, पर उस समय वह काफी गम्भीर थी । मैं उस ओर देख नहीं सका । वकीलनीने कहा, “समझाओ इसे ।” यद्यपि मन-ही-मन मैंने स्वीकार किया कि बात ठीक है, जब वह पढना चाहती है तो उसे पढने देना चाहिए । तो भी मैंने यो ही कहा—“जब वह इतना हठ पकड रहा है तो मान जाओ न, कर-करा लो उसीसे शादी ।”

“उसने मुझे ठीक इस तरहसे देखा, जैसे किसी बच्चेको देखती हो और वह झिडककर बोली—“आप भी क्या बात करते हैं भाई साहब, बच्चों-जैसी । अब अचानक मैं ही आपसे कहने लगूँ कि मुझसे शादी कर लीजिए, तो कैसे हो सकता है । न मैंने उन्हें कभी इस दृष्टिसे देखा, न मेरे मनमे कभी ऐसी बात आई ।” उसके मुखपर उत्तेजना थी । उसका मुख-मण्डल प्रदीप्त था ।

“मुझे हँसी आई,—कैसी मूर्खताकी उपमा इसने दी है । कहा—‘न सोचा न सही, तब भी इसमे हर्ज क्या है ?’

‘हर्ज क्या है ?’ उसने बच्चोकी तरह मुँह विरा दिया—“हर्ज है कैसे नहीं, ऐसा हो नहीं सकता । मैंने उन्हें सदैव गुरुकी भोंति पूजा और भाई की पवित्र दृष्टिसे देखा है । जिस तरह आप हम लोगोमे काफी घुल-मिल गये हैं न, ठीक वैसे ही उनकी बात है वहाँ । मैंने कभी सोचा भी नहीं था कि एक दिन वे इस प्रकार हठ करके बैठ जायेंगे कि मैं शादी करूँगा तो इस नलिनीसे ही करूँगा ।” वह थोड़ी देर चुप रही, फिर जैसे स्वयं ही सोचती-सोचती बोली—“हिश्, मैं नहीं करूँगी शादी-वादी ।”

“लैर, मैं चुप रहा। दो-तीन दिन फिर उसी स्वाभाविकतासे कटे। एक दिन गया तो पता चला कि उसके वही चाचाजी आये हुए हैं। उस दिन नलिनी बड़ी चिन्तित-उदास थी। उसने बताया, ‘आज रात-भर मैं ठीकसे नहीं सो पाई। चाचाजी आये हैं, बता रहे हैं कि लड़केको भी जिद्द आ गई है कि शादी बस नलिनीसे होगी। उसने तीन-चार दिनसे अनशन कर रखा है। जन्न मैं शादी नहीं करना चाहती तो क्यों ये लोग मुझे विवश कर रहे हैं कि मैं शादी करूँ ही। अब आप ही बताइए मैं क्या करूँ? चाचाजी इसीलिए आये हैं, ये लोग किसीका आत्मविकास होते नहीं देख सकते। मैं बुद्धिमान हूँ, मैं प्रतिभाशील हूँ, मैं सुरीला गाती हूँ, सुन्दर बजाती हूँ और सौन्दर्यशालिनी हूँ,—फिर? कहिए, आपको इन सब बातोंसे क्या मतलब? आपको यह कैसे विश्वास हो गया कि मैंने यह सब चीजे आप के ही लिए सहेज कर रखी हैं। इसमें मेरा अपना कुछ नहीं है? अजब आफ़त है।’ और क्रोध अथवा घृणासे उसने अपना निचला ओठ जोरसे चबाया। मैं चुपचाप देखता रहा। उसके वाक्यमें सत्यकी ज्वालाएँ थी। लेकिन मैं, उस समय, क्या कर सकता हूँ—समझमें नहीं आता था। उसे समझाया “शादी तो नलिनी तुम्हें करनी ही है। अब नहीं तो वर्ष बाद। फिर तुम्हें अब ही ऐसी क्या आपत्ति है?”

‘तो आपको ऐसा अधिकार किसने दे दिया कि आपने तो मुझे देखा, और खटसे मचल पड़े, अनशन कर दिया कि मैं तो इसीसे विवाह करूँगा—और हम सोच भी नहीं पाये कि सारे घरवाले चील-कौवोंकी तरह नोचने-खोचने लगे—कर इसीसे, कर इसीसे।’ उसकी आँखोंमें, पहिली बार मैंने देखा आँसू आ गये थे, जिन्हें वह एक धूँट-भरके पी गई, फिर बोली—‘भाई साहब, आप तो समझेंगे, मैं और लड़कियोंकी तरह बहाने-बाजी कर रही हूँ पर मैं हृदयसे कह रही हूँ, मुझे शादी करनेकी इच्छा ही नहीं है।’ वह चुपचाप कुछ सोचती रही, फिर बोली—‘चाचाजी ने मुझे

रातको कोई दो घण्टे लेक्चर पिलाया, नाश्तेके समय सुबह समझाया और अभी बाहर गये है। आकर फिर भाषण देगे—माताजी, बाबूजी—सभी मेरे पीछे पडे है। अब आप भी . . . मैं क्या करूँ भाई साहब, इससे अच्छा तो मैं कहीं मर जाती।' उसकी इस अन्तिम बातसे अचानक मैं चौंक गया। यह उसके मुँहसे निकला हुआ पहिला वाक्य था जो उसने जैसे व्यथासे तड़पकर कहा था। मैं स्वयं भी उन दिनों काफी उद्विग्न, बेचैन, व्यथित रहा था। मेरी स्थिति बड़ी विचित्र थी, यदि मैं शादीका विरोध करता तो वे लोग मेरे और नलिनीके विषयमें न जाने क्या-क्या सोचते। पर फिर भी, बार-बार जैसे कोई ललकारकर पूछता—'क्या मैं उसके लिए कुछ नहीं कर सकता?—क्या नहीं कर सकता कुछ?' और यह प्रश्न ही धमककर ध्वनि-प्रतिध्वनिके रूपमें व्याप्त हो जाता कि उसके उत्तरके विषयमें मैं सोच ही नहीं पाता था। बड़ा खिंचाव शिराओंमें था। मैंने दुःखी स्वरमें कहा—'क्या बताऊँ नलिनी, मैं स्वयं भी कोई राह नहीं सोच पाता! तुम्हारी प्रतिभाका मैं शुरूसे ही कायल हूँ। मेरा विश्वास था कि यदि यो ही तुम्हारा स्वाभाविक विकास होता गया, तो तुम एक दिन अपनी प्रतिभासे ससारको चकाचौंध कर दोगी। पर अब. . ."

अचानक सुधीन्द्र भाई अपनी बात कहते-कहते रुक गये, क्योंकि मैंने आगे बढ़कर उस जिद्दी पापाके दोनों कान पकड़ लिये थे। गुस्सा तो ऐसा आ रहा था कि दो मारूँ तान कर चोटें—तबियत ठिकाने आ जाय। बड़े लाडले बने है, जवसे मना कर रहे है कि मान जा, मान जा, तो समझमें ही नहीं आता। सब बच्चे बाहर खडे है और ये बेचारे यहाँ खडे है, अकेले, यहाँ खिलौना लेनेको। ले खिलौना, अब तुम्हे कैसा खिलौना देता हूँ। दोनों कान खिंचते ही पापा जोरसे चीखा, एक बार उसने मेरी क्रुद्ध सूरत देखी और जीजीका पल्ला पकड़ लिया।

“अरे क्या कर रहा है रे...” माताजी चिल्लाई—“क्यों उसके कान उखाड़े ले रहा है ?” मैं उसके कान यो ही खींचे-खींचे बाहर ले चला ।

“हॉ ले जा, ले जा, जवसे समझा रहे है तो मानता ही नहीं है ।” जीजीने बनावटी गुस्सेसे कहा, वास्तवमे उन्हें मेरा यह व्यवहार अच्छा नहीं लगा था । जिद करता हुआ पापा बुरा माताजीको भी लग रहा था, पर जीजीकी ओर देखकर वे एक दम उठीं, पापाकी ब्रॉह पकड़कर मुझे एक ओर धक्का दे दिया । “मानता ही नहीं है ।” पापाको उन्होंने गोदमे उठा लिया—“भैया जिद नहीं करते ।”

मुट्ठी बनाकर आँखोको मलते हुए उसने सिसक-सिसककर मूर्तिकी ओर एक हाथ बढ़ाकर कहा —“अम्मा, वो लेगे ।”

“अच्छा ले ।” माताजी उसे उठाये-उठाये मेटलपीसके पास गई और वहाँसे गेरुए रंगकी चमकदार चीनीकी बनी वह मूर्ति उसे दे दी । उसने दोनों हाथसे कसकर पकड़ लिया ।

मैं भुनभुनाया, “उसका क्या है, वह तो जरा-सी देरमे तोड़ देगा । ग्यारह रुपयेकी एक मूर्ति लाया हूँ—सो भी अब मिलती नहीं है—ऐसी सुन्दर और गठी हुई ।”

“हॉ-हॉ नहीं तोड़ेगा ।” माताजीने कहा—“हम दे देगे पैसे, दूसरी ले आना ।” फिर उन्होंने पापाको जीजीके पास बैठा दिया फर्शपर ही । जीजीने उसे समझाया—“हॉ भैया, तोड़ियो नहीं ।”

“अब मिली जाती है दूसरी !” मैं मन ही मन दाँत पीसकर रह गया । चुप रह गया यह सोचकर सुधीन्द्र भाई न जाने क्या सोचेंगे, उनकी बात सुनते-सुनते ऐसा बखेड़ा मचा दिया । उसकी ओर एकाध बार देखकर

उनकी बातके प्रति उत्सुकता दिखाई—“हाँ फिर क्या हुआ ?” पापा मूर्तिको फर्शपर रखकर खेल रहा था—कभी इधरसे भौंककर देखता, कभी उधरसे ।

सुधीन्द्र भाई बड़ी विचित्र-सी दृष्टिसे यह सब देख रहे थे । हो सकता है उन्हें बुरा न लग रहा हो, पर उन्हें विशेष अच्छा भी न लग रहा था—मैंने तत्काल अनुभव किया । इसीलिए ऐसा भाव दिखाया जैसे कुछ हुआ ही नहीं—हमने अधिकसे अधिक अपना ध्यान उनकी ओर केन्द्रित कर दिया ।

“हाँ तो दूसरे दिन जब मैं गया तो चाचीजी बड़ी दुखी-सी आई—‘तुम्हीं बताओ सुधीन्द्र, मैं क्या करूँ ? उसे लाख समझाया । मैंने समझाया, तुम्हारे वकील साहबने, लालाजी ने, लेकिन वह तो एक ही रट लगाये है—मैं तो पढ़ूँगी—मैं तो पढ़ूँगी । लडका कहता है तुम जिन्दगी-भर पढ़ोगी तो मैं जिन्दगी-भर पढाऊँगा, अपना घर-बार सब बेचकर पढाऊँगा । जो तेरी इच्छा हो सो कर, पर वह मानती ही नहीं है ।’ ‘कहाँ है ?’ मैंने पूछा । बताया, ‘भीतर पड़ी है पलगपर, न खाती है, न नहाती है । बस रोये जा रही है, अब हमारी तबियत तो इससे बड़ी हलकान होती है । इतनी बड़ी हो गई, आज तक नहीं रोई और अब तुम्हीं समझाओ ।’ मैंने पूछा, ‘चाचाजी गये ?’ उन्होंने जिस ढंगसे हाँ कहा मैं कुछ-कुछ समझ गया । कुछ नहीं कहा । चुप भीतर गया । कमरेमें पलगपर वह चुपचाप औंधी पड़ी थी—रह-रहकर उसका सारा शरीर कॉप उठता था । मैं कुछ देर चुप रहा, फिर पुकारा—‘नलिनी, नलिनी ।’ उसने कुछ नहीं कहा । मैं उसके पास ही पलगपर बैठ गया । दोनों कन्वे पकड़कर उसे सीधा किया—देखा, वह रो रही थी । उसके खिले गुलाबसे चेहरेको जैसे पाला मार गया था, सारा मुँह उसका लाल हो गया था, और आँखें वीरब्रह्मीके सुर्ख रंगकी तरह जल रही थी । उस समय एक क्षणको भाभीजी, सच मुझे

ऐसा लगा कि इस दहकते चेहरेके लिए मैं क्या न कर दूँ। किस आसमानके नीले और मनहूस पदोंको चीर दूँ जो उसपर अपनी काली छाया डाले है और कौन-सा पहाड़ है जिसे उठाकर फेंक दूँ, जो इसका रास्ता रोके हुए है। उस समय मुझे अपनी बाहोमें वज्र-जैसी शक्ति लहरे लेती अनुभव हुई। मैंने उसका सिर लेकर अपनी गोदमें रख लिया—बाल उसके चेहरेपर फैल आये थे उन्हें एक हाथसे इधर-उधर कर दिया। बड़े दुखीसे स्वरमें कहा—‘नलिनी ऐसे क्यों रो रही हो?’ उसका रोना बन्द हो गया था, केवल कभी-कभी एक हिचकीसे उसका सारा शरीर सूखे पत्तेकी लडखडाहटकी भोंति काँप उठता था। मेरी समझमें नहीं आता था मैं क्या कहकर उसे सान्त्वना दूँ। फिर कहा—‘नलिनी, रोओ मत।’ लेकिन नलिनीकी इतनी देरसे संचित रुलाई फिर फूट पड़ी और वह फिर बुरी तरह रो उठी। मेरा कण्ठ स्वयं भीग गया था और आँखोंमें आँसू बड़ी मुश्किलसे रुक पा रहे थे। फिर भी मैंने उसे समझाया—‘नलिनी जो हो गया सो हो गया। वह तुम्हें विश्वास दिलाता है कि पढ़ने इत्यादि की पूरी सुविधा देगा। क्यों व्यर्थ रो-रोकर अपना स्वास्थ्य खराब करती हो।’ लेकिन जैसे वह कुछ सुन ही नहीं रही थी। उसे तो इस समय जैसे रुलाईका दौरा आ गया था—बस रोये जा रही थी। उस दिन मैं भी रोया। लेकिन उस दिनके बादसे उसके शरीरकी स्फूर्ति, उसके चेहरेकी उत्फुल्लता, उसकी भोली आँखोंका उल्लास जैसे किसीने मन्त्रके जोरसे खींचकर फेंक दिये और वह एक साधारण ककाल मात्र थी—निस्तेज और उदास। किसी ओर देखती तो बस देखती रहती।

“और पिछले साल उसका विवाह हो गया। जिन्दगीमें शायद दूसरी बार वह जी खोलकर रोई। उस दिन उसने मुझसे कहा—‘बस भाई साहब, अब नहीं रोऊँगी, क्योंकि जो चीज मेरे पास असाधारण थी, जिसका मुझे गर्व था और जिससे मुझे इतना मोह था—अब सदाके लिए उसकी चाह

छोड़ दी है। बस, अब मैं एक साधारण लड़की हूँ—दुर्बल और कमजोर।”

वह ससुराल चली गई। थोड़े दिन बाद आई। जब मैंने फाइनलकी परीक्षा दी तभी उसने बी० ए० की परीक्षा दी—जैसे बिल्कुल निरुत्साहित और निर्लक्षित होकर। आपको आश्चर्य होगा, तो भी बी० ए० में उसने टॉप किया। विभिन्न पत्रोंमें जब उसके चित्र छपे, और उसने देखे तो मुझे लगा उसका वह उन्मुक्त उल्लास फिर उसे कुछ समयको मिल गया है। बहुत प्रसन्न होकर उसने कहा—‘भाई-साहब, चाहे कोई कितना ही विरोध क्यों न करे, मैं तो खूब पढ़ूँगी।’ पर तभी फिर अचानक कुछ क्षणको उदास हो गई। उन दिनों उसने सगीतका अभ्यास खूब बढ़ा लिया था। रोज मुझे कुछ-न-कुछ सुनाती—उन दिनों वह बड़ी प्रसन्न रही। ओफ, कितना सुन्दर वह गाती थी। आज तक मैं निश्चय नहीं कर पाया कि उसकी प्रतिभा सगीतमें अधिक अभिव्यक्त होती थी या लेखनमें। उन दिनों उसने कुछ सुन्दर निबन्ध और कहानियाँ लिखी। छुट्टियों भर इस बातपर बहस होती रही कि वह एम० ए० कहाँ ‘जॉइन’ करे। ससुराल वालोंके पत्र आते कि बनारस ही सबसे अधिक ठीक रहेगा और वह कहती कि मैं तो यही पढ़ूँगी। एक दिन वहम हाशय स्वयं आ धमके लेनेके लिए। वे आकर हठ पकड़ गये कि लेकर जाऊँगा तो अभी, नहीं तो आप अपनी लड़कीको रविए, फिर मेरे यहाँ भोजनेकी जरूरत नहीं है। हम लोगोंने लाख समझाया कि वह बी० ए० में ऐसी अच्छी तरह पास हुई है, और उसकी ऐसी उत्कट लालसा है कि आगे पढ़े तो क्यों न पढ़ने दिया जाय। वे बोले, पढ़नेका इन्तजाम क्या वहाँ नहीं है। बनारस यूनिवर्सिटीमें वह बड़े आरामसे पढ़ सकती है। खैर, वे महाशय उसे लेकर ही टले, बस, वही मेरी और उसकी अन्तिम भेट थी। एम० ए० वह जॉइन नहीं कर सकी। लिखा, ‘यहाँसे आकर इनकी तनियत खराब हो गई है। मैं रात-रात



भर जागकर भगवान्‌से मनाती हूँ कि ये ठीक हो जाये तो कॉलेज 'जॉइन' करूँ—एडमीशनकी तारीख़े निकली जा रही है।' लेकिन वह सज्जन तो शायद प्रण करके ही बीमार हुए थे कि दो महीनेसे पहले ठीक ही नहीं होंगे। सो वह एडमीशन ले ही नहीं पाई। उसने लिखा, 'भाई साहब, कभी-कभी तो इच्छा होती है पडा रहने दूँ बीमार और जाने लगूँ पढ़ने। पर सोचती हूँ ये लोग मुझे खा जायेगी।' इसके बाद और भी, समय-समय पर पत्र आते रहे, उन सबमे जो कुछ लिखा था, उसका तात्पर्य था, 'भाई साहब, मैं क्या करूँ, यह मेरी समझमें नहीं आता। यहाँ कोई काम मुझे करनेको नहीं है, दिन-रात यह बात जोंककी तरह मेरा खून सुखाये देती है कि जिस प्रतिभाकी आप यो तारीफ़ करते नहीं अघाते थे, जिस बुद्धिपर मुझे गर्व था, जिस सौन्दर्यसे मेरी सहेलियाँ ईर्ष्या करती थीं, मेरे जिस सगीतपर बाबूजी झूम आते थे, जिस शैलीपर लोग दाँतो तले उँगली दबाते थे, क्या वह सिर्फ़ इसलिए है कि निरर्गल और व्यर्थकी प्रेमकी बातोंमें भुला दी जाय? वे समझते हैं कि अधिक-से-अधिक प्रेम-प्रदर्शनसे वे मुझे प्रसन्न कर रहे हैं, दिन-रात, तुम परी हो, तुम अप्सरा हो, तुम यह हो, तुम वह हो और मैं तुमपर भौरे, परवाने और पपीहेकी तरह मरता हूँ। सच कहती हूँ भाई साहब, इन बातोंमे मेरा मन नहीं लगता। हाँ मैं सुन्दर हूँ—तुम मरते हो, फिर? लेकिन वे है कि दफ़्तर जायेगे—जो घरसे एक मील है—तो चार खर्रें भरकर प्रेमपत्र लिख भेजेगे, जैसे न जाने कितने वर्षोंके वियोगमे जल रहे है। उसमे सैकड़ो सिनेमाके गीत लिखे होते है, तकदीर कोसी गई होती है, दुनियाको लानत दी जाती है कि भाग्यका खेल है, दुनियाने हमे यो अलग कर दिया है, वह हमारा मिलन यो नहीं सह सकती। पता नहीं वह दुनिया कहाँ रहती है? अब आप ही बताइये इन मूर्खतापूर्ण बातोंसे क्या फ़ायदा? कोई कहाँ तक अपनेको इन बेवकूफ़ियोंमें उलझाये रखे।' और भाभी, नलिनीका अन्तिम पत्र तो बड़ा ही करुणापूर्ण है।

लिखा है, 'मेरे चारो ओर भीषण अन्धकारकी एक अभेद्य चादर आकर खडी हो गई है, भाई साहब, मैं तब कितनी रोई-चीखी थी कि मुझे इस अन्धकारके गर्तमें मत धकेलो, मैं वहाँ मर जाऊँगी। इस अन्धकारके खूनी पञ्जोने मेरी अभिलाषाओ और उच्चाकाक्षाओकी गर्दन मरोड़ दी है, और अब मैं इतनी अशक्त हो गई हूँ कि छुटपटा भी नहीं सकती। खाने-पीने और प्रेमकी इन झूठी-सच्ची बातोंके बाद बचे हुए समयमें कभी शॉपिंग करने, घूमने या सिनेमा जाने या दिन-भर औरतोंकी इस-उसकी बुराई-भलाई करनेवाली बातोंमें अपनी जिन्दगीको बाँध देनेमें मैं अपने आपको बिल्कुल असमर्थ पा रही हूँ। इन दिनों यह मानसिक भर्त्सना मुझे खाये जा रही है। भाई साहब, मैं क्या करूँ ? मैं मानती हूँ, हजारों लड़कियोंको यही चरम और परम सुख है—पतिका अन्धाधुन्ध प्यार, सोने और चाँदीसे भरा-घरबार, और निश्चित दिन। लेकिन इतने दिन मैंने जो कुछ भी पढ़ा, जो कुछ भी सीखा, जो आज भी मैं समझती हूँ, लाखों लड़कियोंसे अच्छा था, क्या केवल इसीलिए था कि यहाँ आकर सड़ जाय ? यहाँ करने बैठूँ भी तो ज्यादा-से-ज्यादा खाना बना लूँ, चौका-वर्तन कर लूँ। हो सकता है इन बातोंमें मेरा सारा समय लग जाय करे—लेकिन तब ? इसीलिए मैंने उस देवदुर्लभ प्रतिभाको सँजोया था ? भाई साहब, ये शादी करनेवाले लड़कियोंके यहाँ जाकर पूछते हैं—तुम्हारी लड़की गाना-बजाना जानती है, कसीदाकारी जानती है, मिठाई बनाना जानती है ?—उस समय उनकी इच्छा होती है, कि ससारका कोई काम क्यों बच जाय जिसे यह लड़की न जानती हो ? लेकिन कोई इनसे पूछे, विवाहके फेरोंके बाद सिवा चौके-चूल्हेके कौन-सी कलाकारी लड़कीके काम आती है। कोई मुझसे पूछे, मेरी सारी किताबोंको कीड़े खाये जा रहे हैं। पढ़नेके प्रति किसीमें रुचि नहीं है। यो शौक सभीको है कि लड़कीके सामने एजुकेटेड शब्द लगा सकें। वैसे सभीको पाउडर, लिपस्टिक और बुनाइयोंकी बातें

करनी उससे अधिक आवश्यक लगती हैं। बुनाई इसलिए नहीं कि कला है, बल्कि इसलिए कि फ़ैशन है, इसलिए कोई नई बुनाई देखी सब उसकी नकल करेगी। नया ब्लाउज़, साडी देखी, वैसी ही लायेगी—बनवायेगी। नये कटका गहना देखा, खटसे पहला टूट रहा है नया बन रहा है। रोज चीजे टूटती है, रोज बनती है। किसी-किसीको तो शायद एक बार भी नहीं पहना जाता, और टूटकर नया बन जाता है, क्योंकि वह पहलेसे अधिक सुन्दर है। और यह क्रम कभी खतम नहीं होता। मेरे वायलिन और सितारमें मनो धूल भर गई है। महादेवी और मीराके गीत मैं यहाँ गाकर सुनाऊँ तो सब उल्लुओकी तरह मेरा मुँह देखे। बात-बातमें इनकी इज्जतका ध्यान, बात-बातमें स्त्री होनेकी घोषणा। यह ऊँचे घरोकी बाते है। नीचे घरोंको भी देखती हूँ, जहाँ चूल्हे-चौकेसे ही फुर्सत नहीं मिलती। सच भाई साहब, आज हृदयमें बड़ी प्रचंड शक्तिसे यह भाव उठ रहा है कि काश, मैं एक साधारण लडकी होती। मूर्ख और भेड़, जिसके बचपनकी सारी तैयारियाँ, शिक्षा-दीक्षा केवल विवाहके लिए होती है, और विवाह होनेके बाद जैसे इन सारे भूभटोसे छुटकारा मिलता है। इस सबके लिए शायद सबसे अधिक दोषी आप हैं। आपने ही मेरी महत्त्वाकांक्षाओको उभाड़कर इतना बढ़ा दिया था कि तू यो करेगी, यो करेगी ! आपने ही मेरे दिमागमें भर दिया था कि मैं असाधारण प्रतिभा-शालिनी हूँ, और आपने ही अपने कन्धोपर चढ़ाकर इतना ऊँचा उठा दिया था कि आज जब ये लोग मुझे फिर उस कीचड़में घसीट रहे है, तो टूट जाना चाहती हूँ, बिखर जाना चाहती हूँ, मर जाना चाहती हूँ, पर नीचे नहीं आ पाती। अब बताइये मैं क्या करूँ ? कैसे मर जाऊँ ? मैं कब तक यो छुटपटाती रहूँ ? भाई साहब, मुझे कोई रास्ता बताइये, बताइये न ! केवल विवाह करके यो इन चारदीवारियोंमें सड़ जानेके लिए शायद मैं नहीं जनमी थी, मुझे और कुछ करना था—मुझे कुछ और करना था !

“खैर भाभीजी, यह उसका अन्तिम पत्र था, फिर तो उसका तार ही आया।”

यह सब बोलनेमें सुधीन्द्र भाईका स्वर न जाने कितनी बार गीला हुआ, कितनी बार भराया, पर इस बार तो जैसे वह बोल ही नहीं पाये। गलेमें कफ-सा अटक गया, उसे खाँसकर साफ किया फिर थोड़ी देर चुप रहे। पापा बुद्ध भगवान्की मूर्तिको धीरे-धीरे पृथ्वीपर ठोक-ठोककर खेल रहा था, एक बार हमने उस ओर देखा, पर जैसे भाव-शून्य होकर। सब उत्सुकतासे सुधीन्द्र भाईकी ओर ही देख रहे थे।

“मैं जब वहाँ गया तो पता चला कि वह अस्पतालमें है,” सयत होकर सुधीन्द्र भाईने कहना आरम्भ किया।

“अस्पताल ?” प्रायः सभी चौंके।

“हाँ।” उन्होंने कहा, “उसके सारे घरवाले स्तब्ध-से थे। अस्पताल गया—देखा उसका सारा शरीर फफोलेसे भरा था या जलकर काला हो गया था। वह मर चुकी थी, उसने मिट्टीका तेल छिड़ककर आग लगा ली थी।”

“है।” जैसे किसीने बड़े भारी कॉसेके घण्टेमें समस्त शक्तिसे हथौड़ा दे मारा—सारा वातावरण झनझनाकर थरा उठा।

उसी समय पापाने बुद्ध भगवान्की मूर्तिको जोरसे पृथ्वीपर पटक दिया। खन-खन करते हुए सुन्दर खिलौनेके चमकदार टुकड़े इधर-उधर बिखर गये. ..

हम सब मन्त्र-जडित थे।

घण्टेकी झनझनाहट गूँज घनकर दूबती जा रही थी।



# परदेशी

परदेशीका जन्म १९२३ में हुआ। घरपर सब कुछ था, परन्तु जिजीविषा घरसे बहुत दूर ले गई—बम्बई। “बम्बईमे वह सब देखा, जो न देखना था। वह सब किया, जो न करना था। शहराती जीवनकी विभीषिका और वैषम्यका मनपर गहरा प्रभाव पडा।” कथा-साहित्य और राजनीतिकी ओर प्रवृत्त हुए। कलर्की, प्रेस-मैनेजरी, मास्टरी, सम्पादन, प्रचार-कार्य—उदर-पूर्तिके लिए अनेक धन्धे अपनाये, किन्तु मन किसीमे रमा नही। आरम्भमे कविताएँ लिखी, अनन्तर कहानियाँ, उपन्यास और राजनीति पर पुस्तके।

परदेशीकी कहानियोंमें चिमनियोंकी मायानगरी बम्बईके निम्न मध्यवर्गीय जीवनकी हृदयहीनता, कटुता, क्रूरता और धिनौनेपनका यथार्थ चित्रण हुआ है। ऐसा सजीव चित्रण कि पाठक स्तब्ध रह जाता है। परदेशीकी ये प्रकृतवादी कहानियाँ (‘१२६ वी लडकी’, ‘द्रौपदी’) जो बहुधा पाठकके मुँहमे राखका सा स्वाद छोड जाती है, शायद कुछ लोगोंको ‘गन्दी’ लगे। ऐसी स्थितिमे यह कहना आवश्यक होगा कि परदेशीकी कहानियोंकी ये ‘गन्दगी’ उस अन्धसघर्षमय शहराती जीवनकी गन्दगी है जिससे उनके कथानक उठाये गये हैं। जो हो, इतना तो मानना ही होगा कि परदेशी हमें झकझोरकर उस दुनियाके प्रति सजग कर देते हैं जिसकी ओरसे हम शायद सदा आँखें मूँदे रखना पसन्द करते। परदेशीकी अपनी शैली है और उसमे वेग, प्रवाह तथा शक्ति है।

परदेशीका एक कथा-संग्रह ‘चम्पाके फूल’, दो उपन्यास ‘चट्टाने’, ‘औरत, रात और रोटी’; और तीन कविता-संग्रह ‘चित्तौड’, ‘जयहिन्द’, ‘परदेशीके गीत’ प्रकाशित हो चुके हैं। सद्यःप्रकाशित पुस्तके हैं—‘भगवान् बुद्धकी आत्मकथा: १’ और ‘एशियाकी राजनीति’। ‘योरपकी राजनीति’ यन्त्रस्थ है।

## • अवरोध

—परदेशी

मॉने जाने क्या सोचकर उसका नाम समरथ रख दिया था । देहीमें एकदम दुबला, और कायासे कमजोर ! स्वभावमें सीधा और भोला । चरित्रमें साधारण ।

सारा गाँव कहता—इस विधवा भटियारीको तो देखो, जैसे इसीके लड़का हो और सब औरते निपूती हो ! रहनेको सरपर छुपर नहीं, पेटका ठिकाना नहीं, फिर भी बेटेका नाम ‘समरथ’ ! रखनेको यही नाम मिला इसे ? और भी तो बहुतेरे नाम थे ? इकलौता है, तो ‘अमरत’ नाम रख देती, समरसे अमर हो जाता । पर समरथ ? गाँवके लोगोकी धिसी-पुरानी बुद्धिमें यह नये आकार-प्रकारका नाम कैसे समाता ? सो, उन्होंने समस्या का हल निकाल लिया, और समरथ—‘समा’ रूपमें असमर्थ बन गया ।

जब बाप मरा तो सवा नौ महीनेका था । दो-तीन साल तो वह बीमार-बीमूर रहा, फिर चगा हो गया और दस तक कभी सिर न दुखा उसका । बुढ़िया मॉने किसीका पिसना पीसा, किसीके वर्तन मॉजे, किसीका चौक और किसीका पानी पूरा । और यो पतिकी निशानीको समरथ बनाया । चौधरियोंके घरसे कमीज और धोती माँग लाती । छोटा-सा समरथ लम्बे आस्तीनवाला, घुटनोसे नीचा कमीज पहने स्कूल जाता और हरेक साल, किसी-न-किसी प्रकार अगली कक्षामें बैठ जाता । अध्यापक जानते थे कि यदि समरथ फेल हो गया, तो बुढ़िया आकर तब तक रोती रहेगी, जब तक उसका लल्ला पास न हो जाय ! इस तरह समरथ उत्तीर्ण होकर बढ़ता गया और एक दिन जब समाचार-पत्रमें उसकी तसवीर आ

गई तो जैसे वृद्धाकी मनोकामनाएँ मूर्त हो गई। बात यह थी कि अपनी गरीबीके प्रति चेतना जागृत होनेसे सातवें और आठवें दर्जेमें समर्थने तन-तोड़ मिहनत की और पूरे सूवेमें प्रथम आकर समर्थ कुमार बन गया। इसी साल उसने दो नई मजिले और तय कीं। एक तो यह कि वह हाकिमोकी तरह घुमा-फिराकर हस्ताक्षर करना सीख गया और दूसरे जत्र परीक्षा देने शहर गया, तो स्कूलकी दीवारके नीचे बैठे फोटोग्राफरसे अपना चित्र खिंचवाया, जिसमें वह हवाई जहाजकी खिड़कीमें दिखाई दे रहा था। इस 'छवि' की चार कापियाँ उसने सवा रुपयेमें खरीदीं। उन पर हस्ताक्षर किये और एक कापी अम्माको दी। देखते ही उसका कलेजा धक्कर रह गया—“अरे लल्ला, कहीं जहाज चीलकी तरह नीचे गिर जाता, तो मैं क्या करती? रो-रोकर अपने प्राण ही दे देती!”—दूसरी कापी उसने खुद रखी। तीसरी अपने साथी को दी, और चौथी—चौथी प्राणको डाकसे भेज दी।

काँपते-हाथो उसने प्राणको पत्र लिखा, कई बार उसे चूमा, उसके बाये सिरेपर गुलाबके फूल और पत्ते बनाये और पेस्टल बॉक्सके रंग भरे। फिर, दाँस्तोकी नजर बचाकर उसपर पता लिखा और डाकमें छोड़ आया। लेटरबॉक्समें खतके गिरनेपर जत्र 'खट' की ध्वनि हुई तो उसे खटका हुआ, कहीं प्राण अपने भैयासे कह देगी, तो? या माँसे ही कह दे? डाकघरसे लौटनेपर बड़ी रात तक उसकी छाती धड़कती रही। उसने खाना नहीं खाया—न खाना ही चाहिए था उसे, इसीमें नैतिकता थी उसकी, क्योंकि उसे प्रेम हो गया था और अब वह बाकायदा प्रेमी और समझदार बिरही था!

उसने अपने बिछौनेपर पड़े-पड़े सोचा कि प्राण अपनी छातीसे उस फोटोको चिपकाये सिसकियाँ भर रही है और केसरिया ओढ़नीके छोरसे गुलाबी आँखें पोछ रही है। समर्थके हृदयमें भावनाका आवेग उभर

आया और आँखें परिपूर्ण हो आईं—यह आठवींके एक सफल छात्रके रूपमें उसकी प्रथम प्रेम-पीर थी—भय, विनय, संशय-भरी। मधुर और भोली !

फिर तीन साल तक समरथ 'इंग्लिश ट्रान्सलेशन एंड कम्पोजिशन' में दिये हुए नमूनेके अनुसार अर्जियाँ लिखता रहा। यहाँ तक कि उसे सारा मजमून कठस्थ हो गया और गाँवके अन्य छात्र उसके पास आकर अर्जियाँ लिखवाने लगे। दिन भर बेर-अबेर घरपर तौता लगा रहता, बड़े-बूढ़े चिट्ठियाँ पढ़वाने आते। विधवाएँ 'मनीआर्डरसे लौ लगाये हुए', पतोहूको आशीष लिखाने आतीं। बहुएँ परदेस गये पतियोसे 'अबकी सावनमें आनेकी शपथ लिखवातीं और पति, जो अहमदाबादकी 'मिलो'में लोहेके साँचोंमें अपने सपने ढाल रहे थे, वोनस 'मिलनेकी आसमें जी रहे थे !—इससे एक लाभ हुआ कि भटियारी माँ के मनसे नौकरी न मिलने का गम समरथकी योग्यताके भ्रमसे कम हो गया और उसे घंर आये लोगोंके स्वागत और आवभगतमें गौरव अनुभव होने लगा। लेकिन, इन सबसे काम कैसे चलता, और पेट तो रोटीसे ही भर सकता है—कागजसे नहीं, किताबोंसे नहीं, मान और सम्मानसे नहीं, प्रानके माँखनिया चेहरे से नहीं, उसकी चपल-कजरारी आँखोंसे नहीं !

नतीजा यह हुआ कि जेबमें, कई रातों जागकर लिखी, एक लम्बी अर्जों लिये, गठरीमें खाना बाँधे और प्रानके पितासे इकन्री-रुपया-सूदपर माँके लाये पच्चीस रुपये लेकर समरथ बम्बई चला। माँने माथेपर दहीका टीका लगाया। वहन थी नहीं, सो-पड़ोसकी एक बालिका, शुभ-शकुन रूपमें सामने आई। इसके पश्चात् मित्र और जोड़ीदार बीस मील दूर पहुँचाने आये, जहाँ विधवाके किस्मत-सा सूना एक छोटा-सा स्टेशन था। दो-एक मित्र साथ ही बसमें बैठ गये। जो मित्र प्रेममें प्रवल और अर्थमें



अबल थे, वे अँधेरे-मुँह पैदल प्रस्थान कर गये कि समयपर स्टेशन पहुँचकर प्रतीक्षा करें। आखिर, उनका एक दोस्त और गाँवका पहला जवान—जिसका फोटो अखबारमें छप चुका है, कमाईके लिए दूर परदेस—बम्बई जा रहा है ! यह तो एक ऐतिहासिक घटना थी। बेचारे गँवई लोगोको तो इस अण्डाकार नामका सही उच्चारण भी नहीं आता ! न उन्होंने रेडियो सुना था, जिसपर मेम हर शाम गला गुदगुदाती है—‘दिस इज बॉम्बे कालिंग...’ समरथकी इस यात्रासे गाँवके प्यालेमें तूफान आ गया। उत्साह की लहर व्याप्त हो गई। और यह सारा उत्साह-सार माँके अन्तरमें समा गया और वहाँ बे-तारसे उसका तत्त्वाश समरथके मर्मपर छा गया। बम्बई का सपना सजग खड़ा हो गया—पैंतालीस लाखकी आवादीवाला विराट् नगर ! पन्द्रह लाख सड़कपर सोने वाले ! मानो फुटपाथके इन वासियोसे भी बम्बईकी शान और शोभा—उसका दबदबा बढ़ता है।

चौधरीने कहा—“भटियारी माँ, सहर क्या है, समुन्दर है ! पूरा सूवा ही समझ। इन्दरपुरी है। मिट्टी भी मोल बिके है, एक आनेमें पाव भर !”

भटियारी माँ—समरथकी असमर्थ माँ—कुछ न समझ सकी। वह क्या जाने कि जमाना बदलनेसे पहले, लोगोकी नीयत बदलकर मिट्टीमें मिल गई है।

फिर वे लंग आये, जो हरिद्वार या रामेश्वरकी यात्रामें जेब कटवाकर घर लौटे थे, उन्होंने जेबकतरोसे लड़केको सावधान किया। और पेन्शनर करीम खाने खुदासे उसके भविष्यकी दुआएँ माँगनेके साथ ही उसे उन ‘फेसनवालियोसे खबरदार रहने’ को कहा, ‘जो बेसरम होकर दीदे फड़कावे है।’ वास्तवमें, करीम खाने बरसोसे रेंडुआ था और उसकी अतृप्त वासना आये दिन पाँच भले आदमियोके बीच उपदेशका अमृत बनकर भरती थी।

सो, उस दिन समरथ चला।

प्रान इसके पहले मिली थी। पिछ्वाडेकी कडी खोल, ठाकुरोकी बाडी लॉघकर, नीम-नीचे चोरी-चोरी वह आ गई थी। समरथके सीनेसे लग कर वह खूब रोई। समरथको भी असह्य वेदना लगी। न शब्द सूझते थे, न बोल निकलते थे। घरसे जव चला था, राह भर अपनी कमजोरीको दबाता जा रहा था। पर वह टूटी हुई स्प्रिंगकी तरह, ऐन वक्तपर उभरकर ऊपर उठ आई ! इसपर भी वह प्रानसे दूरी बनाये रहा, क्योंकि पिछ्ल्ली-बार मेहताओके बगीचेमे जव वह मिली थी, तव समरथने, जाने भूलसे, जाने-अनजाने, देखे-अनदेखे उसके अधरोका अमृत छू लिया था। तव तो तुरन्त प्रानके प्राण-पछी जैसे उड़ गये हो—ब्रॉहोसे छुडाकर और पीठ उसके हाथोसे हटाकर छूट गई और फुस्फुसकर अचानक सिसकने लगी। समरथने बडी आरजू-मिन्नत की। रूमालसे उसके आँसू पोछे, हाथ जोडे और मुँहपर हाथ रखकर चुप करनेकी कोशिश की, कि हवा भी न सुन ले।

जव कॉप-कॉपकर समरथ रह गया और प्रेमके अँधेरेमें कोई मार्ग न सूझा तो उसके मुँहसे निकला—“प्रान, मुझे मरा देखे, जो कारण न बताये, क्यों रोती है ?”

प्रानने लब्री-लब्री सॉस लेकर, पहले हिचकियाँ समेटी। फिर नजरे नीची कीं और पलके ढाल दीं और दोनो हाथोकी अपनी उँगलियोसे अपने नाखूनोको छुआते हुए लाजमे बोली—“और हम पूछे, चूमकर तुमने हमे जुठला दिया और अब इससे.. हम कहे, इससे हमारे . बालगोपाल हो गया, तो ..हम कहे. .नदीमे हम डूब मरेगी !”

“धत् तेरी, इसीके लिए यह बवाल मचाया था कि ?” समरथने चौधरीकी दुलारी ब्रिटियाके धौल जमाया। बोला—“हम कहे प्रान, जो किसी नन्हे-मुन्नेको चूमते है, तो क्या उसके बालक हो जाता है ?”

लडकी लड़केके समान कुशाग्र बुद्धि नहीं थी। उसके तर्कसे प्रसन्न हो गयी।

और आज पाँच वर्ष बीत गये !

जीवनकी धारा अनेक पथरीली और ऊँची-नीची जगहोंपर बहनेपर भी, अपनी चक्रता छोड़कर सीधी सपाट न बही। आज प्रान नहीं, माँ नहीं, साथी-सगाती नहीं। सिर्फ यह बाजार है—भरा-भरा, पर सूना-सूना। बंबई है—लंबी-चौड़ी बंबई ! काली-सफेद सड़कोवाली, लंबी डाढ़ों-वाली बंबई—जैसे मृत पूतना देह पसारे पड़ी है !

बीचमें ८०० मीलकी दूरी है। उधर प्रान है, माँ है; इधर वह है, और है बेकारी और मुफलिसी। बीचमें यह सैकड़ों मीलकी लंबाई फैली है। घर, मकान, कपड़ा, दाल, रोटी और पेटकी सुरक्षा मजबूरी बनकर दूरीमें बदल गई है। प्रतिमास वह माँको दिलासा देता है—‘जल्द आऊँगा।’ माँका पत्र आता है—‘आँखोंसे कम दीखता है।’ जल्द आऊँगा। प्रानके रंगते अक्षरों वाली पाती आती है—जल्द आऊँगा। और वह अपनेसे कहता है—जल्द आऊँगा ?

उसकी जल्दीके ये दिन और राते—ब्रह्माके दिन-रात बन गये हैं। दूरी कभी खत्म नहीं होती, मजबूरीका अन्त नहीं। पाँच वर्ष निकल गये और पाँच वर्षोंके लगभग दो हजार दिन कड़ियाँ बन-बन शृङ्खलाके बंधन बन गये हैं। प्रान तक पहुँचनेका ‘कोई खास कारण नहीं’। माँ के पास जाकर जी जुडानेमें ‘कोई विशेष रुकावट नहीं’ केवल यही कि पैसा—राह-खर्च उसके पास नहीं है।

लेकिन वह माँ को कैसे समझाये कि सचमुच ही पैसा उसके पास जल्द आनेवाला है और वह माँ के पास जल्द आनेवाला है। आखिर वह झूठा नहीं। एक दिन वह ज़रूर जायेगा, उसे जाना ही है। यहाँ ‘कोई

खास अडचन नहीं। बात सिर्फ इतनी-सी है कि पासमे बाईस रुपये छह आने नहीं है।

और अक्सर रेलवे ऑफिसमे बुकिंगकी खिड़कीपर वह पूछ-पाछ कर लेता है—“किराया कम हुआ?”

“नहीं!” चश्मा-लगी आँखोंसे बाबू उसे घूरकर देखता। बाबूके फूले मुँहसे निकला यह ‘नहीं’ पहले सीधा, फिर तिरछा होकर उसके कानोंमे प्रविष्ट हो, पेटमें, जिगरमे पहुँचता है। फिर वहाँ पहुँचकर उलट जाता है जैसे नागन डँसकर उल्टी हो जाती है। तब एक दर्द बाकी रह जाता है।

उस दर्दकी घुटनमे भी वह लिखता है—बड़े आराममे है। लम्बी-लम्बी सड़के, ऊँचे-ऊँचे मकान, जिनका छज्जा देखना चाहो तो सिरसे टोपी गिर जाये। जब बाहर यह हालत है, तो भीतरवालोका क्या हाल होगा? उनका तो सारा सिर ही फिर गया है! जहाँ चाहो इकतनीमे ट्राममे बैठकर पहुँच जाओ। बड़ी-बड़ी होटलें, स्टुडियो, दफ्तर, कम्पनियाँ, इमारते, हेगिंग गार्डन, नेशनल पार्क, और मिल्क कॉलोनी, जूहू, ताज, गेट-वे, एशियाका सबसे बड़ा स्टेशन—वी० टी०, और कलकी—अमरीकी दुकानमे आज आ बैठा खादी-भण्डार, तेरह हजार महीना जो शो-केसका किराया देता है, सब कुछ तो है—लेकिन एक नौकरी नहीं। पाँच सालोंसे वह दफ्तर-दफ्तर और सड़क-सड़क और सड़कसे दफ्तर तक भटक रहा है। हजारों मील उसने पैदल तय कर डाले हैं, पर अभी नौकरी नहीं। और घर लौटनेके लिए आवश्यक रुपये भी नहीं। दुनियामे सब कुछ होते हुए भी जैसे उसके लिए कुछ भी नहीं है, क्योंकि उसके पास नौकरी नहीं है।

“बाबू जी, बाईस छह आनेसे किराया कम हुआ?”

“नहीं जी, कम कैसे होगा, अब तो और भी बढ़ेगा।”

उसका चेहरा बदल गया है। ओखें अन्दर, गालोंकी हड्डियाँ बाहर और कदम सुस्त पड़ गये हैं। दिमाग थक गया है। नजरोमे प्रानका चेहरा

धुंधला पड़ने लगा है, और आँखो-आगे माँकी तसवीर मिटने लगी है !

भटकन, भुखमरी, बेरोजगारी ! कल्पना, चिन्ता, भ्रम ! आशा, निराशा और परेशानी ! समुद्र, रेगिस्तान और दलदल !

समरथ इतना मायूस और फटेहाल दिखने लगा कि लोगोको दया आती । उसे वे सब स्थान मालूम हो गये थे, जहाँ मुफ्तमे खाना मिल सकता है—नरनारायण-मन्दिर-द्वारपर गुजरातिने, पारसियोकी 'अग्यारी'पर पारसिने और माधोबागमें मारवाडिने रोटी-चावल बोटने आतीं । वह जरूरत देखकर सब जगह जाता रहता ।

राहगीर, एकाध इकत्री थमाकर चले जाते । खुश होकर वह ले लेता । सिक्केको गौरसे देखता । किङ्ग इम्पररकी तसवीरसे उसे भय, विस्मय और आनन्द मिलता । सहेजकर वह पैसा रख लेता । जब तीन-चार-पाँच रुपये हो जाते, तत्काल माँ को भेज देता ।

माँ और प्रानकी खुशी उसपर केन्द्रित थी और उसकी खुशी सिक्केपर अङ्कित किङ्ग इम्पररकी छविपर निर्भर थी । काश, उसके पास इतने किङ्ग इम्परर हो जाये कि वह घर—अपने घर—पहुँच सके, जहाँ उसकी बुढिया माँ है और प्रान है और है वह नीम—जिसकी छायाके नीचे हवाएँ धीरे-धीरे बहती है, परछाइयाँ मिलती है और लडकियाँ चोरी-चोरी चलती है !

मनीआर्डर-फार्मपर दो पंक्तियोमे कंठस्थ शब्द लिखता—“जल्द आऊँगा, बहुत जल्द ! काम ठीक चल रहा है । उन्नतिकी उम्मीद है । चौधरीको पॉलागन ।”

चर्नी रोडके प्रार्थना-समाज-कॉर्नरपर अपने जिलेका एक पनवाडी उसे मिल गया और उससे पहचान हो गई । उसीके पतेपर समरथ पत्र मँगवाता, वही प्रानके और माँके लिखवाये चौधरीके पत्र पहुँचते । माँ लिखती—“बेटा, मुझे रुपये-पैसे नहीं चाहिए, दोनो जून भरपेट खाना और जतनसे रहना । जल्द आना ।”

और प्रानको तो एक ही रटन थी—“अब हम कहे, तुम आ जाओ ।”  
 .....पाती हाथोमे थमी है । बाईस छह आने बढ़कर अट्ठाईस हो गये है ।  
 स्वराज्यमे सब चीजे मेहगी हो गई है । एक वेकारी, भुखमरी और वेश्याई  
 ही सस्ती है । उसकी नजर पातीपर है, जिसके अच्छे बृहदाकार हो बढ़ते  
 जा रहे है, बढ़ते जा रहे है...दिमाग कहीं और है.. कोई चिबुकपर अँगुली  
 छुआये...गैलपर आँखे लगाये बैठी है ! मन और प्राण जिसके आशाका  
 तार बन गये है...सपनोपर जो जी रही है...और अट्ठाईस रुपये ? वह  
 मुसकरा दिया, विचित्र-सी एक हँसी उसके अधरोपर फैल गई ।

हर शनिवार वह डाकघर जाकर अपनी पत्रियाँ लाता । डाकिया उसके  
 पतेतक रेगता हुआ आये— इतना चैन उसे नहीं था । दो-तीन मील चलकर  
 वह अपना खत पाता । विन्डो-डिलीवरीके समयसे पहले ही, वह क्यूमे खड़ा  
 हो जाता । कभी उसका पत्र होता, कभी नहीं । उसके आगे-पीछे खड़े  
 व्यक्तियोंके नाम मनीआर्डर आते, पर शायद पूरे पतेदारोंमे वही एक ऐसा  
 था, जिसके नाम कभी मनीआर्डर नहीं आया ।

प्रायः इधर-उधर ब्रीफ़ ढोकर सिनेमाकी खिडकीके ‘क्यू’मे होकर,  
 कारोसे उतरनेवाली सुन्दरियोंके द्वार खोल, सलाम बजाकर, फुटपाथपर  
 बैठकर, फुटकल सामान बेचने वालोकी सुरक्षामे गलीके छोरपर दिन-भर  
 खड़ा रहकर, इस बातका ध्यान रखता कि हलकेका पुलिसमैन तो नहीं आ  
 रहा है—उसको दूरसे देखते ही वह लपककर सौदागरोको सूचना देता,  
 और वे अपना-अपना सामान सिरपर उठाकर आसपासके मकानोके नीचे  
 जा खड़े होते—इन सब क्रिया-कर्मसे, महीनोके अथक परिश्रमपर  
 कुछ रुपये वह जमा कर लेता, पर जब उन्हें कल्पनाके अट्ठाईस रुपयोकी  
 बराबरीमें रखकर नापता, तो उसका कलेजा बैठ जाता । और इतने दिनोके  
 उपरान्त इस समयतक, नहाने-धोने और पेट-भरकर भोजन कर लेनेकी उसकी  
 इच्छा बलवती हो उठती । वह बहुत मनाता कि ईश्वर उसकी भूख कम

कर दे और पाचन-शक्तिको मिटा दे, पर ईश्वरने समर्थकी अन्य माँगों और विनतियोंके समान इस माँगको भी रद्द कर दिया था। उसे आश्चर्य था कि क्या कारण हो सकता है, बड़े आदमियों और सेठोंकी पाचन-शक्ति क्षीण होनेका, बावजूद इसके कि जो चीजे वे हज़म कर जाते हैं, उन्हें हजारों समर्थ मिलकर भी नहीं पचा सकते !

एक दो बार मिलके दफ्तरसे उसे बुलावा भी आया, पर वह समयपर इसलिए नहीं पहुँच सका कि उसके पास धुली कमीज और कम-से-कम साफ दाढ़ी नहीं थी। चप्पल उसके फट गये थे, और अब उसने उसके नीचे सड़कपर प्राप्त दो मोटे पुट्टे बड़ी कुशलतापूर्वक सी दिये थे। उसे बड़ा दुःख है कि उसकी 'न मिली नौकरी' चली गई। और वह अर्द्धाईस रुपये का वारिस न बन सका और माँके पैर छूकर प्रानका मुखड़ा देखनेसे वंचित रह गया !

पिछले दो हजार दिन अपने चौबीस-चौबीस घंटोंकी बरात लेकर उसके सामनेसे गुजर गये और वह उत्तनी-उत्तनी बार माँसे और प्रानसे जुदा होकर दूर होता गया ! उसके अन्तरतमके मर्ममेंसे कोई झॉककर पूछने लगा—और प्रान तो अब सयानी हो गई होगी...वालास तरुणी ! चेहरा और बदन भर गया होगा।...नित्रौरियाँ अब भी गदराती होगी और प्रान, तुम, नीम-नीचे अब भी आती होगी ?...समर्थका रोम-रोम रससे भीग गया और आँखे अनदेखे आनंदसे आर्द्र हो आईं ।

सेन्ट्रल-सिनेमामे दूसरा शो शुरू होनेकी घंटी बज रही थी। उसके आस-पास ब्लेकवाले मक्खियोंकी तरह भिनभिना रहे थे—'वन-फाइव-थ्रवन-ट्वेल, टू एट-थ्री फोर' ।

काश, उसे नौकरी मिल जाती, तो सबसे पहले माँको पुष्करजीके स्नान करवा देता ! फिर प्रानको लेकर बंबई लौट आता, इस सिनेमामे लाता ! इस भरी भीड़में उसकी प्रान किसी राजकन्यासे कम न जँचती !

पर जिन्दगी तो नीमकी पत्तीकी तरह है, कड़ुआपन लिये रहेगी और पीली पड़कर एक दिन अचानक झड़ जायेगी ।

और हरेक गुजरते हुए दिनके साथ, घर लौट जाने, प्रानको पाने, और मॉके हाथोकी बनी रोटी खानेकी उसकी आशा क्षीण पड़ती जाती थी । ऐसा लगता था—ससुरालसे तिरस्कृता, किसी सेठकी लड़की-सी उसकी आशाको क्षय-रोग हो गया है और वह तिल-तिलकर घटती जा रही है और एक दिन उसका हृदय-स्पन्दन रुक जायेगा, आँखें खुली रह जायेगी, कि कुछ देखना चाहती थीं, पर देख न सकी, ओठ खुले रह जायेगे कि कुछ कहना चाहते थे, पर कह न सके—पति-परित्यक्ता-श्रेष्ठि-कन्या-सी उसकी सुकुमारी आशा !...भिखारियोंके सपनों और मुफलिसोंकी आशाओका क्या मूल्य ? उनकी क्या वकत ? सामने जो खडे है मही-रावण, उन्हें तो ललकारनेवाले चाहिए ।

ज्यों-ज्यों दिन जा रहे हैं, उसका ख्याल बँध रहा है कि उसे लड़ना होगा । ऐसी-वैसी नहीं, भारी लड़ाई लड़ना होगा । क्यों, जिधर जाओ उधर पैसा माँगा जाता है और पैसा ही नहीं, भरपूर पैसा, जैसे कोई लूट हो रही है और इन अगणित लोगोमेंसे अनेक इस लूटमें लगे हैं और अनेक इसके शिकार हैं । इस विचारपर समर्थको लगा कि उसके आँखो-आगेका अँधेरा थम गया है, रोशनी बढ गई है और मनकी घुटन, बेवसी मट पड गई है । ऐसे-ऐसे विचार जब उसे आते हैं, जाने क्यों जी हल्का हो जाता है ।

और उसके जल्द आनेकी चिन्ती पाकर मॉ कितनी पुलकित-प्रसन्न हो उठती होगी ! उसके लिए पापड, बड़ी पकौडीकी तैयारियाँ करती होगी और गोब-भरमें कहती फिरती होगी—“इस बार लल्ला जरूर आयेगा । इस बार सोनाकी मॉ, बेटी...”



लेकिन, इस बारका तूफान और उल्कापात पहले उसके सीनेमे उठा और पटरीसे गिरी गाडीकी तरह उसकी साँसे उलट गई और आवेग इतने वेगसे बढ़ा कि आँखे पोलूनेका उसे मौका न मिला। माँकी रोती-बिलखाती मूरत सामने आ गई और सामने सेन्ट्रल-सिनेमापर लगी 'श्रवण कुमार' की माँकी तसवीरमे उसकी अपनी माँका मुख उभर आता लगा— उसने स्पष्ट देखा, वह रो रही है। उसकी ओर समर्थका एक हाथ उठा, परन्तु माँ तक नहीं पहुँच पाया—वह कैसा है, जो माँके आँसू नहीं पोलू सकता है ? इतनी विवशता, इतनी मजबूरी ? दिन इसी तरह बीतते। शरीरकी शिरा-शिरा और रोम-रोम माँके लिए विकल हो, माँ-माँ पुकारने लगे। और वह सोचता, भोरसे साँझ तक माँका कार्य-क्रम—अब वह जगी होगी, गाय दूहती होगी। चौधरीके पानी-सानी करती होगी। छिपी कही कोनेमें प्रान पूछ रही है—“माँ पत्तर आया ?”

इस प्रकार वह माँके पीछे-पीछे फिरा करता और यो ही भूख और उदासीका अपना समय गुजार देता। परेशानियो और परिस्थितियोसे लड़ते-लड़ते उसका स्वभाव 'लड़ाका' हो गया था। हरदम वह गर्मी लिये रहता। मस्तिष्क अपनी विभिन्न अवस्थाओंसे संघर्ष कर रहा था। कभी एकदम शीतल और कभी एकदम उष्ण। कभी वह एक ही जगह बैठा रहता। सपने—सपने और सपनोंके सिवाय उसके पास कुछ नहीं रह गया था। लाल बागमें सुने भाषणोंकी कल्पना वह किया करता। संघर्षके ये भाषण उसे बहुत पसन्द आते। वह भीतर-भीतर अविद्विष्ट था, बाहर-बाहर विद्विष्ट था।

एक दिन एक लम्बी-सी लाठी वह कहींसे उठा लाया। उसे कंधेपर रखे बीच सड़कपर खड़ा हो गया। फिर स्वयं फौजी कवायदके आदेश चीखकर उनका पालन करने लगा। पहले 'अटन्शन' चिल्लाकर लाठी कंधेपर रखी, सलामी दी। उसे बन्दूककी तरह तानकर नीचे बैठ गया

और लगा, 'फायर' पर 'फायर' के ऑर्डर देने ! दर्शक तालियाँ बजाने लगे । फिर तपाकूसे वह उठ खड़ा हुआ, सलामी दी और 'कुइक्माच' गुँजाकर चाल चौगुनी कर दी ।

मुहल्ले-मुहल्लेमे वह प्रसिद्ध हो गया !

जब उसकी लाठीपर गूँजते 'फायर' बहुत बढ़ गये, तो एक दिन उस मुहल्लेके सूबेदारने उसे पीछेसे आकर पकड़ लिया और अशरण-शरण कानूनकी छायामे ले गया ।

'अवे, तू क्या करता है ?'

'कुछ नहीं ।'

'फिर, खाता क्या है ?'

'कुछ नहीं ।'

'तेरा नाम क्या है ?'

'कुछ नहीं ।'

'कहाँ रहता है ?'

'सडकपर ।'

—आवारागर्दीमे उसे गिरफ्तार कर लिया गया ।

जेलमे समरथको बड़ा अच्छा लगा । जगह बहुत तंग और छोटी थी, पर उस छोटी जगह रहनेवालोंके दिल उतने तंग न थे, जितने बड़ी जगह रहनेवालोंके होते हैं । समरथ जल्द ही सबसे हिलमिल गया । कितने भोले और सीधे लोग हैं वे ! उनमेसे कुछने कुछ अपराध जरूर किये थे, परन्तु अधिकांश निरपराध थे—जो उसकी तरह 'कुछ न करनेके लिए' पकड़ लिये गये थे । न्यायपतिने सबसे एक ही प्रश्न पूछकर स्वयं ही उत्तर दिया था—'कुछ नहीं करता, तो साला खाता किधरसे ?'

और समरथ अपने साथियोसे कहता—

“कहें भीख माँगकर—तो बम्बई में भीख माँगना भी जुर्म । लेकिन वे, जो भीख माँगनेके लिए लोगोंको मजबूर कर रहे हैं, उनके लिए कोई कानून और कोई सजा नहीं । कानून अमीरोंकी शातिके लिए है, ताकि हमारे क्रन्दन और क्रोधसे उनके आराम में खलल न पड़े ! रोटीकी हमारी माँगें उन्हें कर्णकटु लगती हैं । उन्हें यह समझ में नहीं आता कि रामराज्य में कोई भूखो भी मर सकता है ! कहते हैं, ये लोग “कुछ काम क्यों नहीं करते, आखिर हम भी तो दिन भर काम करते हैं !”

जेलमें समरथने दस्तकारी सीखी । अपने अपढ़ साथियोंको अक्षर-ज्ञान दिया । दस्तकारीसे उसके पास तीस रुपये जमा हो गये ! अवधि पूरी होने पर वह छूट गया ।

जजने छोड़ते हुए कहा—“आगे गुडागीरी मत करना माँगता । कुछ काम करने सकता । काम करो ।”

समरथ क्या कहता ? सो चुप रहा । मन ही मन मुसकराया और बाहर आया ।

दरवाजे पर पीपल सूख गया है । जामुनका पेड़ बड़ा हो चला है । खपरैल पिछली ओधी-बरखामें उड़ गई लगती है । कजरी गैयाँकी ठठरियाँ निकल आई हैं—फिर भी, वह आदमीको पहचानने में बम्बईके लोगोसे अधिक कुशल और सद्य है । जब रँभाने लगी तो समरथसे न रहा गया, उसके गलेमें दोनो बाँहे डाल दीं ।

बृद्धा अपने, हड्डियाँ-निकले-जवान बेटेका चेहरा देखकर थम-थमकर रो रही थी, जैसे किसी अबलाकी लहराती फसल पर पाला पड़ जायें ! नैन नीचे किये प्रान पास में खड़ी थी, वह न राज़ी थी, न नाराज थी । बस, उसके दिलमें कुछ-कुछ हो रहा था । वह कहना चाहती थी—‘हम कहें... बरज दिया था, हम कहे न जाओ. ’

समरथ बोला—“न रो माँ, और यो न देख प्राण ! कुशासनकी वेदी पर बलि होने वाले हमी अकेले नहीं है । देशके मरघटपर परिवारके परिवार मिट रहे हैं ! जो सरकार अपने बच्चोको रोटी नहीं दे सकती, वह उन्हे ‘कुछ भी’ करने को मजबूर करती है, और दुनियाका कोई भी कानून उन्हे दोषी नहीं बता सकता ।”

माँको समरथ इस बार अधिक पागल लगा ।

फिर भी माँ, बेटा और प्राण—इसलिए जी रहे थे कि वे अपनी मिट्टी पर खड़े थे । उनके शरीर सूखे थे और पेट खाली थे । उनकी विप्रमातृस्था पर सूखे नीमपर रहने वाला अर्थ-पिशाच अट्टहास कर रहा था ! उसे कदाचित् इन्सानकी सघर्ष-परम्पराका बोध नहीं था, इसीलिए वह हँस रहा था ।



## मोहन राकेश

कबीरपंथी वृत्ति और विषम परिस्थितिके द्वन्द्वने मोहन राकेशके कथाकारको जन्म दिया है। अभी सोलहवें वर्षमें कदम रखा था कि पिताका साया उठ गया। फिर जो अराजक सघर्षका दौर शुरू हुआ वह आज भी समाप्त होनेका नाम नहीं लेता। जन्म अमृतसरमें सन् १९२५ में हुआ, संस्कृतमें एम. ए. कर छात्रवृत्ति पाई, दो साल होटलोमें तफरीह करते रहे, एक साल फ़िल्मोंके चक्करमें बिताया, बेकारीके कमर तोड़ देनेपर, जीविकोपार्जनके सिलसिलेमें बहते हुए तिनकेकी तरह, इन नौ वर्षोंमें, अनेक किनारे छुये। सम्प्रति डी. ए. वी. कॉलेज जालंधरमें प्राध्यापक नियुक्त हैं।

किन्तु ये नीरस तथ्य, उस व्यक्तिके जीवन और चरित्रका चित्रण करनेमें सर्वथा असमर्थ है, जिसका घर कहीं भी न होते हुए सर्वत्र है; जो स्थायी रूपसे विस्थापित है, पर फिर भी निराधार नहीं; और जिसकी रचनाओंमें उसका अपना व्यक्तित्व परोक्ष रूपमें इस कदर विद्यमान रहता है कि उसकी कहानियाँ पढ़ यही अनुभूति होती है मानो जाड़ेकी किसी कुहरीली रातमें अलावके पास बैठे कोई किस्सा सुन रहे हो। मोहन राकेशकी कहानियोंको विशेषणोंकी अपेक्षा नहीं—वह सच्चे मानोमें कहानियाँ हैं और कुल्ल नहीं। कदाचित् यही कारण है कि मोहन राकेश नये कहानीकारोंमें अग्रणी हो गये हैं।

आपका एक यात्रा-वर्णन 'आखिरी चट्टान तक' और दो कहानी-संग्रह 'इन्सानके खण्डहर' तथा 'नये बादल' प्रकाशित हो चुके हैं।

# • वासनाकी छायामें

—मोहन राकेश

यह जालन्धर है ।

मुझे इस बातसे सरोकार नहीं कि यह शहर कितना पुराना है, और यहाँ कौन-कौन-सी तरकारियाँ पाई जाती हैं । मेरा इस शहरसे इतना ही वास्ता है, कि मैं यहाँ हूँ और यहाँ रहते हुए इस शहरका एक नागरिक हूँ ।

मैं जालन्धरका नागरिक हूँ क्योंकि नागरिक होनेके सभी कष्ट आजकल यहाँ रहकर भेल रहा हूँ । सवेरे-शाम ग्राडट्रक रोडकी धूल फाँकता हूँ । दूधकी बजाय दो आने गिलास वाली चाय पीता हूँ । घरसे दफ्तर तक पहुँचनेके लिए एक मील पैदल चलता हूँ और दो मील बसमें जाता हूँ । यही मेरी नागरिकता है । जिस नगरमें यह नागरिकता ढोई जा रही है, उसका नाम है जालन्धर ।

अजीब है । कहते हैं कभी कोई जालन्धर नामका राज्ञस था । उसने यह नगर बसाया था । बसाया होगा । मुझे क्या ? न बसाया होता तो मैं हंशियारपुरमें रहता, लुधियानामें रहता या फगवाडामें ही जा बसता । जहाँ कहीं भी रहता, मेरा गढवाली नौकर रोटियों इसी तरह जलाता जैसे यहाँ रहकर जलाता है । पर खैर जी, राज्ञसराज जालन्धरने यह नगर बसा दिया, और उसकी सन्तानने यहाँ गलियों बनवाई, गलियोंमें घर बनाये, घरोंमें सूराख रखे, जिनसे धूलमें भुनी हुई हवा छन-छनकर उनके कोठरोंमें आती रहे, और उस हवासे गैस लेकर वे नई नस्लोंका निर्माण करते रहे, और राज्ञसराज जालन्धरका नाम इतिहासमें नहीं, तो कमसे कम भूगोलमें ही अमर रहे ।

दो-तीन दिन मैं पुष्पाकी बात सोचता रहा हूँ, जिसे उस दिन घरके सामने पम्पपर पानी भरते देखा था। पुष्पाकी आँखें मोटी कौड़ियो जैसी हैं। पहले दिन उसने दो-तीन बार आँख भरकर मुझे देखा, तो मुझे लगा था कि या तो मेरे बाल बहुत अधिक सफेद हो गये हैं या मैं अपनी आयुसे चार-पाँच साल छोटा लगता हूँ। नहीं तो कोई कारण नहीं था कि वह सहज विश्वास भरी दृष्टिसे मुझे देखती मानो कह रही हो, चलो, आँख मिचौनी खेलते हो ?

पुष्पाकी आयु तेरह सालकी होगी ? अधिक-से-अधिक चौदह साल होगी। उसका रङ्ग गोरा पञ्जाबी है। उसके शरीरको पूरा खिलनेमें अभी दो-तीन साल हैं। फिर भी उसकी आँखोंमें वह विस्मय भर गया है, जो यौवनका अर्थ पहले-पहल समझनेपर कुछ दिनोंके लिए रहता है। उसे आश्चर्य है कि क्या वह अकेली ही जानती है कि गुलाबका रङ्ग गुलाबी क्यों है ?

“पानी ले लीजिए” पुष्पाने अपनी बालटी हटाकर मुझसे कहा।

“नहीं तू भर ले !” मैंने इस विश्वासके साथ कहा कि वह मेरे सफेद बालोंका सम्मान कर रही है।

“आपको दफ्तर जाना है, भर लीजिए,” उसने फिर कहा। मुझे खुशी हुई कि उसे मेरे अस्तित्वका पता है, काम-काजका पता है और उसका लिहाज मेरे सफेद बालोंतक सीमित नहीं।

“तेरा नाम क्या है ?” मैंने अपनी बालटीमें पानी भरते हुए पूछा।

“पुष्पा” उसने सङ्कोचके साथ उत्तर दिया।

“किस श्रेणीमें पढ़ती है ?”

वह ओर भी सकुचित हो गई ! बिना मेरी ओर देखे बोली—“मैं स्कूल नहीं जाती।”

“क्यों ?” मुझे आश्चर्य हुआ कि इतनी अच्छी आँखोवाली लड़की स्कूल क्यों नहीं जाती ? वैसे तो मैं किसी लड़कीसे लगातार तीन सवाल नहीं पूछता, क्योंकि वे इसे घनिष्टता समझ बैठती हैं। पर पुष्पा अभी उस रेखासे दूर है, जहाँ जाकर एक लड़की मेरे लिए लड़की बन जाती है।

“मैं यहाँ नहीं रहती,” पुष्पाने कुछ इस तरह कहा जैसे मेरा प्रश्न त्रिकुल असंगत रहा हो। “मैं बापूके साथ गाँवसे आई हूँ। बापूको यहाँ काम है। काम हो जाये, तो फिर हम अपने गाँव चले जायेंगे।”

मैंने देखा कि उसकी आँखोने अभी लजाना नहीं सीखा। उसके अन्दर अभी वही ताजगी है, जो नई बहारकी गोभी में होती है। वह गाँवसे आई है और गाँव चली जायगी। वहाँ जाकर वह सरसोके पीले-पीले फूलोंसे खेलेगी और मीठा नरम-नरम साग खायेगी। कोई रातको आगके पास हीर गायेगा, तो वह विभोर होकर सुनेगी। नहीं तो सरसराती हवाका गीत ही सही—वह उसके रोम-रोम में नीट भर देगा। वह अपनी अगूरी आँखोको तारोकी किरणोंमें नहलाती हुई सो जायेगी।

सवेरे उठकर वह पशुओंको चारा देगी। प्रभातीके गीत उसे फुसलायेगे, तो वह नगे पैरो नदीकी ओर भाग जायेगी। वहाँ जब तक मन में आयेगा, तैरती रहेगी। फिर लौटती हुई धानके खेतसे मूलियों और शलजम उखाड़ती लायेगी। उसके गीले बाल रूखे ही सूख जाये, तो सूख जाये। उसके फूटते हुए वस्त्र चाहे उसकी कमीजमें कटोरियाँ-सी निकाल दे, उसकी आँखोकी माधुरी रस घोलती ही रहेगी। वह गणितके प्रश्नोंसे नहीं उलझेगी। वह भूगोलकी रेखाएँ नहीं याद करेगी। वह कोष लेकर कविताओके अर्थ नहीं हूँढेगी। वह जिधर देखेगी, उधर कविताएँ बिखर जायेंगी।

अचानक मैंने देखा कि मैं पप चलाये जा रहा हूँ, हालाँकि बाल्टी भर चुकी है और पानी इधर-उधर बिखर रहा है। अपनी अन्यमनस्कता



छिपाने और पुष्पाके सौजन्यका बदला चुकानेके लिए मैंने अपनी बालटी उठाई और उसका सारा पानी पुष्पाकी बालटी में डाल दिया।

“ऊई !” मैंने उसे कहते सुना। “मेरी बालटी छू गई।”

“छू गई ?” मैंने कुछ लज्जित और अपमानित होकर पूछा। यह नहीं कि मेरा पहले कहीं तिरस्कार नहीं हुआ। तिरस्कार तो प्रायः हो जाता है, पर वही, जहाँ मैं अपने तीनके पाँच करता हूँ। वहाँ मुझे तिरस्कारकी आशा भी रहती है। पर उपकारके बदले तिरस्कार मुझे उतना ही चुभता है जितना तिरस्कारके बदले उपकार।

पुष्पाने शायद मेरे छिले हुए भावको भाँप लिया, क्योंकि उसने क्षमा माँगनेके ढंगसे कहा—“मै बालटी मॉजकर लाई थी। आपकी बालटी मँजी हुई नहीं थी।”

यह सुनकर मेरी आत्मा पुनः उदार हो गई। मैंने मन में दोहराया कि बालटीको राखसे मल जाये, तब जाकर वह पवित्र होती है। फिर चाहे गलीज फरशपर रखकर उसमें पानी भरों, चाहे चबाई हुई दातुनोके ढेरपर।

“मेरी बालटी मँजी हुई थी। मैंने सवेरे मॉजी थी,” मैं झूठ बोला। झूठ बोलना मेरी आदत है। बिना कारणके झूठ बोलता हूँ। दिनमें कई-कई बार बोलता हूँ। यह मुझे अच्छा लगता है। मैं आपसे सच कह रहा हूँ।

जो मुँहसे झूठ नहीं बोलता, वह मनमें झूठ बोलता है। जो मनमें झूठ बोलता है, वह मुझसे ज्यादा खतरनाक है। क्योंकि वह सचका दावेदार है, इसलिए वह और भी झूठा है।

मेरे झूठका परिणाम ठीक निकला। पुष्पाने विश्वास नहीं किया। झूठ बोलनेका सबसे बड़ा लाभ यह है कि लोग उसपर विश्वास नहीं करते। पुष्पाने मुसकराकर बालटीका पानी गिरा दिया और जमीनसे

मिट्टी उखाड़कर बालटीको मलने लगी। मैं अपनी बालटीमें फिरसे पानी भरने लगा।

किसीने दूरसे पुष्पाको पुकारा, “पप्पी !”

“आई बापू !” उसने पुकारका उत्तर दिया।

“पानी नहीं भरा ?” आवाज आई।

“नहीं बापू !” उसने उत्तर दिया।

“जल्दी कर, सिरमुड़ी !”

मैंने उधर देखा तो एक लंबा बूढ़ा जाट एक कोठीके बरामदेमें खड़ा सिरपर पगड़ी लपेट रहा था। एक तो उसकी आवाज ही कर्कश थी, दूसरे उसकी सफेद दाढ़ी ऐसी नोकदार थी, जैसे उसीसे वह मुर्गियाँ भट-कता रहा हो। उसकी आँखोंका रंग बतलाता था कि उसने रातको खूब शराब पी थी, क्योंकि नशा अभी तक उसकी पुतलियोंमें तैर रहा था। पगड़ी लपेटकर उसने दाढ़ीपर हाथ फेरा और पुनः पुष्पाको आवाज दी—“जल्दी कर, लाडकी बच्ची, नहीं तेरा भोटा सेकूँ।”

यह देखकर कि मेरी बालटी अभी आधी भरी है, मैं जल्दी-जल्दी पंप चलाने लगा। जाटने पीठ मोड़ ली। पुष्पा मेरी ओर दो कौड़ियोंका एक ढोंव फेंककर मुसकराई। उसकी मुसकराहटने मुझसे कहा—तुम बेव-कूफ हो। बापूकी गालियाँ बेटीको नहीं लगा करतों।

उसके बाद दो-तीन बार मैंने पुष्पाको देखा। न जाने क्यों उसे देखकर मुझे गहरे लाल रंगके मखमली फूल याद आ जाते। उन फूलोंको मैं बचपनमें अपने कोटपर लगाया करता था।

दो-तीन बार पुष्पाके बापूको भी मैंने देखा—दातुन करते, जूटा बाँधते या गालियाँ बकते उसकी मुझपर कुछ ऐसी छाप पड़ी, जैसे बर-सात होकर हटी हो, और पुराने गले हुए दीनके छपरपरसे महीनोंका सूखा बीठ पानीके साथ गल-गलकर टपक रहा हो।

आज दफ्तरसे लौटते हुए मैं अट्टा नकोदरसे फरलॉग भर ही आया था कि मैंने देखा सफेद दाढ़ीवाला वह जाट मुझसे दो कदम हटकर साथ-साथ चल रहा है। मैं जरा तेज चलने लगा। वह भी तेज चलने लगा। मैंने चाल धीमी कर दी। उसने भी चाल धीमी कर दी।

मुझे यह कभी सहन नहीं कि मैं किसीके साथ चलों, क्योंकि जिसके साथ मैं चलता हूँ, वह अपेक्षा करता है कि मैं उसीकी तरह चलों और उसीकी तरह सोचूँ। पर कोई मेरे साथ चले तो यह मुझे भला लगता है, क्योंकि वह मेरी तरह चलता है और अपनी तरह सोचता है।

“कहाँ चल रहे हो, बाबूजी?” पुष्पाके बापूने मेरा ध्यान अपनी ओर खींचनेके लिए पूछा।

“मॉडल टाउन,” मैंने इस अन्दाजमें कहा कि वह जान ले कि मैं एक महत्वपूर्ण व्यक्ति हूँ, और सिर्फ इसलिए पैदल चल रहा हूँ कि मुझे संध्याके समय पैदल घूमनेका शौक है।

“हम भी वही चल रहे हैं। डाक्टर गुरद्वखश सिंह मदानको जानते हैं? वह हमारे ही गाँवके हैं। शहरमें आकर हमारा उन्हींके घर डेरा होता है।” फिर मेरे बराबर आकर वह बोला, “चलो राह चलते एकसे दो भले।”

मैंने कहना तो चाहा कि मेरे साथ चलनेमें उसे चाहे लाभ हो, उसके साथ चलनेमें मुझे कोई लाभ नहीं, पर इसलिए नहीं कहा कि कहीं दोआब का जाट जोशमें आकर मेरे सिरका पंजाब बना दे।

“आप इधरके ही हैं?” जाटने अब परिचय बढ़ानेकी चेष्टा की।

“नहीं,” मैंने उत्तर दिया।

“आप जालन्धरमें कबसे हैं?” मेरे साथ चलते हुए जाटने फिर पूछा। मैंने उचित समझा कि वह जितने सवाल पूछ सकता है, उन सबका

उत्तर एक साथ ही दे दूँ, ताकि उसकी जिज्ञासा पूरी तरह शान्त हो जाय ।  
इसलिए मैंने कहा:—

“मैं दो महीने से यहाँ हूँ । सेक्रेटेरियट में असिस्टेंट सुपरवाइजर हूँ ।  
वेतन एक सौ बीस रुपये है । ऊपरी आमदनी हो जानेकी आशा है ।  
अभी व्याह नहीं हुआ । लडकी देख रहा हूँ । पढाईकी चौदह जमाते पास  
की है । तरकारियोंमें मुझे गोभी पसन्द है । फलोंमें मैं आम पसन्द करता  
हूँ । हर इतवारको शरीरपर कड़वे तेलकी मालिश करता हूँ । मेरी रोटी एक  
गढ़वाली पकाता है । उसकी उमर चालिस साल है । मेरे वरतन उसकी  
लडकी मलती है । उसकी उमर बीस साल है ।”

यह सब उसे सुनाकर मैंने मनमें कहा : अब पूछ ताऊ, क्या पूछता है ?  
पर जाटने फिर पूछा ही, “क्यों, जी, गढ़वालीने अभी तक लडकीका  
व्याह नहीं किया ?”

यह सीमा थी । पर मैंने धैर्य नहीं छोड़ा जहाँ बिगडैलसे वास्ता पड़े,  
वहाँ मैं धैर्य नहीं छोड़ता । सन्तोष-असन्तोष अपने घरकी चीज हैं । पर  
पीठका दर्द जाकर डाक्टरको दिखलाना पड़ता है । मुझे अपनी आत्मापर  
इस बातका गर्व है कि वह हवाका रुख देखकर फौरन तिरछीसे सीधी हो  
जाती है । मैंने जाटका प्रश्न विलकुल स्वाभाविक समझकर उसका  
स्वाभाविक-सा उत्तर दिया, “उसकी लडकी विधवा है ।”

“अच्छा, जी, विधवा है । फिर तो वह उसे दूसरी जगह बिठायेगा ?”

मैं इतिहासका विद्यार्थी होता, तो गढ़वालीसे पूछ सकता था कि वह  
अपनी लडकीको दूसरी जगह बिठायेगा या नहीं ? पर इतिहासमें मेरी रुचि  
तैमूरलङ्गकी लडाई तक ही रही है, उससे आगे नहीं । फिर भी जाटको तो  
उत्तर देना ही था । उसकी मूँछोंके बाल अँगडाइयाँ लेने लगे थे । मैंने  
रास्ता काटनेकी नीयतमें कहा, “वह देखभाल तो कर रहा है । आगे  
लडकीकी तफ्तीर है ।”

“लड़की देखनेमें अच्छी है ?” जाटने पूछा ।

“देखनेमें भी अच्छी है, और स्वभावकी बहुत मीठी है ।” मैंने यह इसलिए कहा कि कम-से-कम बातमें तो रोमास रहे ।

“अच्छा, जी ?” जाट बोला, “सच पूछो तो सबसे बड़ा गुण यही है । काम अच्छा करती है ?”

“काममें वह सुस्त है । हाँ, बातें बहुत करती है ।”

“अच्छा, जी ?” जाट बोला । “रगोंमें जवानी हो तो काम नहीं सुहाता ।”

उसकी टिप्पणीका मजा लेते हुए मैंने उसकी ओर देखा तो उसकी आँखोंमें भूखी विल्लीकी-सी जलन थी । उसके हाठ बूढ़ी वासनाकी लारसे गीले हो गये थे । उसका रसभङ्ग करनेके लिए मैंने रुककर जूतोंको झाँडा और कहा, “इन कच्चे रास्तोंपर, सरदार जी, जूतोंका तो कचूमर निकल जाता है ।”

जाटने मेरे अभिनय और शब्दोंकी ओर ध्यान नहीं दिया । अपनी ही धुनमें कहा, “ब्राबूजी, आज आपके गढ़वालीसे मुलाकात हो सकती है ?”

“क्यों ?” मैंने उसकी ओर देखकर पूछा । मुझे लगा कि वासनाकी लार चू-चूकर जम गई है और इन्सानके आकारमें धरतीपर रेंग रही है । अगर इसे आग दिखा दी जाये, तो यह यही पित्रलकर तेल हो जाये ।

“मुझे एक जमींदारनीकी जरूरत है, ब्राबूजी,” जाटने कहा । “मैं जमींदार हूँ । पासके गाँवमें मेरी चार एकड़ जमीन है । पाँच एकड़ जमीन जिला करनालमें है । मैं यहाँके गाँवका नम्बरदार हूँ । घरवाली मर गई है । एक जवान लड़की है । उसका ब्याह कर दूँ तो मेरी देख-भाल करनेवाला नहीं । घरमें एक गाय और दो भैंसे हैं । घरवाली आ जाये तो उनका चारापानी हो जायेगा, और मेरी भी दो रोटियाँ हो जायेगी ।” फिर उसने

मेरी बाँह पकड़कर मिन्नतके लहजेमें कहा, “आपके गुण गाऊँगा, सरकार, मेरा यह काम जरूर करा दीजिये।”

वह बोल रहा था तो उसके शब्दोंकी गूँज अपना अर्थ मुझे और ही तरह समझा रही थी। वह कह रही थी, मुझे औरतके गरम मासकी जरूरत है, बाबूजी। मैं बूढ़ा चाहे हूँ, पर मेरे अकेलेके पास नौ एकड़ जमीन है। घरमें गाय, भैंस और सब कुछ है, सिर्फ औरत ही नहीं है। मेरी अपनी हड्डियोपर गरम मास नहीं रहा, पर बूढ़ी हड्डियाँ गरम मासका चारा अब भी माँगती है। इनके लिए चारा चाहिए, सरकार। एक गरीबकी जवानीका भुर्ता कर दीजिये।

किसी तरह गला छुड़ानेके लिए मैंने जाटसे कहा—“गढवाली पजा-त्रियोंके साथ व्याह नहीं करते, सरदारजी। उसका बाप उसे किसी गढवालीके ही घर बिठायेगा।” मेरी बात मुनकर जाट जरा ढीला हो गया। उसके मूँछोंके बाल, जो अब तक अँगड़ाइयाँ ले रहे थे, अब सुस्त होकर बैठ गये। वह ठढी साँस लेकर बोला—“कहीं भी कामयाबी नजर नहीं आती। लोग कहते थे कि रिफ्यूजी कैम्पोसे मिल जाती है। पर मैं सवा सालसे चक्कर लग-लगाकर हार गया, कोई नहीं मिली। डाक्टर साहबने एक पहाडन चार सौ में ठीक की थी, वह मेरा दाढ़ा देखकर मुकर गई।”

“पर तुमको तो घरकी देख-भालके लिए ही जरूरत है न, सरदार जी ?” मैंने कहा—“एक नौकर क्यों नहीं रख लेते ?”

“नौकर उतना काम नहीं दे सकता, बाबूजी। जमींदारका घर है। चार आनेवाले, चार जानेवाले। फिर सेवाके लिए एक गाय, दो भैंस। इतना कुछ तो घरवाली ही संभाल सकती है।”

“तो तुम चाहते हो कि जवान लडकी आकर तुम्हारे गुर्दे भी ठीक करे और तुम्हारी गाय भैंसोका दूध भी दोहे ?”

“वह क्यों दोहे, सरकार, वह आरामसे बैठे । दूध दोहनेको हम क्या मर गये हैं ?”

यह उसकी सौदेबाजी थी । इन्सानकी सौदेबाजी आदमके कालमें यो ही चली आ रही है । धरती फल-फूल और धान उगलती है, वह उन्हें उखाड़ लेता है और सौदा करता है । धरती धातु-पत्थर छिपाकर रखती है, वह उन्हें खोद लेता है और सौदा करता है । और वह न चले, तो धरतीका सौदा करता है । वह भी न चले, तो अपना ही सौदा करता है ।

यह आजमानेके लिए वह अपने आपको कहाँ तक सौदेमें डालता है, मैंने उपदेशके रूपमें कहा, “इस उमरमें कोई मिलेगी भी तो ऐसी ही मिलेगी, सरदारजी, जो पहले कई घरोंमें घूम चुकी हो, और जिसे दूसरा ठौर ठिकाना न हो । ऐसीको घरमें डाल लो ?”

मैंने देखा जाटकी मूँछोंके बाल फिर अंगड़ाइयाँ लेने लगे हैं । उसने आगे बढ़कर मेरी बाँह पकड़ ली और बोला—“आपके पास है बाबूजी ? जरूर आपके पास कोई है ।”

मैंने नहीं सोचा था कि मेरे शब्दोंका यह अर्थ निकल सकता है । थोड़ा भद्दा पड़कर मैंने स्पष्ट करनेके लिए कहा—“मेरा यह मतलब नहीं सरदारजी, कि मेरे पास कोई है । मैं तो केवल बातके लिए बात कर रहा हूँ ।”

“नहीं, बाबूजी, आपके पास जरूर कोई है ।” जाटने विनय और अनुरोधके साथ कहा । मेरी पगड़ी अपने पैरोपर समझो और मेरा काम करा दो । दो चार सौ मैं आपके सिरपर वार दूँगा—एक बार अपने मुँहसे कह दो कि है ।”

मैंने जाटको फिर सिरसे पैर तक देखा । उसकी भौहें सफेद हो रही थी । आँखें छोटी होकर केवल दाग रह गई थी । गालोंका माँस लटक आया था । दाँत आधे टूट चुके थे । जो दाँत शेष थे, उनकी जड़ों में लहू रिस-

रिसा रहा था। बोलते-बोलते उसका थूक दाढ़ीके सफेद बालोंमें फैल गया था फिर वह मुझसे विश्वास माँग रहा था कि मैं कह दूँ कि है—एक नारी है जो उसके लिए चारा बन सकती है, जो अपना यौवन रोंधकर उसे खिला सकती है, क्योंकि वह जमींदार है और उसके घरमें एक गाय और दो भैंसे हैं, उसकी हड्डियोंमें जितना जोर है, उससे कहीं अधिक उसकी गॉठ में पैसा है।

“बोले नहीं, बाबू जी ?” जाटने व्याकुल उत्सुकताके साथ पूछा।

“मैं किसीको नहीं जानता, सरदार जी” मैंने धीरेसे उत्तर दिया।

मॉडिल टाउन अब सामने ही था। पक्की सड़कपर आकर मेरी नजर पुष्पापर पड़ी, जो बरामदे में खड़ी शायद अपने बापूकी प्रतीक्षा कर रही थी।

मुझे फिर लाल फूल याद हो आये। मैंने जाटकी ओर देखकर पूछा—  
“तुम अभी कुछ दिन तो हमारे पड़ोसी हो न, सरदार जी ?”

“नहीं जी, हम कल गाँव जा रहे हैं,” जाटने कहा। “यहाँ अब किसके भरोसे बैठे रहे ? वही चलकर देखभाल करेंगे और नहीं तो बदले में तो लडकी मिल ही जायगी।”

“बदले में कैसे ?” मैंने हैरान होकर पूछा।

“गाँवका रिवाज है, बाबू जी। बराबरकी उमरके वर हो, तो वहाँ दो घर आपस में लडकियों बदल लेते हैं। मैं जाकर अपने जैसे ही कोई घर देखूँगा।”

मैंने देखा, पुष्पा प्रतीक्षा कर रही है। बापू जो गाली देता है वह गाली उसे नहीं लगती। पर बापू जो गाली नहीं देता, वह गाली उसे लग रही है।



## सत्येन्द्र शरत्

१९४६ में प्रयाग विश्वविद्यालयसे एम० ए० की डिग्री लेकर तीस वर्षीय सत्येन्द्र शरत् ने महसूस किया कि हिन्दुस्तानी फिल्मोंका उद्धार किये बिना निस्तार नहीं । सो 'प्रतीक' द्वैमासिकके ( जिसके वह सहायक सम्पादक थे ) बन्द होनेपर वह १९५० में फिल्मोंकी मायानगरी बम्बई जा पहुँचे । चार वर्ष वहाँ भूक मारी; 'जिन्दगीको विभिन्न एङ्गल्ससे लिए विभिन्न क्लोज-अप्समें देखा'; तथा एक असफल फिल्म ( नाज ) और एक सफल फिल्म ( पहली भूलक ) के असिस्टेण्ट डायरेक्टर रह १९५४ में वापस लौट आये । शरण-स्थल बनाया आकाशवाणीके दिल्ली-केन्द्रको, जहाँ आजकल नाटक लिखते हैं और उन्हें निर्देशितकर हवामें उड़ा देते हैं । यह काम कबतक मन बाँध रखेगा, ये कहना कठिन होगा, क्योंकि इससे पहले किये गये सभी पेशे—कलकों, टेलीफोन ऑपरेटरी, सहायक सम्पादकी मन देरतक बाँध रखनेमें असमर्थ रहे हैं ।

कहानियाँ लिखनेसे अधिक कहानियाँ पढ़ने और उन्हें याद रखनेका शौक है । ये शौक न होता तो प्रस्तुत संग्रह कैसे तैयार होता ? अतः दो कहानी-संग्रह 'नील कमल', 'कुहासा और किरण' एक एकाकी-नाटक संग्रह 'तारके खम्भे, और एक नाट्य-रूपान्तर 'कुन्दमाला' प्रकाशित हो चुके हैं । हास्य-रसके नटखट नाटकोंका एक संग्रह 'करेसी नोट' प्रेसमें है ।

## • हमपेशा

—सत्येन्द्र शर्मा

अमलसे कहा गया था कि वह इन्तजार करे, सो वह बैठा इन्तजार करता रहा ।

इस तमाम दौरानमें वह क्या-क्या सोचता रहा, अब इस सबका उल्लेख तो फिजूल है, क्योंकि उतनी देरमें न जाने कितनी बातें, कितने विचार, कितनी स्मृतियों उसके दिमागमें उछल-कूद मचा एक ओरसे दूसरी ओर निकल गईं । सन्नेपमें इतना ही कहा जा सकता है कि अमल को उस दिमागी हलचलका यदि नकशा बनाया जाता तो 'कर्व' बड़ा बॉगा-तिरछा और गोरखधन्वे-नुमा बनता ।

उन कलाकार महोदयका चित्र अब भी उसी तरह दीवारपर मौजूद था—उसी तरह खिलखिलाकर हँसता हुआ । अमलने जरा उस तरफ देखा और खट्से अपनी दृष्टि हटा ली । क्या ठीक है ? उस दिनकी तरह कमबख्त फिर आँख मार दे ? या मुँह बनाकर चिढ़ाने लग जाय ?...आज वह उन कलाकार महोदयको ऐसा अवसर ही न देना चाहता था, क्योंकि वह अपनी हार स्वीकार कर चुका था । अगर स्वीकार न करता तो चालीस ही रुपयेपर अपने उन तीनो पेंसिल-स्केचोंको भार्गवजीके पास बेचने न आता । उस दिन तो वह बड़ी शानसे ( हालाँकि रास्तेमें रोते हुए ) अपने स्केचोंको वापस ले आया था । लेकिन एक सप्ताहके अन्दर ही अन्दर उसे मजबूर होकर उन्हें भार्गवजीके पास बेचने आना पड़ा था । ( उसके छोटे भाईका पत्र आया था कि अमल फौरन ही तीस रुपये भेज दे—कॉलेजकी फीसके लिए । अब अधिक नहीं टाला जा सकता । तीन माह हो गये हैं—अब

नाम कट जायगा। और तब अमलको विवश हो अपनेको तोड़ना पड़ा था। विवशता कितनी बड़ी चीज़ है। ...)

उस दिनकी तरह आज मिसेज भार्गव नीचे नहीं आई—अमल सोचने लगा। शायद है नहीं इस समय कोठीमें.. तभी उसे ख्याल आया, आज सुबह उसने अखबारमें देखा था—शामको मिसेज दत्तके बँगले पर 'होम डेकोरेशन क्लब'की मीटिंग है। 'ठीक है। वही गई होगी।' उसने मन में आप ही आप कहा और सोफेपर बड़े इतमीनानसे पीठ टिका डुलक-सा गया।

अचानक उसे किसी साड़ीकी सरसराहट सुनाई दी। मिसेज भार्गव आ गई है—यह ख्यालकर हाथोंको नमस्तेकी रिहर्सल कराते हुए वह भटकेके साथ सोफेसे उठ खड़ा हुआ और पीछे घूम गया। लेकिन उसी तेजीसे उसे अपने हाथ नीचे करने पड़े, क्योंकि आगन्तुका मिसेज मृदुला भार्गव बी. ए. नहीं, कोई और कुमारी जी थीं जो अपने में ही सिमटी-सिमटी-सी थीं, जैसे कोई उन्हें छूने जा रहा हो. और जो अमलको देख एक अनोखे अंदाजसे भेंपी थीं—इस अंदाजसे कि अमलके उस बुके हुए से चेहरेपर मुसकराहटकी एक चंचल रेखा दौड़ गई थी और उसका चेहरा ठीक ऐसे ही चमक उठा था जैसे किसी छोटी-सी वर्षाके समाप्त होते ही सुहावनी-सी धूप निकल आई हो।

कुमारीजीके पीछे भार्गवजीका दरवान था—हुकुमके गुलाम-सा। वह युवतीसे बोला, "आप यहीं बैठिये। बाबूजीके पूजासे उठते ही मैं आपकी खबर कर दूँगा। इतने आप बैठिये।"

युवतीने सिर भर हिलाया, जिससे उसके कानोंके बुंदे अत्यंत सुंदरतापूर्वक हिल उठे और साड़ी सँभालती हुई वह बड़े एहतियातसे सोफे पर बैठ गई।

युवती काफी सुंदर थी। साथ ही कुछ फिल्मी फैशनके साथ सजी हुई थी। अमल कुछ देर तक उसकी ओर देखता रहा—सरसे पैर तक। “कॉलेजी गुड्डी” बहुत निष्कर्षमय ढंगसे तब उसने मन ही मन कहा और कुछ उपेक्षाके साथ अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया।

कॉलेजी गुडियाओसे अमलको कोई खास हमदर्दी नहीं है, बल्कि एक तरहसे उनके प्रति कुछ उपेक्षाका ही भाव उसके मनमें है। फैशनेबल लड़कियोंको देख वह हमेशा मन ही मन कुढ़ा है। कपड़ों, बनाव-शृंगार और सिनेमा आदिके खर्चोंको देखिये तो लगता है कि इनके पिता छः सात सौसे कम तो क्या ही पाते होंगे—तभी तो घर-परिवारके खर्चोंको निपटाकर वह इनकी ‘शिक्का-दीक्का’के लिए (या ज्ञान-प्राप्तिके लिए) सौ-डेढ़ सौ भेज पाते हैं, जिनकी होली या नुमाइश ये इस प्रकार करती हैं। साथ ही पोज इतना करेगी कि बस। और इस पोजको देख अमल इन ‘इण्टैल्क्चुअल्स’की ‘इण्टैल्क्ट’ पर हमेशा ही हँसा है। कितनी कमजोर भित्तिपर ये नेकबख्त गुमान करती हैं ?...पिता (और विवाहके बाद पति) के पैसोंपर। कल यदि आयका यह साधन हट जाय तब ? फिर कैसे जीवनसे समझौता होगा ?... तब शायद. (हटाओ जी, मैं भी क्या बेकारकी बातें सोच रहा हूँ ?). ‘टीज सोशल पैरेसाइट्स’ उसने युवती को देखते हुए आप ही आप गुनगुनाते-से स्वरमें कहा और फर्शपर बिछे कालीनके अकनको देखने लगा।

“भार्गव जी कितनी देरमें नीचे आयेगे ?” यह प्रश्न सुन अमलने सिर ऊपर उठाया। देखा, प्रश्न उसीकी ओर डरते-डरते-से देखकर किया गया था। जाने क्यों उसकी उपेक्षा और घृणा जाग उठी, और उसने बहुत ही उज्जड तरीकेसे लहमरूपमें जवाब दिया, “किसे मालूम साहब ? मुझे कह कर तो वह पूजा पर बैठे नहीं थे कि इतनी देर तक पूजा करूँगा।

जब आयेंगे तब अपने आप ही पता चल जायगा । कोई सुई तो हैं नहीं वह, जो दिखायी न पड़े !”

युवती अपनेको अपमानित-सी महसूसकर छतकी ओर जाने वाली सीढ़ियोंको देखने लगी । अमल उसी तरह निर्विकार भावसे ( जैसे उसके लिए यह अत्यन्त साधारण बात हो ) कालीनका अकन देखता रहा । ( यो मनमे खुश हो रहा था—क्या सिकसर दिया है बहनको ! अब दौड़े न फील्ड मे ! )

तभी ऊपरसे भार्गवजीकी गूँजती हुई आवाज सुनाई दी—“दर-वान !” और दूसरे ही मिनट वही आदमी—जो अमलको भी बैठा गया था और युवतीको भी—एक हाथसे पगड़ी सम्हालता हुआ, कुछ ऐसी ब्रह्मवासीके साथ दौड़ता हुआ सीढ़ियों चढ़ने लगा, मानो ऊपर छतपर आग लग गई हो । तीन-एक मिनट बाद वह लौटा और अमलके निकट आकर बोला, “बाबूजीके सिरमे दर्द हो रहा है आज । नीचे नहीं आ सकेंगे । आप ही ऊपर चले चलिये । अपने सोनेके कमरेमे है ।”

और कोई अवसर होता तो अमल अपने स्वभावानुसार अवश्य कहता, ‘नो, लेडीज फर्स्ट !’ लेकिन एक तो उसे कुछ जल्दी थी, और दूसरे कॉलेजी गुडिया होनेके कारण उस युवतीके प्रति उसके मनका आक्रांश व तिरस्कार अभी तक दूर नहीं हुआ था, वह बिना उस युवतीकी ओर देखे खटखट सीढ़ियों चढ़ गया ।

अपने सोनेके कमरेमे भार्गवजी पलंगपर अधलेटे थे । अमलके उन्हे नमस्ते करनेपर बोले, “आइये कलाकार महोदय !”

अमल यह विसरानेकी चेष्टा करता हुआ कि उसका नाम अमल है, और वह कलाकार है और वह मनुष्यके मनुष्यका शोषण करनेके सिद्धान्तसे घृणा करता है, पासके एक मूढेपर बैठ गया । इस समय उसे केवल यही ध्यान रह गया था—छोटे भाईने पत्र भेजा है...फ्रीस देनी है...भार्गवजी

से किसी न किसी तरह रुपये लेने ही है . ...कितने भी सही. .लेने जरूर है...

“तो फिर आपने सोच लिया है न कि आप मुझे स्केच दे रहे है .. अऽऽ चालीसमे ।” भार्गवजी कुछ फुरसतसे बोले ।

“जी हाँ, अच्छी तरहसे । तभी तो आया हूँ । मगर देखिये, रुपयोका प्रवध अगर आज ही हो जाय तो बड़ी मेहरबानी होगी ।”

“हाँ हाँ, अभी लीजिये ।” भार्गवजीने अत्यन्त तत्परतासे कहा । फिर नौकरसे बोले, “दरबान देखो, दूकानसे मुनीमजी आ गये है या नहीं ?”

दरबान उसी प्रकार भागता-सा चला गया । भार्गवजीने ओंखोको विशेष प्रकारसे नचाते हुए कहा, “रुपयोकी विशेष आवश्यकता हो तो आप दस-एक रुपये और ले जा सकते है—एडवासके तौरपर । एक-आध स्केच हमे और दे दीजियेगा ।”

अमल सिरसे पैर तक मुलंग उठा । वह कोई तीखी बात कहने ही जा रहा था कि रुक गया । उसे अपनी मौजूदा परिस्थितिका ध्यान आ गया । एकदम शान्त हो वह धीमे स्वरमे बोला, “धन्यवाद । फिलहाल तो इतनेसे ही काम चल जायगा । छोटे भाईको भेजने है ।”

“आपकी इच्छा” भार्गवजी मुँह बनाते हुए बोले, “मै तो आपकी सेवा करना चाहता था ।”

सेवा !.. अमलको उस दुःखी मनःस्थितिमें भी हँसी आ गई । बोला, “आपकी कृपा बनी रहे । सेवाका धर्म तो हमारा है...आप क्यो कष्ट करते है ?”

भार्गवजी इसपर हँस दिये ।

दरबान इतनेमे लौट आया । उसने बतलाया—मुनीमजी आ गये है और रोकड मिला रहे है ।

भार्गवजीने पास पड़े हुए एक कागजपर—‘चालीस रुपये दे दीजिये’—लिखकर कागज अमलको दे दिया और कहा, “जाइये, मुनीमजीसे ले लीजिये। उस तरफवाले कमरेमे है।”

“स्केच तो मै दिनमे ही दूकानपर छोड़ आया था।” अमलने उठते हुए कहा।

“हाँ हाँ, उन्हे तो मै दूकानसे ले भी आया हूँ।” भार्गवजीने उल्लास भरे स्वरमे कहा।

भार्गवजीको नमस्ते कर अमल कमरेके बाहर जा ही रहा था कि दरवान ने कहा, “जी एक, देवीजी भी मिलने आई हुई है। मै तो बताना ही भूल गया था। नीचे बैठी है।”

“देवीजी?” भार्गवजीने अपना चेहरा प्रश्न-चिह्नकी तरह बनाया। तब कहा, “यही बुला लाओ।”

न जाने क्यों अमलका कुतूहल जाग उठा। कमरेके बाहर निकल वह गैलरीमे कुछ आगे तक बढ़ आया और तब इधर-उधर देख आहिस्तासे एक स्थानपर अपेक्षाकृत अँधेरेमे खड़ा हो गया।

कुछ क्षण बाद वह युवती आई और कमरेके अंदर झिझकती-सी चली गई। पीछे-पीछे दरवान था। तभी अमलको भार्गवजीका भारी स्वर सुनाई दिया, “तुम बाहर बैठो जी। अगर कोई आये तो हमें खबर करना।”

दरवान कमरेसे निकल सीधा नीचे चला गया।

अमलने वही खड़े-खड़े सुना। भार्गवजी कह रहे थे, “कहिए, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?”

युवतीने गुनमुने स्वरमे क्या कहा, यह अमल न सुन सका। थोड़े समय बाद भार्गवजीकी आवाज फिर सुनाई दी, “हाँ, वह तो नहीं है इस समय। कलत्र गई हुई है। लेकिन आपको तो कोई पार्ट टाइम काम

चाहिए—सो उसका प्रबन्ध तो हो जायगा। हमारे पास तो हर तरहके काम है। लेकिन देखिए, आप इन फिजूलके भ्रमेलोमें क्यों पड़ती हैं ? सर्विस करनेमें—चाहे वह पार्ट टाइम ही हो—बहुत तबालत होती है। आप देखिये न... .”

इस बार युवतीका स्वर स्पष्ट सुनाई दिया, “जी हाँ, वह तो आप ठीक कहते हैं। लेकिन क्या किया जाय, परिस्थितियों कुछ ऐसी आ पड़ी हैं कि. पिताजी आजकल बीमार है और. . .”

“ठीक है। लेकिन परिस्थितियोंको तो दूसरे उपायोसे भी अपने अनुकूल बनाया जा सकता है।” भार्गवजीका स्वर सुनाई दिया, “कोई जरूरी है कि पार्ट टाइम सर्विस ही की जाय। आप और बहुत कुछ कर सकती हैं मसलन...मसलन. ”

अमल अब और अधिक न रुका। ‘हटाओ जी। उसने मन ही मन कहा, ‘मरने दो’। वह किस-किसके रहस्य इकट्ठा करता फिरेगा ?

आगे बढ वह सीधा मुनीमजीके पास पहुँचा जो अपने चारो तरफ नोटों और सिक्कोंकी ढेरियों लगाये गद्दीपर बैठे थे और उन्हें गिननेमें व्यस्त थे। कोई दस मिनट तो मुनीमजीने अमलकी ओर देखा ही नहीं। अमल मन ही मन उन्हें कोसता बैठा रहा। जब मुनीमजी पूरा हिसाब मिला चुके तब उन्होंने अमलकी ओर मुँह फेरा और उसके हाथसे कागज ले उसे गौरसे देखने लगे। दस-दस रुपयेके चार नोट निकाल, अच्छी तरह गिनकर अमलको देते हुए तब वह बोले—अच्छी तरह गिन लो। और सामनेके कागजपर “चालीस रुपये वसूल पाये” की रसीद लिख दो। तारीख भी डाल देना। दस्तखत रेवेन्यू टिकटपर करना। अगर रेवेन्यू टिकट पासमें न हो तो इकट्ठी निकालो, रेवेन्यू टिकट भी मिल जायगा। बिना रेवेन्यू टिकटके रसीद बेकार है—उतनी ही बेकार जितना बिना सिरके इन्सानका शरीर।



और इस सब क्रियासे फ़ारिग होनेमें अमलको दस-एक मिनट और लैग गये। यानी चालीस रुपयेकी प्राप्तिमें बीस मिनट नष्टकर अमल बाहर आया और सीढियोंकी ओर बढ़ने लगा। भार्गवजीके कमरेके निकट उसे उनका शिथिल-सा स्वर सुनाई दिया, “ये लीजिये। पच्चीस है। आवश्यकता होनेपर फिर आइयेगा...सकोच बिल्कुल न कीजियेगा...अच्छा नमस्ते।”

कुछ क्षण बाद कमरेका दरवाजा खुला और युवती घबराई हुई-सी बाहर निकली। अमलके कदमोंकी आहटसे चौंक उसने पीछे घूमकर देखा। अमलको देख उसका चेहरा एकबारगी पीला पड़ गया और वह बेसास्ता झपट गई। उसके चेहरेपर ग्लानि और कातरताके कुछ ऐसे भाव अङ्कित हो गये कि पहलेकी तरह वह झपट अमलके चेहरेपर मुसकराहट न दौड़ा सकी। अमलने देखा, उसके कपड़े और बाल आदि व्यस्त रूपमें थे। बिन्दी बिखर गई थी। चेहरेपर पसीनेकी बूंदें चमक आई थीं और ओठ खुश्क हो गये थे। अमलको अपनी ही ओर देखता पाकर मारे शर्मके उसकी गर्दन नीचे झुक गई। वह वही ठिठकी खड़ी रह गई। न आगे बढ़ी, न पीछे हटी।

अमलको लगा, जैसे अब वह रो देगी।

और अमलको न जाने क्या हुआ? उसका क्रोध, उसकी घृणा, उसका आक्रोश-तिरस्कार सब ब्रह्म गया। अत्यन्त स्निग्ध भावसे मुसकराता हुआ वह आगे बढ़ा और उस युवतीके बिल्कुल नजदीक खड़ा हो गया।

युवतीने बहुत साहसकर गर्दन ऊपर उठाई। उसके मुँहसे आश्चर्ययुक्त स्वरमें केवल इतना ही निकला, “आप !... ..”

अमलने उसी प्रकार मुसकराते हुए कहा, “आपका हमपेशा हूँ। मुझे सब पता है। अभी-अभी हम लोग अपनी आत्माएँ शैतानके पास बेचकर आये हैं। मैंने चालीस रुपयेमें अपनी आत्मा बेची है और आपने

शायद पच्चीसमें। मेहनत और शरीर तो बाहरी खोल है—विक्री आत्मा ही है। आप बेकार रज कर रही है। हम लोग इस विक्रीके लिए मजबूर थे। फिर ये रज क्यों? मुझे देखिये, मैं तो विल्कुल ठीक हूँ। आप ग्लानि और दुःखका ये भाव मनसे हटा दीजिये। हमारा कोई दोष नहीं है। दोष इस दोषपूर्ण व्यवस्थाका है जो व्यक्तिको ईमानदारीसे जीवन व्यतीत नहीं करने देती.. उसके श्रमका उचित मूल्य नहीं चुकाती। खैर अब हटाइये। मनको स्वस्थ करनेकी कोशिश कीजिये। आखिर हम लोगो के लिए इसके अलावा कोई चारा भी तो न था...”

युवती कुछ न बोली। केवल बड़े-बड़े आँसू उसकी आँखोंसे निकल नीचे गिरने लगे।

गैलरीमे कुछ गुनमुनाहट सुन और उसमे अमलका स्वर साफ पहचान कर भार्गवजी कुछ सशक्ति भावसे दरवाजा खोल बाहर आये। गैलरीमे कोई न था। आगे बढ़ उन्होंने देखा, और हैरतसे उनकी आँखें खुलीकी खुली रह गई—अमल युवतीको सहारा दिये नीचे सीढ़ियों उतर रहा था ..



# हमारे सुरुचिपूर्ण हिन्दी प्रकाशन

## उर्दू शायरी

१. शेर-ओ-शायरी	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८)
२. शेर-ओ सुखन [भाग १]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८)
३. शेर-ओ-सुखन [भाग २]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३)
४. शेर-ओ-सुखन [भाग ३]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३)
५. शेर-ओ-सुखन [भाग ४]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३)
६. शेर-ओ-सुखन [भाग ५]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३)

## कविता

७. वर्द्धमान [ महाकाव्य ]	श्री अनूप शर्मा	६)
८. मिलन-यामिनी	श्री वचन	४)
९. धूपके धान	श्री गिरिजाकुमार माथुर	३)
१०. मेरे चापू	श्री हुकमचन्द्र बुखारिया	२॥)
११. पञ्च-प्रदीप	श्री शान्ति एम० ए०	२)

## ऐतिहासिक

१२. खण्डहरोका वैभव	श्री मुनि कान्तिसागर	६)
१३. खोजकी पगडण्डियाँ	श्री मुनि कान्तिसागर	४)
१४. चौलुक्य कुमारपाल	श्री लक्ष्मीशङ्कर व्यास	४)
१५. कालिदासका भारत [ भाग १-२ ]	श्री भगवतशरण उपाध्याय	८)
१६. हिन्दी जैन साहित्य-परिशीलन १-२	श्री नेमिचन्द्र शास्त्री	५)

## नाटक

१७. रजत-रश्मि	श्री डा० रामकुमार वर्मा	२॥)
१८. रेडियो नाट्य शिल्प	श्री सिद्धनाथ कुमार	२॥)
१९. पंचपनका फेर	श्री विमल लूथरा	३)
२०. और खाई बढती गई	श्री भारतभूषण अग्रवाल	२॥)
२१. तरकश के तीर	श्रीकृष्ण एम० ए०	३)

## ज्योतिष

२२. भारतीय ज्योतिष श्री नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य ६)  
 २३. करलक्खण [ सामुद्रिकशास्त्र ] प्रो० प्रफुल्लकुमार मोदी ॥१)

## कहानियाँ

२४. संघर्षके बाद श्री विष्णु प्रभाकर ३)  
 २५. गहरे पानी पैठ श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय २॥)  
 २६. आकाशके तारे : धरतीके फूल श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' २)  
 २७. पहला कहानीकार श्री रावी २॥)  
 २८. खेल-खिलौने श्री राजेन्द्र यादव २)  
 २९. अतीतके कम्पन श्री आनन्दप्रकाश जैन ३)  
 ३०. जिन खोजा तिन पाइयों श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय २॥)  
 ३१. नये बादल श्री मोहन राकेश २॥)  
 ३२. कुछ मोती कुछ सीप श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय २॥)  
 ३३. कालके पख श्री आनन्दप्रकाश जैन ३)  
 ३४. नये चित्र श्री सत्येन्द्र शर्मा ३)  
 ३५. जय-दोल श्री अज्ञेय ३)

## उपन्यास

३६. मुक्तिदूत श्री वीरेन्द्रकुमार एम० ए० ५)  
 ३७. तीसरा नेत्र श्री आनन्दप्रकाश जैन २॥)  
 ३८. रक्त-राग श्री देवेशदास ३)  
 ३९. सस्कारोकी राह राधाकृष्ण प्रसाद २॥)

## संस्मरण, रेखाचित्र

४०. हमारे आराध्य श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ३)  
 ४१. संस्मरण श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ३)  
 ४२. रेखाचित्र श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ४)  
 ४३. जैन जागरणके अग्रदूत श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय ५)

## सूक्तियाँ

४४. जीनगङ्गा [ सूक्तियाँ ]	श्री नारायणप्रसाद जैन	६)
४५. शरत्की सूक्तियाँ	श्री रामप्रकाश जैन	२)

## राजनीति

४६. एशियाकी गजनीति	श्री परदेशी साहित्यरत्न	६)
--------------------	-------------------------	----

## निबन्ध, आलोचना

४७. जिन्दगी मुसकराई	श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ४)
४८. संस्कृत साहित्यमे आयुर्वेद	श्री अत्रिदेव 'विद्यालङ्कार' ३)
४९. शरत्के नारी-पात्र	श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी ४॥)
५०. क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?	श्री रावी २॥)
५१. बाजे पायलियाके धुँधरू	श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ४)
५२. माटी हो गई सोना	श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' २)

## दार्शनिक, आध्यात्मिक

५३. भारतीय विचारधारा	श्री मधुकर एम० ए० २)
५४. अध्यात्म-पदावली	श्री राजकुमार जैन ४॥)
५५. वैदिक साहित्य	श्री रामगोविन्द त्रिवेदी ६)

## भाषाशास्त्र

५६. संस्कृतका भाषाशास्त्रीय अध्ययन	श्री भोलाशकर व्यास ५)
------------------------------------	-----------------------

## विविध

५७. द्विवेदी-पत्रावली	श्री ब्रैजनाथ सिंह 'विनोद' २॥)
५८. ध्वनि और संगीत	श्री ललितकिशोर सिंह ४)
५९. हिन्दू विवाहमे कन्यादानका स्थान	श्री सम्पूर्णानन्द १)

भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

